निवेदन

देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसादजी ने 'आत्म-कथा' के बाद यह दूसरी बड़ी पुस्तक लिखी है। इसमे पूज्य बापू के सम्बन्ध मे उनके संस्मरण हैं। संस्मरणो के सिलसिले में भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख प्रसंगो का भी वर्णन यथास्थान आता गया है। उन्होने यह भी बतलाया है कि पूज्य बापू से उन्होने कब और कहाँ क्या सीखा, भारत और संसार को बापू के प्रयोग-मय जीवन से कौन अमर संदेश मिला, देश के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, आर्थिक, व्यावसायिक, नैतिक, आध्यात्मिक और शिक्षा-सम्बन्धी विकास एवं अभ्युदय के लिए बापू ने क्या किया, इन सब बातो का दिग्दर्शन इसमें कराया गया है।

'आत्मकथा' में राष्ट्रीय जागरण की जो बातें संकेत-रूप में ही लिखी जा सकी थी वे इनमें पल्लवित हो गई हैं। जिस समय 'आत्मकथा' लिखी गई थी उस समय देश स्वतंत्र नहीं हुआ था, पर शीघ्र होने ही वाला था। उसके बाद से आजतक की विशिष्ट राजनीतिक बातो का इसमें पूर्ण समावेश हो गया है। इस तरह, केन्द्रीय शासन में देशरत्न के जाने के समय से लेकर उनके राष्ट्रपति होने तक की जितनी उल्लेखनीय घटनाएँ हैं, सबका इसमें रोचक विवरण मिलेगा। एक प्रकार से यह स्वतंत्र भारत के निर्माणकाल की, और विकासक्रम की भी, सच्ची कहानी है।

देशरत्न की अनूठी-मीठी भाषा जग-जाहिर है। उनकी 'आत्मकथा' की शैली को समस्त हिन्दी-संसार के भाषा-पारखियो ने मुक्त कंठ से सराहा था। इस पुस्तक की सुबोध-मधुर भाषा भी सहृदय पाठकों के हृदयङ्गम करने ही योग्य है। इसमें उनकी सहज स्वाभाविक शैली अपने प्रकृत, मौलिक एवं अविकल रूप में ही पाठकों के सामने उपस्थित की जा रही है। चूँकि बापू के सच्चे अनुयायियों में उनका प्रधान स्थान सर्वमान्य है, इसलिए बापू के जीवन से मिलनेवाले उपदेशों और सदेशो को हम प्रामाणिक और प्रेरणात्मक रूप में उन्हीं से पा सकते हैं। इस पुस्तक ने उसी अमूल्य और अलभ्य प्राप्य को सुलभ कर दिया है।

पूज्य बापू के सत्य-अहिंसा-मार्ग पर सतत आगे बढ़ते हुए अपने जीवन को देशरत्न ने अपनी अमर लेखनी से हिन्दी-पाठकों के समक्ष प्रत्यक्ष किया है। कितने सौभाग्य की बात है कि हिन्दी में एक ऐसी नवजीवन-दायिनी पुस्तक के प्रकाशन का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ। हमें आशा तथा पूर्ण विश्वास है कि बापू के अमिट पद-चिह्नों का, जिन्हें देशरत्न की समर्थ लेखनी ने इसमें अङ्कित किया है, अनुसरण कर हमारे देशवासी अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकेंगे।

इस पुस्तक को शुद्धता और सुन्दरता से प्रकाशित करने में राजेन्द्र-कॉलेज (छपरा) के प्रोफेसर शिवपूजन सहाय ने जो सहायता दी तथा जिस परिश्रम और लगन से कापी और प्रूफ का सम्पादन संशोधन किया, जिससे यह पुस्तक एक पखवारे में ही इतने स्वच्छ रूप में छप सकी, उसके लिए हम उनको धन्यवाद देते हैं।

—प्रकाशक

राजेन्द्र प्रसाद

प्रस्तावना

गगा की पवित्र धारा, अपने प्रवाह से बहती चली जाती है । बीच-बीच में श्रद्धालु लोग उसमें से अपने हित के लिए कुछ-न-कुछ जल निकाल लेते है । जिसकी जितनी शक्ति होती है वह उतना जल ले सकता है । कोई तो हरिद्वार के पास ही नहर खोद करके सैकडो कोसों तक जल-प्रवाह अलग करके करोड़ों बीघे जमीन को पटाता हुआ जनता-जनार्दन की सेवा में उसे लगाता है । कोई किनारे पर रहता हुआ भी अभागा उसी गगा के जल से स्नानादि करके अपने को पावन नहीं बना सकता । छोटे-मोटे लोग अपनी शक्ति के अनुसार बडे घड़े में अथवा छोटी लुटिया में ही उस पवित्र जल को ले सकते है । पर गगा बहती ही चली जाती है और जहाँ-जहाँ उसका प्रवाह पहुँच जाता है वहाँ की धरती उर्वरा और उपजाऊ हो जाती है । महात्मा गाँधी-रूपी पावन गगा में से जिसकी जितनी शक्ति और जिसका जितना पुण्य रहा उसने उतना लिया । यदि मुझे कुछ पाने का बडा सौभाग्य नहीं हुआ तो यह मेरा ही दुर्भाग्य है । इन पृष्ठो में अपनी समझ में जो कुछ उनका महत्त्व आया उसे यहाँ दे देने का प्रयत्न किया है ।

इसे लिखने का सारा काम वाल्मीकि चौधरी ने बहुत परिश्रम करके किया । इसके लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूँ ।

नई दिल्ली
२८-१-५०

पहला अध्याय

मुझे पहला मौका महात्मा गांधी को देखने का कलकत्ता में मिला। जब वह दक्षिण अफ्रिका से लौटकर हिन्दुस्तान के मुख्य-मुख्य स्थानो का दौरा कर रहे थे, कलकत्ता मे उनके स्वागत के लिए एक सभा हुई थी, जिसमें मै भी कुतूहल वश गया था। उन दिनो उनको लोग 'कर्मवीर गांधी' कहा करते थे। वह सफेद बन्दवाला अचकन, धोती और सफेद काठियावाड़ी पगडी पहना करते थे। पैरो में जूते नही पहनते थे, मगर कन्धे पर एक चादर रखा करते थे। मैंने अखबारो में उनके दक्षिण अफ्रिका के कामो की कहानी कुछ पढी थी और इसलिए जब उनके स्वागत की सभा हुई तो मै भी वहाँ गया। यह शायद १९१५ की बात होगी। दूर से ही सभा में उन्हे देखा और वहाँ उन्होने क्या कहा, इसका कुछ स्मरण नही है। यह भी नही याद है कि उन्होने कुछ कहा या नही, क्योकि पीछे मैने सुना कि स्वर्गीय गोखलेजी ने उनसे वचन ले लिया था कि हिन्दुस्तान की हालत वह जाकर देखें, पर एक बरस तक किसी प्रकार के आन्दोलन में भाग न लें, और न व्याख्यान ही दिया करे। यह समारोह उस एक बरस के भीतर ही हुआ था। इसलिए शायद उन्होने कुछ कहा ही नही, पर मुझे आज कुछ स्मरण नही है। हाँ, इतना याद है कि उस समय मै कलकत्ता मे ही रहता था और उस सभा में गया था।

१९१६ के दिसम्बर में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। मै पटना-हाइकोर्ट के खुलने पर, १९१६ के मार्च मे, पटना चला आया और वही वकालत करने लगा। पटना से ही लखनऊ-कांग्रेस में गया। वहाँ महात्मा गांधी भी आये थे। चम्पारन के किसानो के कुछ नेता, जिनमे मुख्य

'बापू के कदमों में'
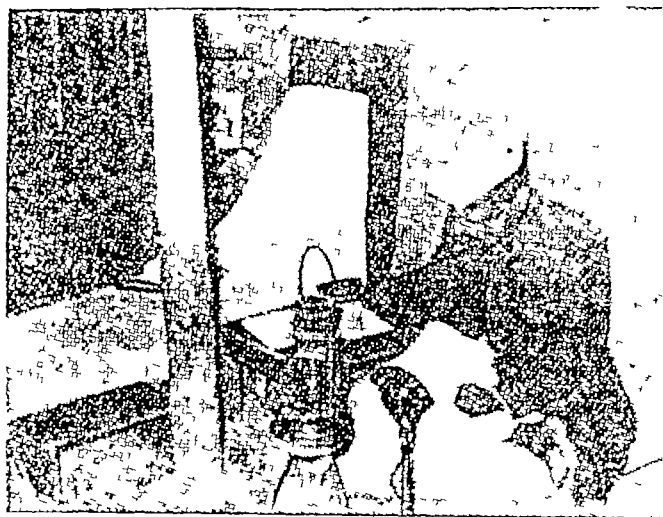
२४ दिसम्बर (१९४९) को, सेवाग्राम में, विश्वशान्ति-परिषद् का उद्घाटन करते समय देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद ससार के लिए शान्ति की अपील कर रहे है ।

पहला अध्याय

मुझे पहला मौका महात्मा गाधी को देखने का कलकत्ता में मिला। जब वह दक्षिण अफ्रिका से लौटकर हिन्दुस्तान के मुख्य-मुख्य स्थानो का दौरा कर रहे थे, कलकत्ता मे उनके स्वागत के लिए एक सभा हुई थी, जिसमें मै भी कुतूहल वश गया था। उन दिनो उनको लोग 'कर्मवीर गाधी' कहा करते थे। वह सफेद बन्दवाला अचकन, धोती और सफेद काठियावाडी पगडी पहना करते थे। पैरो में जूते नही पहनते थे, मगर कन्धे पर एक चादर रखा करते थे। मैंने अखबारो में उनके दक्षिण अफ्रिका के कामो की कहानी कुछ पढी थी और इसलिए जब उनके स्वागत की सभा हुई तो मै भी वहाँ गया। यह शायद १९१५ की बात होगी। दूर से ही सभा में उन्हे देखा और वहाँ उन्होने क्या कहा, इसका कुछ स्मरण नही है। यह भी नही याद है कि उन्होने कुछ कहा या नही, क्योकि पीछे मैने सुना कि स्वर्गीय गोखलेजी ने उनसे वचन ले लिया था कि हिन्दुस्तान की हालत वह जाकर देखे, पर एक बरस तक किसी प्रकार के आन्दोलन मे भाग न लें, और न व्याख्यान ही दिया करे। यह समारोह उस एक बरस के भीतर ही हुआ था। इसलिए शायद उन्होने कुछ कहा ही नही, पर मुझे आज कुछ स्मरण नही है। हाँ, इतना याद है कि उस समय मै कलकत्ता मे ही रहता था और उस सभा मे गया था।

१९१६ के दिसम्बर में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। मै पटना-हाइकोर्ट के खुलने पर, १९१६ के मार्च मे, पटना चला आया और वही वकालत करने लगा। पटना से ही लखनऊ-कांग्रेस मे गया। वहाँ महात्मा गाधी भी आये थे। चम्पारन के किसानो के कुछ नेता, जिनमें मुख्य

श्रीराजकुमार शुक्ल और पीर मुहम्मद मूनिस थे, कांग्रेस में अपना दुखड़ा सुनाने गये थे। मैं वकालत के कारण राजकुमार शुक्ल को जानता था और चम्पारन के रैयतो की बुरी हालत से भी कुछ परिचित था, पर वह परिचय बहुत ही अधूरा और आशिक था। अगर यो कहा जाय कि वह नही के बराबर था, तो अत्युक्ति नही होगी। बिहार के युवको के नेता स्वर्गीय ब्रजकिशोरप्रसादजी थे। वह वहाँ की शिकायतो से काफी परिचित थे, क्योकि उन दिनो की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के वह मेम्बर थे और वहाँ इस समस्या पर उन्होने कई बार प्रश्न पूछे थे तथा दूसरे प्रकार से भी इस बात की चर्चा कौन्सिल में की थी। श्रीराजकुमार शुक्ल आदि महात्मा गाधी से मिले, और चम्पारन का दुखडा सुनाया। बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद भी शायद उन लोगो के साथ, गाधीजी से मिले। सबने गाधीजी से अनुरोध किया कि चम्पारन-सम्बन्धी एक प्रस्ताव काग्रेस मे पास कराना चाहिए और वह स्वय यदि उसे उपस्थित करें तो बहुत अच्छा होगा। गाधीजी ने प्रस्ताव उपस्थित करने से इन्कार कर दिया था। उनका कहना था कि जबतक मैं खुद देख-सुनकर सब बातो की पूरी जानकारी हासिल न कर लूँ, प्रस्ताव उपस्थित नही कर सकता। हाँ, जाँच के लिए चम्पारन जाऊँगा और देखूँगा कि जो तुम लोग कहते हो वह कहाँ तक ठीक है। प्रस्ताव बाबू ब्रजकिशोर ने पेश किया और श्रीराजकुमार शुक्ल ने उसका समर्थन किया और वह सर्वसम्मति से पास भी हो गया। यह शायद पहला ही मौका था जब एक देहाती अनपढ किसान काग्रेस के मच से किसी प्रस्ताव के समर्थन में बोला हो। गाधीजी के साथ मेरे सम्पर्क का सूत्र-पात मात्र यहाँ हुआ—यद्यपि वास्तविक सम्पर्क लखनऊ में नही हुआ।

कांग्रेस के बाद सब लोग अपने-अपने स्थान को चले गये, पर राजकुमार शुक्ल ने गाधीजी से वचन ले लिया कि जब वह कभी बिहार की ओर से गुजरेंगे तो चम्पारन भी जायँगे और वहाँ की हालत देखेंगे। मार्च १९१७ में गाधीजी को एक बार कलकत्ता की ओर जाना पडा और उन्होने राजकुमार शुक्ल को पत्र लिखा कि उनसे वह कलकत्ते में मिलें तथा वहाँ से उनको अपने साथ चम्पारन ले जायँ, पर दुर्भाग्यवश यह पत्र राजकुमार शुक्ल को देर करके मिला और तबतक गाधीजी कलकत्ता से वापस चले जा चुके थे। बिहार के देहातो में डाकिया सप्ताह में एक या दो बार से अधिक डाक लेकर नही जाता और राजकुमार शुक्ल तो चम्पारन में, जो एक पिछडा हुआ जिला समझा जाता था, रहा करते थे, और चम्पारन-जिले के भी

सबसे अधिक पिछड़े हुए भाग में। इसलिए पत्र का समय पर न मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

अप्रैल १९१७ में अखिल-भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक कलकत्ता में, ईस्टर की छुट्टियों में, होनेवाली थी। गांधीजी उसमें शरीक होने कलकत्ता गये और इस बात की सूचना उन्होंने राजकुमार शुक्ल को दे दी। वह इस बार समय से पत्र पाकर कलकत्ता पहुँच गये और श्रीभूपेन्द्रनाथ वसु के मकान पर, जहाँ गांधीजी ठहरे थे, जाकर उनसे मिले। मैं अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी का एक सदस्य था और उस जल्से में शरीक था। इत्तिफाक से जल्से में मैं गांधीजी के बहुत नजदीक ही बैठा था, पर वह मुझे जानते नहीं थे और न मैं यह जानता था कि वह कलकत्ता से ही सीधे बिहार जानेवाले हैं। राजकुमार शुक्ल उनके साथ सभा तक गये थे, पर बाहर ही ठहर गये थे, इसलिए मेरी मुलाकात उनसे भी नहीं हुई। सभा समाप्त होने पर मैं जगन्नाथपुरी चला गया और इधर गांधीजी राजकुमार शुक्ल के साथ पटना चले आये। एक-दूसरे के साथ परिचय न होने के कारण, नजदीक बैठे रहने पर भी, हम एक-दूसरे के कार्यक्रम को न जान सके, नहीं तो मैं शायद उनके साथ ही बिहार चला आता। उधर मैं पुरी पहुँचा और इधर गांधीजी मेरे घर पर पटना पहुँचे।

मैं कलकत्ता में वकालत किया करता था और जब १९१६ के मार्च में पटना में बिहार के लिए अलग हाइकोर्ट खुला तो मैं पटना चला आया तथा वहीं वकालत करने लगा। एक मकान भाड़े पर लेकर रहता था। घर के लोग कोई साथ नहीं रहते थे। वे लोग भाई के साथ छपरा या गाँव 'जीरादेई' रहा करते थे, इसलिए पटना में नौकर ही साथ रहते थे। कलकत्ता बिहार से बहुत दूर पड़ता था और बिहारियों के लिए एक अजनबी जगह। इसलिए जब कोई मामूली आदमी वहाँ हाइकोर्ट में किसी मुकदमे के लिए जाता, तो वह बहुत करके किसी वकील या मुख्तार के यहाँ ठहरता। एक तो कोई दूसरी ऐसी जगह उसको नहीं मिलती जहाँ वह ठहर सकता और दूसरे उन दिनों होटलों का न तो इतना प्रचार था और न बिहार के गाँव का रहनेवाला कोई आदमी होटल में रहकर वहाँ खाना पसन्द करता, इसलिए बिहारी वकीलों का घर भी मवक्किलों के लिए एक धर्मशाला-जैसा होता। कोई-कोई तो मवक्किलों को पैसे लेकर खिलाते। मैं ऐसा नहीं करता था। जो कोई मेरे यहाँ ठहर जाता था उसको मैं बिना दाम लिये ही खिलाता और ठहराता। यही प्रथा जब हमलोग कलकत्ता से

पटना आये तो अपने साथ लेते आये । इसलिए जब-तब पटना में भी मवक्किल आकर हमारे साथ ठहर जाया करते थे। उनके लिए एक कमरा भी रख छोडा था और नौकर भी जानते कि मवक्किलो को कहाँ ठहराना तथा उनके साथ क्या वर्ताव करना चाहिए। जब मै कलकत्ता अखिलभारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक के लिए गया और वहाँ से 'पुरी' चला गया तो पटना के नौकर, जो मेरे साथ नही गये, छुट्टी मे अपने-अपने घर चले गये— केवल एक नौकर मकान की देखभाल करने के लिए रह गया जो निरा देहाती था।

पटना में पहुँचकर राजकुमार शुक्ल गाधीजी को मेरे घर ले गये। वह किसी दूसरे को नही जानते थे जिनके यहाँ वह गाधीजी को ठहराते। दुर्भाग्य-वश मै तो था नही। नौकर ने गाधीजी को एक देहाती मवक्किल समझ लिया। इसमें उस बिचारे का कोई दोष नही था। राजकुमार शुक्ल तो एक देहाती मवक्किल थे ही। देहाती बोली बोलने और रहन-सहन मे भी चम्पारन के ही थे। गाधीजी का रूप-भेष भी कुछ वैसा ही था। मैने ऊपर वतलाया है कि सभा इत्यादि में गाधीजी धोती, अचकन और काठियावाडी पगडी पहना करते थे। इसी भेष मे मैने उनको कलकत्ता की स्वागत-सभा तथा अखिलभारतीय कांग्रेस-कमिटी के जल्से में देखा था, पर मामूली तौर से वह एक धोती-कुर्त्ता तथा वैसी टोपी पहना करते थे जैसी पीछे 'गाधी-टोपी' के नाम से मशहूर हुई। इस काट की टोपी विहार मे और सयुक्त प्रदेश मे वहुतेरे पहना करते थे, पर गाधी-टोपी और उन टोपियो में वहुत वडा फर्क यह था कि गाधी-टोपी हमेशा खादी की हुआ करती थी। गाधीजी की वेश-भूषा देखने से उस नौकर को यह पता न चला कि वह कोई महान पुरुष है। मवक्किल समझकर उसने उनको मवक्किल की तरह ही ठहराया और उनके साथ मवक्किल-जैसा ही बर्ताव भी किया। यहाँ तक कि उस पाखाने का भी इस्तेमाल नही करने दिया जो खास घर के मालिक के इस्ते-माल में रहा करता था। गाधीजी ने नित्यक्रिया-स्नानादि नही किया और सोच ही रहे थे कि अव क्या किया जाय कि इतने में मजहरुलहक साहव को खवर लग गई कि गाधीजी पटना आये हुए है और मेरे यहाँ ठहरे है। मजहरुलहक साहव गाधीजी के दक्खिन अफ्रिका के काम से तो पूरी तरह वाकिफ थे ही, वह उनको वहुत पहले से भी जानते थे, क्योकि दोनो साथ ही एक ही जहाज पर बैरिस्टरी पास करके इगलैड से लौटे थे। गाधीजी को वह अपने यहाँ ले गये और हमारे घर से हटाकर अपने साथ ही ठहराया।

गाधीजी चम्पारन पहुँचने के लिए उत्सुक थे, पर सध्या के पहले वहाँ के लिए कोई गाडी नही थी। इसलिए सध्या की गाडी से ही जाने का निश्चय किया और रवाना भी हो गये। मुजफ्फरपुर रास्ते मे पडता है और तिरहुत-डिवीजन का कमिश्नर वही रहता है। नीलवरो की सस्था 'विहार-प्लैण्टर्स एसोसिएशन' (Bihar Planters Association) का दफ्तर वही था और उसका मत्री वही रहा करता था। इसलिए उन्होने सोचा कि चम्पारन पहुँचने के पहले इन दोनो से मिल लेना अच्छा होगा। बस मुजफ्फरपुर मे ठहर जाने का निश्चय कर लिया।

जो अनुभव उनको मेरे घर पर पटना मे हुआ था उसके बाद उन्होने राजकुमार शुक्ल पर अपने ठहरने-ठहराने का भार न छोडकर स्वय ही उसका प्रवन्ध कर लिया। आचार्य कृपालानी उन दिनो मुजफ्फरपुर-कालेज मे प्रोफेसर थे। गाधीजी के साथ उनकी मुलाकात नही थी, पर उनसे पत्र-व्यवहार हुआ था। इसलिए वह उनको जानते थे और पटना मे चलने के पहले उन्होने कृपालानीजी के पास तार भेज दिया था। कृपालानीजी कुछ छात्रो के साथ स्टेशन पर उनसे मिलने आये। गाडी आधी रात के समय पहुँचती थी। कृपालानीजी भी गाधीजी की रहन-सहन से वहुत परिचित नही थे। इसलिए स्टेशन पर सब लोग उनको ऊँचे दर्जो के डब्बो में तलाश करने लगे। पर गाधीजी अपनी छोटी गठरी लिये हुए, राजकुमार शुक्ल के साथ, तीसरे दर्जे के डब्बे से उतर चुके थे और प्लेटफार्म से बाहर जाने के लिए फाटक की तरफ जा रहे थे। जब कृपालानीजी और उनके छात्रो को गाधीजी ऊँचे दर्जो के डब्बो में नही मिले, तो वे लोग प्लेटफार्म पर उनकी तलाश में इधर-उधर दौड-धूप करने लगे। राजकुमार शुक्ल ने उनकी दौड-धूप से समझ लिया कि ये लोग गाधीजी की ही तलाश मे है और उनमें से एक से पूछा कि आप किसकी तलाश कर रहे है। उसने उनको एक निरा देहाती समझकर उत्तर तक नही दिया। तब राजकुमार शुक्ल ने कहा, आप कर्मवीर गाधी की तलाश कर रहे है तो वह मेरे साथ यह है। यह बात सुनते ही सब लोग जुट गये। गाधीजी धोती, कुर्ता और टोपी पहने थे। बगल में एक छोटी गठरी थी जिसमे बिछाने के लिए बिस्तर इत्यादि और पहनने के लिए कपडे थे जिसमे वह सोने के समय तकिया का काम लिया करते थे। दूसरे हाथ में एक टिन का डब्बा था जिसमें खाने के लिए खजूर या मूँगफली थी। राजकुमार शुक्ल अपना सामान और लोटा अपने हाथ में लिये हुए थे।

गाधीजी को पाकर सब निहाल हो गये। कृपालानीजी, जो कालेज के होस्टल के प्रधान थे, उनको अपने साथ होस्टल में ले गये और वहीं ठहराया। कालेज सोलह आने गवर्नमेंट-कालेज नही था, पर गवर्नमेंट से उसको पैसे की काफी मदद मिलती थी, इसलिए उसपर गवर्नमेंट का एक प्रकार से पूरा अधिकार था। कालेज का प्रिंसपल उन दिनो सरकारी नौकरी वाला, 'आइ० ई० एस०' (इडियन एजुकेशन सर्विस) का, कोई अग्रेज ही हुआ करता था—यद्यपि मुझे आज स्मरण नही है कि उस वक्त कौन प्रिंसपल था। कृपालानीजी ने गाधीजी को अपने यहाँ होस्टल में ठहरा तो लिया, पर वहा रख न सके, दूसरे ही दिन गाधीजी एक वकील के घर जाकर ठहर गये। थोडे ही दिनो मे कृपालानीजी को भी इसी अपराध के कारण कालेज की नौकरी से उस्तीफा देना पडा और वहाँ से छुट्टी पाकर वह चम्पारन में गाँधीजी के साथ रहकर काम करने लगे।

गाधीजी कमिश्नर और नीलवरो के मत्री से मिले तथा अपना उद्देश्य बताया। उनलोगो ने उनको चम्पारन जाने से मना किया और कहा—"रैयतो की शिकायतो की जाँच गवर्नमेंट करा रही है। चम्पारन में सर्वेसेटलमेंट के अफसर काम कर रहे है और जो कुछ भी शिकायत होगी उसपर विचार करके गवर्नमेंट मुनासिब कार्रवाई करेगी। रैयत आपके जाने से उत्तेजित होगे और लडाई के जमाने मे गडबडी मचा सकते है जो किसी तरह वाछनीय नही है।" उस समय जर्मनो का फ्रान्स पर धावा था और बहुत जोरो से लडाई चल रही थी। उन्होने यह भी कहा—"बहुतेरे नीलवर लडाई में चले गये। उनकी गैरहाजिरी में कोई बडा आन्दोलन खडा करना ठीक न होगा।" इस तरह की बातें कहकर उन्होने गाधीजी को वहाँ जाने से रोका तथा रैयतो की शिकायतो को अतिरजित और गलत बताया। महात्माजी ने तार देकर बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद को दरभगा से बुला लिया था, क्योकि वही उस विषय के विशेषज्ञ थे। गाधीजी का कहना था कि वे लोग जितना ही जोर देकर उनको रोकना चाहते थे उतना ही उनका सदेह बढ़ता ही जाता था और यह विचार दृढ होता जाता था कि दाल में कुछ काला जरूर है। उन्होने अन्त में दो-तीन मुलाकातो के बाद चम्पारन जाने का निश्चय कर लिया।

इसका एक कारण यह भी था कि चम्पारन के बहुतेरे रैयत यह सुनकर कि गाधीजी उनकी मदद के लिए मुजफ्फरपुर तक आ गये है, चम्पारन से उनके पास चले आये—अपना-अपना दुखडा सुनाया, जिससे राजकुमार शुक्ल

की कही हुई वातो की पुष्टि हुई। चम्पारन के रैयत इतने अरसे से सताये गये थे कि वे लोग डरपोक हो गये थे और उनकी हिम्मत नीलवरो के खिलाफ कुछ कहने की भी नही होती थी। नीलवरो का गवर्नमेंट के अधिकारियो पर वहुत प्रभाव था और उनके मित्र तथा सहायक स्थानीय अफसरो से लेकर विलायत तक में थे। उनके जुल्म की खवर स्थानीय अफसरो को मिला करती थी, पर वे भी रैयतो की कोई विशेष मदद नही कर सकते थे। हाँ, जो सच्चे और नेकनीयत होते वे गवर्नमेंट के पास गुप्त रिपोर्ट भेज दिया करते तथा जब मामला वहुत विगड जाता तो गवर्नमेंट भी कुछ नाम-निहादी कार्रवाई कर दिया करती, जिसका कोई विशेष फल नही होता। कभी-कभी रैयत भी विगड जाते और वलवा-फसाद कर देते। एकाध नीलवर को दो-एक वार मार भी डाला था और उनकी दो-एक कोठियो को जला भी दिया था, पर इस प्रकार के वलवा-फसाद का नतीजा यह होता कि वे और भी पीसे जाते। कचहरियो द्वारा फाँसी और कैद की सजा के अलावा दूसरे प्रकार की भी सजाएँ उनको मिलती। उनके खेत और घर सव लूट लिये जाते, माल-मवेशी भगा दिये जाते, घरो में आग लगा दी जाती और वे खुद भी पीटे जाते तथा वहुतेरो की तो वहू वेटी की इज्जत भी वरवाद की जाती। फसाद के वाद उनको नीलवर तथा सरकारी कर्मचारी इतना दवाते कि वहुत दिनो तक जिला-भर में मौत की-सी शान्ति विराजती। जिस इलाके में फसाद होता वहाँ अतिरिक्त पुलिस वैठा दी जाती, जहाँ उसका यह काम होता कि रैयतो को लूटें-खसोटें। इसके अलावा, पुलिस का सारा खर्च भी गवर्नमेंट उनसे ही वसूल करती। दो-एक वार गवर्नमेंट ने जाँच करने के लिए विशेष अफसरो को भेजा और उनकी रिपोर्ट कुछ हद तक रैयतो के पक्ष में हुई, पर कौंसिल में वहुत चर्चा होने पर भी वह प्रकाशित नही की गई। रैयत इतना डर गये थे कि किसी नीलवर या उसके कर्मचारी के विरुद्ध किसी किस्म की शिकायतें लेकर किसी अदालत या कचहरी में नही जाते थे। जव उनकी शिकायतें कौंसिल में पेश की जाती तो गवर्नमेंट का उत्तर यही होता कि उनकी कोई शिकायत अगर होती तो वे खुद ही अदालत मे पेश करते, पर वे ऐसा कुछ करते नही, इसलिए यह तो वाहर के कुछ आन्दोलन करनेवालो की ही शरारत है कि नीलवरो की इतनी शिकायत करते हैं। ऐसा भी देखा गया था कि कोई रैयत अगर हिम्मत करके अदालत में नालिश करने के लिए पहुँचता भी, तो नीलवरो के आदमी वहाँ लगे रहते और उसे मजिस्ट्रेट के सामने ही इजलास

पर से घसीट लाकर खूब पीटते । इसलिए इतनी शिकायतो के रहते भी डर के मारे रैयत कचहरी तक नही पहुँच पाते थे ।

गाधीजी के सम्बन्ध में, सिवा दो-चार आदमियो के—जिन्होने कही कुछ सुन लिया था या अखबारो में पढ लिया था—रैयतो मे से शायद ही कोई कुछ जानता होगा । मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मुझ-जैसा एक तथाकथित शिक्षित और सार्वजनिक विपयो मे कुछ दिलचस्पी रखनेवाला आदमी भी उनके बारे में बहुत थोडा ही जानता था, तो वेचारे निरीह अशिक्षित रैयतो को क्या पता होता, जो चम्पारन-जैसे पिछडे जिले के गाँव के रहनेवाले और नीलवरो द्वारा सताये हुए भयभीत थे । पर उन्होने इतना सुन लिया था कि उनकी मदद करनेवाला कोई पास के जिला मुजफ्फरपुर तक आ गया है । और, न मालूम उनके दिल मे यह विश्वास कैसे आ गया कि वह उनका उद्धारक है । न मालूम वह डर, जो उनको हमेशा सताया करता था, कहाँ चला गया और उनमें से सैकडो मुजफ्फरपुर तक आ गये तथा गाधीजी से मिले ।

गाधीजी ने चम्पारन जाने का निश्चय कर लिया और तिथि तथा गाडी का समय भी ठीक कर लिया । मोतीहारी के प्रसिद्ध वकील बाबू गोरखप्रसाद, जो रैयतो की कुछ मदद किया करते थे, मुजफ्फरपुर आ गये । उन्होने अपने घर पर ठहरने के लिए गाधीजी को आमन्त्रित किया ।

गाधीजी को एक दिक्कत थी । वह वहाँ की ग्रामीण भोजपुरी बोली समझ नही सकते थे और यद्यपि वह हिन्दी कुछ जानते थे तो भी इतनी नही कि अपना सब काम हिन्दी मे कर सकें । रैयत भी ठीक तरह से अपनी बोली के सिवा दूसरा कुछ—विशेष करके गाधीजी की बोली—नही समझ पाते । इसलिए ऐसे आदमियो की जरूरत थी जो दुभाषिया का काम कर सकें । बाबू व्रजकिशोरप्रसाद, जिनकी वकालत बहुत बढी-चढी थी, उस समय किसी विशेप मुकदमे के कारण दो-चार दिनो तक गाधीजी के साथ नही जा सकते थे । इसलिए उन्होने अपने एक मित्र बाबू धरणीधर को, जिनकी वकालत भी अच्छी चमकी थी, और बाबू रामनौमी प्रसाद को, जो युवक थे और थोडे दिनो से वकालत कर रहे थे, दुभाषिया का काम करने के लिए गाधीजी के साथ करके वह स्वय अपने काम से कलकत्ता चले गये ।

मुजफ्फरपुर में दो ही तीन दिन महात्माजी ठहरे थे, जिस बीच मे यह सब बातें हुई । साथ ही, उन्होने आस-पास के गाँवो की हालत भी देखनी

चाही और मुजफ्फरपुर शहर से कुछ दूर के कई गाँवो में जाकर देखा भी। विहार गरीव प्रदेश है। जमीन वहुत उर्वरा है, पर तो भी गरीवी वहुत है। विशेष करके उत्तर-विहार मे आवादी वहुत है। गाधीजी गाँव की गरीवी और गन्दगी देखकर वहुत दुखित हुए, विशेषकर गरीव स्त्रियो की हालत ने और भी। उन्होने सहसा अपने साथवालो से कहा कि जवतक इन गरीवो की और इन गाँवो की हालत न सुधरेगी, तवतक हिन्दुस्तान का क्या भला हो सकता है। उन दो-तीन दिनो मे ही गाधीजी की वातचीत सुनकर और उन्हे काम करते देखकर वहुतेरे लोग अचम्भित हो गये। गाधीजी मोतीहारी, जो चम्पारण जिले का सदर शहर है, पहुँचे तो वहाँ सैकडो रैयत उनके स्वागत के लिए रेल के स्टेशन पर पहुँचे हुए थे और गोरखवावू के घर पर उनके पहुँचते ही लोगो का ताँता वँध गया तथा हरएक आदमी अपनी आप-वीती सुनाने लग गया। गाधीजी पर इन सव वातो का असर पडता जाता था। पर जवतक अपनी आँखो सव देख नही लेते, उनका पूरा विश्वास नही जमता। इत्तिफाक से उनके पहुँचने के दो-चार ही दिन पहले एक अच्छे प्रतिष्ठित रैयत को एक नीलवर ने वहुत सताया था। वह रैयत सैकडो वीघे खेत जोतता था। वह इतना धनी था कि खुद एक हाथी भी रखता था, जो वहुत धनी और प्रतिष्ठित लोग ही रख सकते थे। नीलवर ने पुलिस की मदद से उसके घर को लुटवा लिया था, उसके खेत की खडी फसल को मवेशियो से चरवा दिया था, उसके वगीचे के पेडो को—विशेष करके केले के पेडो को—हाथियो द्वारा उजडवा डाला था और उसके घर के खपरैल छप्पर को लाठियो से पीटकर चूर-चूर करा दिया था। किसी कारण उससे नाखुश होकर ऐसा वर्ताव उसके साथ किया गया था। इस लूट-खसूट के सव चिह्न ज्यो-के-त्यो मौजूद थे। वह गाधीजी के पास आ गया, और अपना हाल कह सुनाया। गाधीजी ने निश्चय कर लिया कि जाकर खुद लूट-पाट के चिह्नो को देख लें। सवारी के लिए उसने अपना हाथी भी लाकर पेश कर दिया। पहुँचने के चन्द घटो के अन्दर ही यह फैसला हो गया और दूसरे ही दिन नौ-दस वजे गाधीजी, अप्रैल की दोपहरी धूप की परवा न करके, उस गाँव के लिए—जो वहाँ से दस-वारह मील पर था—रवाना हो गये।

इधर गाधीजी के कारण सरकारी हलको में हलचल मच गई थी और मुजफ्फरपुर के कमिश्नर ने चम्पारन-जिला-मजिस्ट्रेट को हुक्म दिया कि वह गाधीजी को चम्पारन से चले जाने का हुक्म निकाले। जिला-मजिस्ट्रेट ने हुक्म पाते ही, जाव्ता फौजदारी की १४४ धारा के अनुसार, हुक्म दिया कि

आप पहली रेलगाडी से चम्पारण से चले जाइए। वह हुक्म गाधीजी को मोतीहारी से गाँव के लिए रवाना होने के समय तक नही मिला। वह बाबू धरणीधर और बाबू रामनौमी प्रसाद के साथ रवाना हो गये थे। पीछे से पुलिस-सब-इन्स्पेक्टर, जिला-मजिस्ट्रेट का पत्र लेकर, कुछ मीलो की दूरी पर, गाधीजी से मिला, और कहा कि जिला-मजिस्ट्रेट आपसे मिलना चाहते है। गाधीजी उस पुलिस-अफसर के साथ, उसी की सवारी पर, मजिस्ट्रेट से मिलने वापस चले आये। पर उन्होने अपने साथियो को यह आदेश दिया कि वे उस गाँव तक जाकर, वहाँ का सब हाल देखकर, सन्ध्या या रात तक वापस आ जायँ। मोतीहारी लौटने पर मजिस्ट्रेट ने पहले उनको वापस जाने को कहा, पर जब उन्होने उसकी यह बात न मानी तो बाजाब्ता हुक्म दे दिया। गाधीजी ने भी बाजाब्ता जवाब दे दिया कि वह हुक्म को नही मानेंगे, मजिस्ट्रेट जो चाहे, करे। इसपर मजिस्ट्रेट ने कहा कि बाजाब्ता उदूलहुक्मी का मुकदमा आप पर चलाया जायगा। साथ ही, यह भी अनुरोध किया कि जबतक बाजाब्ता कार्यवाही नही होती, आप देहातो में न जायँ। गाधीजी ने इस अनुरोध को मान लिया और बाजाब्ता कार्यवाही का इन्तजार करने लगे। इसके लिए बहुत देर तक ठहरना न पडा, क्योकि उसी दिन सम्मन आया और उसके दूसरे ही दिन मुकदमे की पेशी की तारीख पड गई।

गाधीजी ने उस रात को बहुत परिश्रम किया। पहले तो उन्होने अपने सभी मित्रो तथा सहकर्मियो को तार द्वारा मुकदमे की खबर दी। मेरे नाम से भी एक तार पटना भेजा, जिसमें लिखा था कि 'मजिस्ट्रेट ने मुझे चम्पारन छोडकर चले जाने की आज्ञा दी है, मैंने उसकी अवहेलना की और मुकदमा होनेवाला है जिसका इन्तजार कर रहा हूँ।' एक तार उन्होने अपने दक्षिण-अफ्रिका के सहकर्मी और मित्र मि० पोलक के नाम से प्रयाग भेजा, जहाँ वह ठहरे हुए थे। उन दिनो लार्ड चेम्सफोर्ड वाइसराय थे। गाधीजी से प्रवासी-हिन्दुस्तानी-प्रश्न के सम्बन्ध मे उनकी अच्छी मुलाकात थी। महात्माजी ने उनके नाम एक पत्र भेजा, जिसमें सारी घटना के साथ ही ब्रिटिश गवर्नमेंट से अपना पुराना सम्बन्ध भी बतलाया और अन्त में यह लिखा कि इसी गवर्नमेंट ने उनको सार्वजनिक सेवाओ के लिए सोने का 'केसरहिन्द' पदक दिया है जिसकी वह काफी कदर करते है, मगर जब गवर्नमेंट का उनमें विश्वास नही रहा और यह सार्वजनिक काम भी उन्हे नही करने देना चाहती, तो यह उनके लिए अयोग्य है कि उस पदक को वह

रखें, और इसलिए उन्होने जिन लोगो के पास वह पदक रखा है उन लोगो को लिख भेजा है कि वे उसे आपके पास भेज दें। उन्होने तार के अलावा बहुत मित्रो के पास पत्र भी लिखा, जिसमें उस वक्त तक का पूरा वृत्तान्त लिख भेजा। इसके अलावा, मुकदमे की पेशी के लिए अपना एक बयान तैयार किया जिसको उन्होने दूसरे दिन पेशी के समय पढा।

यह सब करते रात का अधिकाश वीत गया। इतने तार, चिट्ठियो और बयान को सिर्फ लिखा ही नही, प्राय सबकी नकल भी अपने पास कर रखी। आधी रात के वाद वावू धरणीधर और रामनौमी वावू उस गाँव से, जहाँ उनको गाधीजी ने तहकीकात करने को भेजा था, लौटे। उसी समय गाधीजी ने उनसे वहाँ का हाल सुन लिया और जो कुछ उन लोगो से अलग होने के वाद हुआ था, कह सुनाया। उन लोगो से यह भी कह दिया कि मुकदमे की पेशी के वाद उनकी सजा हो ही जायगी और वह जेल चले जायँगे तथा उन्होने पूछा कि इसके वाद आप लोग क्या कीजिएगा। सवाल ऐसा था जिसका उत्तर देना उन लोगो के लिए यकायक बडा कठिन था और इस प्रकार के घटनाक्रम को उन्होने आने के समय कभी स्वप्न में भी नही सोचा था। कोई दूसरा था भी नही जिससे राय-वात करते, और उत्तर दिये विना रह भी नही सकते थे। वावू धरणीधर एक बडे खरा वोलनेवाले, अपने ढग के एक वेढगा आदमी थे। वकालत खूब चली हुई थी और सवाल-जवाब करना जानते ही थे। उन्होने उत्तर दिया—"आप तो हमलोगो को यहाँ दुभापिया के काम के लिए लाये थे। वह काम आपके जेल चले जाने पर खतम हो जायगा और हमलोग वेकार हो जायँगे। इसलिए हम अपने-अपने स्थान पर लौट जायँगे।" महात्माजी ने पूछा, और इन गरीब रैयतो को यो ही छोड देंगे? इन्होने उत्तर दिया—"हमलोग और कर ही क्या सकते है, क्योकि हम समझ नही सकते कि हमलोग दूसरा कुछ क्या कर सकते हैं। मगर आप चाहें तो जिस तरह उनकी हालत देखना और उनकी शिकायतो की जाँच करना आप चाहते थे उस तरह हमलोगो से जवतक हो सकेगा, करेंगे। मगर गवर्नमेंट ने अगर हमलोगो पर भी आप ही की तरह जिला छोडकर चले जाने का हुक्म निकाला, तो हमलोग आपकी तरह उसकी अवज्ञा न करके चुपचाप चले जायँगे और अपने दूसरे साथियो को सब वातें समझा-बुझाकर काम जारी रखने के लिए भेज देंगे।" महात्माजी यह युक्ति सुनकर खुश हुए, पर पूरे सतुष्ट नही हुए, और कहा—"बहुत अच्छा, ऐसा ही कीजिएगा और इस सिलसिले को जहाँ

कर तैयार होकर कचहरी आयेंगे । यह एक कानूनी सवाल उस मुकदमे में जरूर उठता था कि वह हुक्म कानून के अनुसार ठीक था या नही । और, अगर वह ठीक नही था तो उसकी अवज्ञा के लिए सजा नही हो सकती थी । मैंने जो थोडा-सा विचार किया था तो उस समय इस नतीजे पर पहुँचा था कि जिला-मजिस्ट्रेट का हुक्म कानूनन गलत है और इसलिए उसकी उदूल-हुक्मी के लिए सजा नही हो सकती । शायद सरकारी वकील ने भी सोचा था कि इस तरह की बहस की जायगी और उसका उत्तर देने के लिए उन्होने मसाला तैयार कर लिया था । पर जब मुकदमा पेश हुआ तो यह सारा पुस्तकी परिश्रम व्यर्थ और अनावश्यक साबित हो गया । मुकदमा पेश होते ही सरकारी वकील ने गवाह पेश किया और उससे इस तरह के सवाल पूछने लगे जिनके उत्तर से यह साबित हो कि गाधीजी पर वह हुक्मनामा बाजाब्ता तामील हुआ था, जिसकी अवज्ञा के लिए मुकदमा चल रहा था । गाधीजी ने हाकिम से कहा—"यह गवाही अनावश्यक है । इसमें क्यो आपका और हमारा समय लगाया जाय । मै कबूल करता हूँ कि यह हुक्म मुझको मिला था और मैंने उसको मानने से इनकार कर दिया है । अगर आप इजाजत दें तो मुझे जो बयान करना है और जो मै लिखकर लाया हूँ, उसे पढ दूँ ।"

मजिस्ट्रेट और सरकारी वकील दोनो के लिए, और दूसरे जितने लोग कचहरी में मौजूद थे, सबके लिए, मुकदमे की पैरवी का यह एक बिल्कुल नया तरीका था और सब अचम्भे में पड गये कि अब देखें, क्या होता है । मजिस्ट्रेट ने बयान पढने की इजाजत दे दी । गाधीजी ने उसे पढ सुनाया—

"अदालत की आज्ञा से मै सक्षेप मे यह बतलाना चाहता हूँ कि नोटिस द्वारा मुझे जो आज्ञा दी गई उसकी अवज्ञा मैंने क्यो की । मेरी समझ में यह मेरे और स्थानीय अधिकारियो के बीच मतभेद का प्रश्न है । मै इस देश में राष्ट्र-सेवा तथा मानव-सेवा करने के विचार से आया हूँ । यहाँ आकर उन रैयतो की सहायता करने के लिए, जिनके साथ कहा जाता है कि नीलवर साहब लोग अच्छा व्यवहार नही करते, मुझसे बहुत आग्रह किया गया था । पर जबतक मै सब बातें अच्छी तरह न जान लेता, तबतक रैयतो की कोई सहायता नही कर सकता था । इसलिए मै, यदि हो सके तो, अधिकारियो और नीलवरों की सहायता से, सब बातें जानने के लिए आया हूँ । मै किसी दूसरे उद्देश्य से यहाँ नही आया हूँ । मुझे यह विश्वास नही होता कि मेरे यहाँ आने से किसी प्रकार शान्तिभग या प्राणहानि हो सकती है । मै कह

सकता हूँ कि ऐसी बातो का मुझे बहुत-कुछ अनुभव है। अधिकारियो को जो कठिनाइयाँ होती है उनको मैं समझता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि उन्हे जो सूचना मिलती है, केवल उसीके अनुसार वे काम कर सकते है। कानून माननेवाले व्यक्ति की तरह मेरी प्रवृत्ति यही होनी चाहिए थी और ऐसी प्रवृत्ति हुई भी कि मैं इस आज्ञा का पालन करूँ। पर मैं उन लोगो के प्रति, जिनके कारण मैं यहाँ आया हूँ, अपने कर्तव्य का उल्लघन नही कर सकता था। मैं समझता हूँ कि उन लोगो के बीच रहकर ही मैं उनकी भलाई कर सकता हूँ। इस कारण, मैं स्वेच्छा से इस स्थान से नही जा सकता था। दो कर्तव्यो के परस्पर विरोध की दशा में मैं केवल यही कर सकता था कि अपने-आपको हटाने की सारी जिम्मेवारी शासको पर छोड दूँ। मैं भली भाँति जानता हूँ कि भारत के सार्वजनिक जीवन में मुझ-जैसी स्थिति के लोगो को आदर्श उपस्थित करने में बहुत ही सचेत रहना पडता है। मेरा दृढ विश्वास है कि जिस स्थिति में मैं हूँ उस स्थिति में प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए वही काम करना सबसे अच्छा है जिसे करने का इस समय मैंने निश्चय किया है, और वह यह है कि बिना किसी प्रकार का विरोध किये आज्ञा न मानने का दण्ड सहने के लिए तैयार हो जाऊँ। मैंने जो बयान दिया है वह इसलिए नही कि जो दड मुझे मिलनेवाला है वह कम किया जाय, बल्कि यह दिखलाने के लिए कि मैंने सरकारी आज्ञा की अवज्ञा इस कारण नही की है कि मुझे सरकार के प्रति श्रद्धा नही है, वरन् इस कारण की है कि मैंने उससे भी उच्चतर आज्ञा—अपनी विवेकबुद्धि की आज्ञा—का पालन करना उचित समझा है।"

बयान सुनते ही सब लोग स्तब्ध हो गये। इस तरह का बयान शायद इसके पहले हिन्दुस्तान की किसी ब्रिटिश कचहरी में किसी ने न दिया था और न किसी ने सुना था। मजिस्ट्रेट भी हक्का-बक्का हो रहा। उसने तो सोचा था कि और मुकदमो की तरह इसमे भी गवाही होगी और उसके बाद बहस होगी और इन सबमें काफी समय लगेगा। इस बीच वह जिला-मजिस्ट्रेट से भी सलाह कर सकेगा कि उसे क्या फैसला सुनाना चाहिए और कितनी सजा देनी चाहिए इत्यादि। पर इस बयान के बाद न तो गवाही की जरूरत रही और न बहस की। केवल एक ही बात बाकी रह गई और वह यह कि क्या और कितनी सजा दी जाय। वह इसके लिए अभी तैयार नही था। उसने फिर कहा—आपने बयान तो पढ दिया, पर जो कुछ आपने अबतक कहा है उसमें आपने साफ नही कहा है कि आप

कसूरवार है या नही । गाधीजी ने कहा, मुझे जो कहना था, कह दिया है ।
इस पर उसने सोचा कि फिर समय मिलने का मौका है और कहा कि तव
तो मुझे गवाही भी लेनी पडेगी और वहस भी सुननी पडेगी । गाधीजी कव
चूकनेवाले थे । उन्होने तुरत कहा, अगर ऐसा है तो लीजिए, मै कवूल
करता हूँ कि मै कसूरवार हूँ । अव उसके लिए फिर कोई भी रास्ता समय
निकालने का नही रह गया । उसने कहा, मै कुछ घटो के वाद हुक्म सुना
दूँगा, इस वीच में आप जमानत देकर जा सकते है । गांधीजी ने जवाव
दिया कि मेरे पास कोई जमानत देनेवाला नही है, मै जमानत नही दूँगा ।
तब, उसके लिए फिर एक जटिल समस्या सामने आ गई कि इस वीच
गांधीजी पुलिस-हवालात मे रखे जायँ या क्या किया जाय। उसने कहा, अगर
जमानत नही दे सके, तो जाती मुचलका ही दे दीजिए । गांधीजी ने उत्तर
दिया कि मै यह भी नही कर सकता । तव उसने कहा, अच्छा, मै तीन वजे
हुक्म सुनाऊँगा, उस वक्त आप हाजिर हो जाइए । गांधीजी ने कहा—हाँ,
समय पर जरूर हाजिर हो जाऊँगा ।

मजिस्ट्रेट इजलास से उठकर चला गया । गाधीजी कही दूसरी जगह जा
रहे थे कि जिले के पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट की तरफ से उनके पास सन्देश आया
कि वह उनसे मिलना चाहता है । पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट अग्रेज था, पर वह
शायद दक्षिण अफ्रिका का रहनेवाला था या दूसरे प्रकार का कोई सम्बन्ध
दक्षिण अफ्रिका के साथ रखता था । उनसे वह कुछ देर तक वातें करता
रहा, जिनमें शायद दक्षिण अफ्रिका की भी कुछ वातें थी । जव तीन
वजे का समय नजदीक आया तो मजिस्ट्रेट ने गाधीजी को कहला भेजा कि
वह उस दिन हुक्म नही सुनाएगा और उसके लिए कोई दूसरा दिन, पाँच-
सात दिनो के वाद का, मुकर्रर कर दिया । यह सुनकर गाधीजी निवास-
स्थान पर वापस आ गये । वहाँ भी रैयतो की भीड जुटी थी ।

इधर प्राय इसी समय हम लोगो की गाडी पहुँची और हम लोग सीधे
गाधीजी के निवास-स्थान पर पहुँचे । वह भी थोडी ही देर पहले कचहरी
मे वापस आये थे । हम लोगो को देखकर—विशेष कर मजहरुलहक साहव
तथा मि० पोलक को देखकर—विशेष प्रसन्न हुए । हम लोगो का एक-एक
करके परिचय कराया गया । जव मेरी वारी आई तो मुझे देखकर वह
मुस्कुराये और वोले—"आप भी आ गये ? मै तो आपके घर गया था ।"
ये पहले ही शव्द थे जो उन्होने मुझसे खास तौर से कहा हो और मैने उनसे
जो सुना हो । मै शरमाया, क्योकि जो वर्ताव उनके साथ मेरे डेरे पर हुआ

था वह मैंने सुन लिया था। उन्होने समझ लिया कि मैं कुछ अप्रतिभ हो रहा हूँ। वस, तुरत यह वात वही छोडकर मुकदमे की वात हमलोगो से कहने लगे। उस वक्त तक जो कुछ हुआ था, सक्षेप में सव वता दिया और अन्त में कहा कि आपलोगो के जो दो साथी हैं, उनसे विस्तार-पूर्वक सव सुन लीजिए, तवतक मैं मि० पोलक से वातें करता हूँ। निवास-स्थान में एक वरामदा था, जहाँ पर एक चौकी रखी थी, उसी पर गाधीजी वैठे थे। वह इतनी वडी नही थी कि सव वैठ सकें। इसलिए कुछ वैठे और कुछ खडे ही सव वातें सुनते रहे। अन्त में हमलोग कमरे के अन्दर चले गये और वहाँ सव वातें विस्तार-पूर्वक अपने मित्रो से सुन ली। उनलोगो का जेल जाने का निश्चय भी हमलोगो ने सुन लिया, और वही प्रश्न हमलोगो के सामने भी आ गया। उन दोनो के निश्चय के वाद हमलोग दूसरा कर ही क्या सकते थे? हमने भी वही निश्चय किया।

गाधीजी जव मि० पोलक से वातें कर चुके और हमलोगो के नजदीक आये तव पूछा, सव वातें मालूम हो गई? हमारे 'हाँ' कहने के वाद उन्होने एकवारगी जेल का सवाल भी पूछ ही दिया। हमलोगो ने उस सवाल का भी, जैसा सोचा था वैसा, जवाव दे ही दिया। वह वहुत प्रसन्न हुए। पर इतने पर ही वह वात छोडना नही चाहते थे। उन्होने कागज-पेन्सिल हाथ में लेकर कहा कि हमारे जेल चले जाने के वाद आपलोग दो-दो आदमियो की टोली में जाँच का काम जारी रखेंगे, और जव गवर्नमेंट एक टोली को जेल भेज दे तो दूसरी टोली आ जाय, और इस तरह आप काम चलाते जाइए; अगर कोई दूसरे भी आपकी तरह तैयार हो जायँ तो वह भी ऐसा ही करें। यह कह उन्होने वहाँ उपस्थित लोगो की तीन टोलियाँ वना दी जिनमें मजरुलहक साहव और वावू व्रजकिशोर प्रसाद को तथा मुझे नेता वना दिया और सवके नाम भी लिख डाले। हमलोगो में से कोई इसके लिए तैयार गया नही था। यह फैसला अचानक करना पडा था। हमने यह सोचा कि यह अच्छा हुआ कि पाँच-सात दिनो का समय मिल गया। इस वीच हम सव अपना निजी कारवार समेट लेंगे। मजहरुलहक साहव के हाथ में एक सेशन (दौरे) का मुकदमा था जिसकी पेशी इसी वीच होनेवाली थी। उन्होने निश्चय कर लिया कि उसको इस वीच खतम करके उस दिन तक, जिस दिन मजिस्ट्रेट हुक्म सुनानेवाला था, वह वापस आ जायँगे, ताकि गाधीजी के जेल जाने के वाद चम्पारन का नेतृत्व सँभाल लें। वावू व्रजकिशोर भी इसी तरह कुछ काम पूरा करके

उस दिन तक वापस आ जायेंगे, यह निश्चय करके वे दोनो दूसरे दिन सबेरे चले गये, हमलोग रह गये।

गाधीजी को जिला-मजिस्ट्रेट का खत आया जिसमें उसने लिखा कि सारी बातें उसने गवर्नमेंट को लिख भेजी हैं और अनुरोध किया है कि जबतक मुकदमे का फैसला न हो जाय, गाधीजी गाँव में न जायँ। गाधीजी ने इस बात को मान लिया और हमलोग वही पर उस दिन का इन्तजार करने लगे। किन्तु इस पत्र के पहुँचने पर गाधीजी को कुछ ऐसा आभास हो गया कि अब शायद गवर्नमेंट इस चीज को आगे नही बढायेगा और जेल जाने की बात न होगी। तो भी यह तो अनिश्चित था ही। उन्होने, उस दिन तक जो कुछ हुआ था, उसकी सूचना भी मित्रो और मुख्य- मुख्य पत्रो के सम्पादको के पास लिख भेजी। सम्पादको को सब बातो की जानकारी के लिए उन्होने खबर दे दी, पर उनकी तरफ से कुछ छापने के लिए नही। अखबारो में जो कुछ छपा, वह सवाददाताओ का दिया समाचार था, गाधीजी का दिया हुआ नही।

दूसरा अध्याय

गाधीजी से यह मेरी पहली मुलाकात थी जिसमें उनसे मेरी रूवरू वातें हुईं। मैं यह नही कह सकता कि उस समय मुझे यह अनुभव हुआ हो कि मेरे दिल पर कोई वहुत वडा असर पडा अथवा साथ ही, सारी जिन्दगी का रुख इस मुलकात के होते ही फिर गया। यह कैसे हुआ? स्वर्गीय गोखले से मेरी मुलाकात कई वर्ष पहले हुई थी। उन्होने मुझे वुलाया था और भारत-सेवक-समिति में शरीक होने को कहा था। कुछ देर तक वातें हुई थी। दिल पर असर पडा था और मैंने सोचा था कि जैसा वह कहते हैं, वैसा करना चाहिए। कई दिनो तक इस पर विचार भी करता रहा। पर वैसा कर नहीं सका। इस वार क्यो और कैसे यह निश्चय हो गया, मैं नहीं कह सकता। केवल जेल जाने की ही वात उस समय हमारे सामने आई, सारे जीवन को देश-सेवा में लगा देने की वात दरपेश नहीं थी। पर इस प्रकार अपनी खुशी से जेल जाने का तरीका भी तो केवल मेरे ही लिए नहीं, सारे देश के लिए नया था। उस समय तक हमलोग जेल जाने योग्य काम करते हुए भी अपने को जेल से वचाने में ही वुद्धिमत्ता और कौशल समझते थे। अगर राजद्रोह की वात हम करना चाहते थे, पर ऐसी वात करने के समय हमेशा पिनलकोड की १२४-ए-धारा को सामने रखकर इस तरीके से करते थे कि जिससे उसके जाल में हम न फँसें। हम साँप मारना चाहते थे और साथ ही लाठी को भी वचा लेना चाहते थे। और, जो इस तरह जितनी सफलता से वातें कर सकता था, वह उतना ही चतुर समझा जाता था। क्रान्तिकारी लोग अपनी जान हथेली पर लेकर काम करते थे। पर साथ ही, जहाँ तक हो सकता था, अपने को वचा रखने का भी रास्ता खुला रखते थे, जान-वूझ कर आग में कोई कूदना नही चाहता था। अगर मुकदमा चलता था तो वचाव के लिए वकीलो की मदद ली जाती थी, और जो कुछ भी वचने के लिए मुकदमे की पैरवी में जरूरी समझा जाता था,

किया जाता था। शायद ही कोई अपना कसूर कबूल करता। हम तो इसी रीति को उस समय तक जानते थे और उस समय तक हमने इस तरह का कोई खतरा अपने ऊपर नही लिया था। विचारो से और मिजाज से नरम दल का ही आदमी मैं अपने को मानता था और आज भी मानता हूँ। क्यो और कैसे आचनक ऐसा निश्चय कर लिया, जो केवल वैयक्तिक जीवन के लिए ही एक नया रास्ता नही बताता था, वल्कि देश के सार्वजनिक जीवन के लिए भी एक नया दरवाजा खोल देता था। हाँ, हमारे सामने अपने दो मित्रो का, जो वहाँ पहले से ही गाधीजी के साथ आये थे, निश्चय था। पर हमारे साथ आये हुए मजहरुलहक साहब और ब्रजकिशोर बाबू—दोनो ही उनसे बडे समझे जाते थे। तो क्या बाबू धरणीधर और बाबू रामनौमी के निश्चय का उनलोगो ने भी विना सोचे ही अनुसरण कर लिया और हमने भी इनका वैसे ही अनुसरण कर लिया? क्या यह केवल एक भेंड-धसान था? यह सब विचार-विश्लेपण कुछ क्षण के वाद किया जा सकता है। पर उस क्षण में—मुझे जहाँ तक स्मरण है—मैंने कोई विशेप विचार नही किया। और, मैं जैसा ऊपर कह आया हूँ, पहली मुलकात का मेरे जानते कोई इतना वडा असर नही हुआ था कि स्वर्गीय गोखले की मुलाकात अपने गहरे असर के बावजूद जो नही कर सकी थी, वह यह कर देती। तो भी ऐसा हुआ। हो सकता है कि बापू की आकर्षण-शक्ति ने परोक्ष में काम किया और हमको उनके असर का पता भी न लगने दिया।

मैंने मुलाकात के पहले की बातो का इतना विस्तार-पूर्वक इसलिए वर्णन किया है कि पाठक पूरी तरह से सही बातो से परिचित हो जायँ, क्योकि जो कुछ उन चन्द दिनो में गाधीजी ने चम्पारन में किया, उसी का विस्तार असहयोग-आन्दोलन द्वारा सारे देश में भी किया। वहाँ पर उन्होन पीपल का वह बीज रोप दिया जिसको किसी ने देखा भी नही और समय पाकर वही अकुरित हो, विशाल वृक्ष होगया जिसके साये में देश ने विदेशी राज्य से मुक्ति पाई और जिसके साये में हम सच्चे अर्थ का स्वराज्य पाने की आशा रखते हैं।

थोडा और इस पर विचार करके देखें। गरीब जनता की दुख-भरी कहानी ने उनको आकर्षित किया, पर जबतक वह सब बातो की पूरी तरह जाँच न कर लें और उनका यह अपना विश्वास पक्का न हो जाय कि जिन शिकायतो को वह करना चाहते हैं वे सच्ची हैं, वह कुछ करना नही चाहते। यहाँ तक कि वहुत अनुरोध करने पर भी वह कांग्रेस में एक ऐसे ढीले-ढाले प्रस्ताव पर वोलने को राजी न हुए जिसमें गवर्नमेंट से केवल इतना ही

अनुरोध किया गया था कि वह शिकायतो की जाँच करावे। साथ ही, अवसर पाते ही, उन्होने जानकारी के लिए जाँच करने का जो वादा किया था उसको पूरा किया। मुजफ्फरपुर पहुँच कर उन्होंने पहला काम यह किया कि वह जो करना चाहते थे, उसकी सूचना उन्होंने विरोधियो को दी और उनकी सहायता भी माँगी। दो विरोधी थे—पहले तो थे नीलवर लोग जिनके अत्याचारो के सम्बन्ध में वह जाँच करने आये थे, और दूसरे थे—सरकारी कर्मचारी जो इन अत्याचारो से प्रजा की रक्षा नही कर सकते थे और जिनके खिलाफ यह शिकायत थी कि वे नीलवरो का पक्ष लेते है तथा गरीबो को सताने में मदद देते है। इन दोनो विरोधियो के प्रतिनिधियो से उन्होंने मुलाकात की। नीलवरो की सभा के मन्त्री और तिरहुत-डिवीजन के कमिश्नर से भी सब बातें कही और अपना उद्देश्य बताया तथा उसकी पूर्त्ति के लिए उनसे मदद माँगी। मदद न मिलने पर भी, और उनके मना करने पर भी, अपना उद्देश्य नही छोडा और अपने कर्त्तव्य में लगे रहे। चम्पारन की गरीबी का हाल वह सुन चुके थे, पर वहाँ पहुँचने के पहले ही मुजफ्फरपुर में ही गाँवो की गरीबी और दुर्दशा का कुछ नमूना देख लिया और यह भी कह दिया कि जबतक इन गाँवों की दशा न सुधरेगी, देश उन्नत नहीं हो सकता।

मोतीहारी पहुँचकर उन्होने एक मिनट का भी समय नहीं खोया। कमिश्नर से बातचीत के बाद ही शायद उनको आभास मिल गया था कि गवर्नमेंट उनको चम्पारन में जाँच नही करने देगी। इसलिए वह जल्द-से-जल्द वहाँ पहुँचना चाहते थे और गवर्नमेंट की कार्रवाई के पहले, जहाँ तक जो कुछ हो सकता था, उसे देख लेना चाहते थे। सुनने का काम तो लखनऊ में आरम्भ हुआ, मुजफ्फरपुर और मोतीहारी पहुँचकर तो गहराई में जाने का निश्चय हो गया। केवल निश्चय ही नही हुआ, इस निश्चय के अनुसार कार्य भी आरम्भ हो गया। आरम्भ में ही गवर्नमेंट की ओर से विघ्न भी पडा। १४४ की नोटिस की अवहेलना का निश्चय भी उसी तेजी के साथ किया गया जिस तेजी के साथ और सब काम किये जा रहे थे। मुकदमा चलने पर अपना बचाव न करके उन सभी बातो को कबूल कर लिया जिनको उन्होंने किया था। उसके लिए जो भी दड हो, उसे दृढता-पूर्वक बर्दाश्त करने का निश्चय भी मजिस्ट्रेट को बतला दिया। यह एक नई चीज थी। उस समय जो बयान उन्होने दिया था उसमें एक प्रकार से उनके उसी बयान की प्रतिध्वनि मिलती थी, जो उन्होंने १९२२ में अपने ऊपर राजद्रोह का मुकदमा चलने पर अहमदाबाद के सेशन-जज के सामने दिया था। वह

बयान यहाँ नीचे दिया गया है। परिश्रम और दत्तचित्तता का नमूना हमलोगो के लिए तो क्या था, पर उनके जीवन का एक अङ्ग बन गया था। सादगी तथा सयम भी हमारे लिए नये थे, पर उनके जीवन के तो वे भी पहले से ही अङ्ग बन गये थे, जो दिन-दिन और भी वैसे ही बढते गये जैसे-जैसे कार्यक्षेत्र बढता गया।

अहमदाबाद का बयान *

"मेरे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ १८९३ में, दक्षिण अफ्रिका में, विषम परिस्थिति में हुआ। उस देश के ब्रिटिश अधिकारियो के साथ मेरा पहला समागम कुछ अच्छा न रहा। मुझे पता लगा कि एक मनुष्य और एक हिन्दुस्तानी के नाते वहाँ मेरा कोई अधिकार नही है। मैंने यह भी पता लगा लिया कि मनुष्य के नाते मेरा कोई अधिकार इसलिए नही है कि मै हिन्दुस्तानी हूँ।

"पर मैंने हिम्मत न हारी। मैंने समझा था कि भारतीयो के साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहार का दोष एक अच्छी खासी शासन-व्यवस्था में यो ही आकर घुस गया है। मैंने खुद ही सरकार के साथ दिल से सहयोग किया। जब कभी मैंने सरकार में दोष पाया तब मैंने उसकी खूब आलोचना की, पर मैंने उसके विनाश की इच्छा कभी नही की।

"जब १८९० में बोअरो की चुनौती ने सारे ब्रिटिश-साम्राज्य को महान् विपद में डाल दिया, तब मैंने उस अवसर पर अपनी सेवाएँ भेंट की— घायलो के लिए एक स्वयसेवक-दल बनाया और 'लेडी-स्मिथ' की रक्षा के लिए लडी गई लडाइयो में काम किया। इसी प्रकार, जब १९०६ में जूलू लोगो ने विद्रोह किया तब मैंने स्ट्रेचर पर घायलो को ले जानेवाला दल सगठित किया, और जबतक विद्रोह दब न गया, बराबर काम करता रहा। इन दोनो अवसरो पर मुझे पदक मिले और खरीतो तक में मेरा जिक्र किया गया। दक्षिण अफ्रिका में मैंने जो काम किया उसके लिए लार्ड हार्डिञ्ज ने मुझे 'कैसर-ए-हिन्द'-पदक दिया। जब १९१४ में इङ्गलैड और जर्मनी में युद्ध छिड गया तव मैंने लदन में हिन्दुस्तानियो का एक स्वयसेवक-दल बनाया। उस दल में मुख्यत विद्यार्थी थे। अधिकारियो ने उस दल के काम की सराहना की। जब १९१७ में लार्ड चेम्सफोर्ड ने दिल्ली की युद्ध-परिपद में खास तौर से अपील की, तब मैंने 'खेडा' में रँगरूट भरती करते हुए अपने

*यह मुकदमा, अहमदाबाद के दौरा-जज के इजलास में, सन् १९२२ में १८ मार्च से शुरू हुआ था।

स्वास्थ्य तक को जोखिममें डाल दिया । मुझे इसमें सफलता मिल ही रही थी कि युद्ध बन्द हो गया, वस आज्ञा हुई कि अव और रगरूट नही चाहिए । इन सारे सेवा-कार्यो में मेरा एकमात्र विश्वास यही रहा कि इस प्रकार मैं साम्राज्य में अपने देशवासियो के लिए वरावरी का दर्जा हासिल कर सकूँगा ।

"पहला धक्का मुझे रौलट-ऐक्ट ने दिया । यह कानून जनता की वास्तविक स्वतत्रता का अपहरण करने के लिए वनाया गया था । मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इस कानून के खिलाफ मुझे जोर का आन्दोलन करना चाहिए । इसके वाद पजाव के भीषण काड का नम्वर आया । इसका आरम्भ हुआ जलियाँवाला-वाग के कत्ले-आम से । इसका अन्त हुआ पेट के वल रेंगाने, खुले आम वेंत लगाने और वयान से वाहर दूसरे अपमानजनक कारनामो के साथ । मुझे यह भी पता लग गया कि प्रधान मन्त्री ने भारत के मुसलमानो को जो आश्वासन दिया कि तुर्की और इस्लाम के तीर्थ-स्थानो की पवित्रता वदस्तूर रक्खी जायगी, वह कोरा आश्वासन ही रहेगा ।

"वैसे १९१९ की अमृतसर-कॉंग्रेस में अनेक मित्रो ने मुझे सावधान किया और मेरी नीति की सतर्कता में सदेह प्रकट किया, पर फिर भी मैं इस विश्वास पर अडा रहा कि भारतीय मुसलमानो के साथ प्रधान मन्त्री ने जो वादा किया है वह पूरा किया जायगा, पंजाव के जख्म भरे जायेंगे और नये मिले हुए 'सुधार' लाख ना काफी तथा असतोषजनक होने पर भी भारत के जीवन में एक नई आशा को जन्म देंगे । फलत , मैं सहयोग और माटेगु-चेम्सफोर्ड सुधारो को सफल वनाने की वात पर अडा रहा ।

"पर मेरी आशाएँ धूल में मिल गई । खिलाफत-सम्वन्धी वचन पूरा किया जानेवाला नही था । पजाव-सम्वन्धी अपराध पर लीपापोती कर दी गई थी । इधर अधपेट भूखे रहनेवाले भारतवासी धीरे-धीरे निर्जीव होते जा रहे है । वे यह नही समझते कि उन्हें जो थोडा-सा सुख-ऐश्वर्य मिल जाता है, वह विदेशी शोपक की दलाली करने के कारण है और सारा नफा तथा सारी दलाली जनता के खून से निकाली जाती है । वे यह नहीं जानते कि ब्रिटिश भारत में जो सरकार कानूनन कायम है वह इसी जनता के धन-शोषण के लिए चलाई जाती है । चाहे जितने झूठे-सच्चे तर्को से काम लिया जाय, हिन्दुस्तान के साथ चाहे जैसी चालाकी की जाय, पर असख्य गावों में जो नर-ककाल दिखाई पड रहे है उनकी प्रत्यक्ष गवाही किसी तरह झुठलाई नही जा सकती । यदि हमारा कोई ईश्वर है, तो मुझे इसमें तनिक भी सदेह नहीं है कि इतिहास मे अपने ढग का निराला कहलाने योग्य जो

यह अपराध किया जा रहा है उसकी जवाबदेही इङ्गलैंड की जनता और हिन्दुस्तान के नागरिको पर होगी। इस देश मे कानून का उपयोग विदेशी धन-शोषको के सुभीते के लिए किया गया है। पजाव के फौजी कानून के सम्बन्ध में मैंने जो निष्पक्ष जांच की है, उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ, कि १०० पीछे ९५ मामलो में सजा के फैसले बिल्कुल खराब रहे। हिन्दुस्तान के राजनीतिक मुकदमो का तजर्वा मुझे बताता है कि दस पीछे नौ दडित आदमी सोलह आने निर्दोष थे। इन आदमियो का केवल इतना ही अपराध था कि वे अपने देश से प्रेम करते थे। १०० पीछे ९९ मामलो में देखा गया है कि हिन्दुस्तान की अदालतो में हिन्दुस्तानी को यूरोपियन के मुकाबले में न्याय नही मिलता। मैं अतिशयोक्ति से काम नही ले रहा हूँ। जिस-जिस भारतवासी को इस तरह के मामलो से काम पडा है उसका तजर्वा यही है। मेरी राय में, कानून का दुरुपयोग, जानबूझ कर सही या बिना जाने-बूझे सही, धन-शोषक के लिए किया जाता है।

"सबसे बडे दुर्भाग्य की बात यह है कि जिन अँगरेजो और उनके हिन्दुस्तानी सहयोगियो के जिम्मे इस देश का शासन-भार है वे खुद यह नही जानते कि यहाँ वर्णन किये गये उक्त अपराधो में उनका भी हाथ है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि बहुत-से अँगरेज और हिन्दुस्तानी अधिकारी इस बात में हृदय से विश्वास रखते है कि जो शासन-व्यवस्था वे अमल में ला रहे हैं, वह ससार की बढिया-से-बढिया शासन-व्यवस्थाओ में से है और हिन्दुस्तान धीरे-धीरे—परन्तु निश्चित रूप से—उन्नति कर रहा है। वे यह नही जानते कि कैसे सूक्ष्म—परन्तु करामाती—ढग से आतक का सिक्का बैठाया गया है, किस तरह एक ओर शक्ति का सगठित प्रदर्शन करके दूसरी ओर आत्मरक्षा की—या बदले में प्रहार करने की—तमाम शक्तियाँ छीन कर लोग नि सत्व तथा पौरुषहीन बना दिये गये है। इससे लोगो को अब इस प्रकार रहने की टेव पड गई है कि जिससे शासक-वर्ग का अज्ञान तथा आत्म-प्रवचना और भी बढ गई है। जिस '१२४ ए' धारा के अन्तर्गत मुझ पर मुकदमा चलाया गया है वह नागरिको की आजादी का अपहरण करने में ताजीरात-हिन्द की धाराओ में सिरताज है। प्रेम न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न कायदे-कानून के मातहत रह सकता है। यदि किसी आदमी के हृदय में किसी दूसरे आदमी के प्रति प्रेम के भाव न हो तो, जबतक वह हिंसापूर्ण कार्य या विचार या प्रेरणा न करे तबतक उसे अपने अप्रीति के भाव प्रकट करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। पर श्रीयुत बैंकर पर

और मुझ पर जिस धारा का प्रयोग किया गया है उसके अनुसार अप्रीति फैलाना अपराध है । इस धारा के अन्तर्गत चलाये गये कुछ मामलो का मैंने अध्ययन किया है और मै जानता हूँ कि इस धारा के अनुसार देश के कई परमप्रिय देश-भक्तो को सजा दी गई है । इसलिए, इस धारा के अनुसार मुझपर जो मामला चलाया गया है उसे मै अपना सौभाग्य समझता हूँ । मैंने सक्षेप में अपनी अप्रीति के कारणो का दिग्दर्शन करा दिया है । किसी शासक के प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का दुर्भाव नही है । स्वय सम्राट् के व्यक्तित्व के प्रति तो मुझमें अप्रीति का भाव बिल्कुल नही । परन्तु जिस शासन-व्यवस्था ने इस देश को अन्य सारी शासन-व्यवस्थाओ की अपेक्षा अधिक हानि पहुँचाई है उसके प्रति अप्रीति के भाव रखना मै सद्‌गुण समझता हूँ । अँगरेजो की अमलदारी में हिन्दुस्तान में पुरुषत्व का, अन्य अमलदारियो की अपेक्षा, अधिक अभाव हो गया है । जब मेरी ऐसी धारणा है तब इस शासन-व्यवस्था के प्रति प्रेम के भाव रखना मै पाप समझता हूँ । इसलिए, मैंने अपने इन लेखो में, जो मेरे खिलाफ प्रमाण के तौर पर पेश किये गये है, जो कुछ लिखा है उसे लिख पाना अपना परम सौभाग्य समझता हूँ ।

"वास्तव में मेरा विश्वास तो यह है कि इङ्गलैंड और भारत जिस अप्राकृतिक रूप से रह रहे हैं, उससे असहयोग द्वारा उद्धार पाने का मार्ग बताकर मैंने दोनों की एक सेवा की है । मेरी विनम्र सम्मति में, जिस प्रकार अच्छाई से सहयोग करना कर्तव्य है, उसी प्रकार बुराई से असहयोग करना भी कर्तव्य ही है । इससे पहले, बुराई करनेवाले को क्षति पहुँचाने के लिए हिंसात्मक ढग से असहयोग प्रकट किया जाता रहा है । पर मैं अपने देशवासियो को यह बताने की चेष्टा कर रहा हूँ कि हिंसा बुराई को कायम रखती है । अत , बुराई की जड काटने के लिए यह आवश्यक है कि हिंसा से वे बिल्कुल अलग रहें । अहिंसा का मतलब यह है कि बुराई से असहयोग करने के लिए जो कुछ भी दड मिले उसे स्वीकार कर लें । अत , मै यहाँ उस कार्य के लिए, जो कानून की निगाह में जानबूझ कर किया गया अपराध है और जो मेरी निगाह में किसी नागरिक का सबसे बडा कर्तव्य है, सबसे बडा दड चाहता हूँ और सहर्ष उसे ग्रहण करने को तैयार हूँ । आपके जज और असेसरो के सामने सिर्फ दो ही मार्ग हैं । यदि आपलोग हृदय मे समझते हैं कि जिस कानून का प्रयोग करने के लिए आपसे कहा गया है वह बुरा है और मै निर्दोष हूँ, तो आप लोग अपने-अपने पद से इस्तीफा दे दें और बुराई से अपना सम्बन्ध तोड लें । अथवा, यदि आपका विश्वास हो कि जिस

कानून का प्रयोग करने में आप सहायता दे रहे है वह वास्तव मे इस देश की जनता के मगल के लिए है और मेरा आचरण लोगो के अहित के लिए है, तो मुझे बडा दण्ड दें।"

चम्पारन में पहुँचते ही उनको अनायास कुछ काम करनेवाले भी मिल गये जिन्होने, हो सकता है, बिना जाने-बूझे और बिना सोचे-विचारे, उनका अनुकरण किया। चम्पारन का छोटा क्षेत्र था, इसलिए थोडे ही लोगो के थोडे दिनो तक काम करने की जरूरत थी। जब देश-व्यापी विदेशी राज्य से मुक्ति प्राप्त करने का और स्वराज्य स्थापित करने का महान् कार्य उन्होने अपने हाथ में लिया तब क्या देश के लाखो-लाख स्त्री-पुरुषो ने ठीक वैसा ही उनका अनुसरण नही किया जैसा चम्पारन में चन्द लोगो ने किया था? क्या देश ने वह त्याग करके नही दिखलाया जिसकी केवल तैयारी ही करना चम्पारन के काम के लिए काफी साबित हो गया? अन्त में, चम्पारन में सफलता मिली और पूरी सफलता मिली, क्योकि नीलवरो का जुल्म, जिसको दूर करने वह गये थे, खतम हो गया। साथ ही, गवर्नमेंट और नीलवरो के साथ उनका सम्बन्ध अच्छा रहा। बहुतेरे अनुभव मधुर साबित हुए, और यह तब, जब ऐसा मालूम होता था कि गाधीजी की कार्रवाइयो से उन दोनो का बहुत बडा नुकसान होगा, और उस समय शायद हुआ भी, पर अन्त में वे नीलवर अपनी कोठियो, जमीनो और दूसरे प्रकार के माल-मवेशियो को अच्छी कीमत पर बेच, पैसे लेकर खुशी-खुशी घर गये। हिन्दुस्तान की स्वराज्य-प्राप्ति का भी ठीक ऐसा ही फल अब तक हुआ है और जो बाकी है वह आगे वैसा ही मधुर होगा। देखने में तो अँगरेजो का साम्राज्य खतम हो गया, पर उसके खतम होने पर भी अँगरेजो और हिन्दुस्तानियो के बीच सद्भावना बढ गई है और मेरा विश्वास है कि अन्त में अँगरेज हमारी स्वराज्य-प्राप्ति से नुकसान नही उठायेंगे—लाभान्वित ही होगे। चम्पारन में भी एक जबरदस्त नीलवर था जो अन्त तक, सब कुछ हो जाने के बाद भी, विरोधी बना रहा। पर उसका कोई खास असर न तो चम्पारन के लोगो पर पडा और न दूसरे ही लोगो पर। क्या मि० चर्चिल की वही हालत नही हुई जो चम्पारन में मि० इर्विन की थी? इसलिए मैंने उस समय भी सोचा था और आज भी लिख रहा हूँ कि गाधीजी के स्वराज्य-आन्दोलन का बीज चम्पारन में ही बोया गया और उसी भरह वह फूला-फला जिस तरह हमने चम्पारन में उसको छोटे पैमाने पर फूलते-फलते देखा था। मैंने 'चम्पारन में महात्मा गाधी' नामक अपनी पुस्तक १९१९ में लिखी थी। उसकी

भूमिका में मैंने निम्नलिखित प्रकार से लिखा था। उस समय असहयोग-आन्दोलन का अभी आरम्भ ही था—इसमें कितनी विघ्न-बाधाएँ आयेंगी, कितनी मुश्किलो को हल करना होगा और उसका क्या नतीजा होगा, हम देख नही सकते थे। इसका भी अनुमान नही था कि इसमें कितना समय लगेगा, पर जैसा चम्पारन के अनुभव ने मुझे बतलाया था, मेरी आशा थी कि यह महान् कार्य भी उसी प्रकार सिद्ध होगा और हुआ भी है।

'चम्पारन में महात्मा गांधी' की भूमिका

"यह पुस्तक सन् १९१८ और १९१९ की दुर्गापूजा की छुट्टियो में लिखी गई थी, पर कई कारणो से आजतक पाठको की सेवा में उपस्थित नही की जा सकी। इस पुस्तक को पढने से पाठको को विदित हो जायगा कि सत्याग्रह और असहयोग के सम्बन्ध में जो कुछ महात्मा गाधी ने सन् १९२० से सन् १९२२ तक किया, उसका आभास चम्पारन के झगडे में ही मिल चुका था। दक्षिण अफ्रिका से लौटकर महात्मा गाधी ने महत्त्व का जो पहला काम किया था, वह चम्पारन में ही किया था। उस समय भारतवर्ष में 'होमरूल' का बडा शोर था। जब हम महात्माजी से कहते कि वह उस आन्दोलन में चम्पारन को भी लगा दें तब वह कहा करते थे कि जो काम चम्पारन में हो रहा है वही 'होमरूल' स्थापित कर सकेगा। उस समय देश शायद ही इस कार्यक्रम के महत्त्व को समझता रहा हो, और न हम ही ऐसा समझते थे। पर आज, जब हम उस समय की कार्यशैली पर विचार करते है और गत तीन-चार वर्षो के राष्ट्रीय इतिहास की ओर ध्यान देते है, तब जान पडता है कि यह महान् आन्दोलन जो आज जारी है, चम्पारन की घटना का ही एक अत्यन्त विस्तृत और विराट रूप है। यदि 'चम्पारन' और 'खेडा' के इतिहास इकट्ठे कर लिये जायें तो जो कुछ असहयोग अथवा सत्याग्रह-आन्दोलन ने किया है, अथवा करने की इच्छा रखकर भी अभी तक नही कर पाया है, वह सब बातें उनमे वर्तमान पाई जायेंगी। जिस प्रकार भारतवर्ष को अन्याय और दुराचार के भार से दबता हुआ देखकर महात्माजी ने असहयोग-आन्दोलन आरम्भ किया, उसी प्रकार चम्पारन की प्रजा को भी अन्याय और अत्याचार के बोझ से दबती हुई पाकर और उसका उद्धार करना अपना कर्तव्य समझकर उन्होने वहाँ भी पदार्पण किया था। जिस प्रकार भारतवर्ष ने सभाओ तथा समाचारपत्रो और कौंसिलो में प्रस्तावो तथा प्रश्नो के द्वारा आन्दोलन कर, कुछ सफलता प्राप्त न करने पर ही,

सत्याग्रह और असहयोग आरम्भ किया, उसी प्रकार चम्पारन में भी यह सब कुछ करके थक जाने पर ही वहाँ की जनता ने महात्मा गाधी को निमन्त्रित किया था। जिस प्रकार वर्तमान आन्दोलन में महात्मा गाधी ने सत्य और अहिंसा को अपना अनन्य सिद्धान्त रखकर देश को उसे स्वीकार करने की शिक्षा दी है, उसी प्रकार उस समय भी चम्पारन की दरिद्र, अशिक्षित और भोलीभाली प्रजा को व्याख्यानो के द्वारा नही, वल्कि अपने कार्यो के द्वारा शिक्षा दी थी। और तो क्या, जिस प्रकार आज अपने ऊपर कष्ट उठाकर, जान-बूझकर अपने को मुसीबत में डालकर, देश का उद्धार करने का मनसूबा महात्माजी ने देश भर के लोगो में पैदा कर दिया है, उसी प्रकार स्वय जेल के लिए तैयार होकर, और सब प्रकार कष्टो को भुगतने के लिए प्रस्तुत होकर, उन्होने वहाँ की प्रजा को भी वही सिद्धान्त सिखाया। जिस प्रकार वहाँ सरकारी अफसरो ने महात्माजी के उद्देश्य को तथा प्रजा के कष्टो को और उनके साथ किये गये अन्यायो को जानकर भी पहले महात्माजी को रोकना चाहा था और जेल भेजने तक का प्रबन्ध किया था, उसी प्रकार इस महान् आन्दोलन में भी उन्होने वही किया है। महात्माजी के चम्पारन जाने के पूर्व ही वहाँ प्रजा ने समय-समय पर घोर आन्दोलन किया था, कभी-कभी असहयोग करने की भी चेष्टा की थी; पर उस आन्दोलन और उस सहयोग की नीव अहिंसा पर नही थी। और, सरकार या नीलवर, जिनका विश्वास आजतक हिंसा में अटल बना हुआ है और जिनके पास उसके लिए सामग्री भी पूरी प्रस्तुत है, उनको हिंसात्मक आन्दोलन में बराबर दबाते और पराजित करते गये। इस आन्दोलन में भी जहाँ हम इस मौलिक सिद्धान्त से विचलित हुए है, वहाँ अपनी हार की सामग्री स्वय जुटाते गये है। यदि हम उसी सिद्धान्त को सामने रखकर इस आन्दोलन को बढाते जायँगे, तो इसमें सदेह नही, कि जिस प्रकार चम्पारन में सफलता प्राप्त हुई थी और जैसा आज पजाब के अकाली एक नमूना भारतवर्ष के सामने रख रहे है, और अपनी कार्यसिद्धि में सफलता भी प्राप्त करते दीख रहे है, उसी प्रकार इस व्यापक आन्दोलन में भी सफलता अवश्यम्भावी है। चम्पारन में जिस प्रकार सरकार ने स्वय उन बातो को स्वीकार कर लिया जिनको वहाँ की प्रजा प्राय ६० वर्षो से—रो-रोकर और कभी-कभी झगड-झगड कर—जताना चाहती थी, उसी प्रकार इसमें भी अन्त में सरकार और सरकारी अफसर—जो कुछ भारतवर्ष चाह रहा है उसे—स्वीकार करेंगे।"

तीसरा अध्याय

मुकदमे का हुक्म कई दिनो वाद सुनाया जाने को था, इसी वीच में जो रैयत आते, उनकी वातें हम सुन लेते और नोट कर लेते। पर मजिस्ट्रेट के अनरोध के अनुसार न तो गाधीजी और न हममें से कोई गाँव में तहकीकात के लिए जाता। तो भी काफी वयान सुनने को मिलते थे और स्थिति का परिचय दिन-दिन अधिक गहरा होता जा रहा था। इसी वीच 'चार्ली एण्डरूज' मोतीहारी पहुँचे। वह चद दिनो के अन्दर ही फीजी के भारतीय प्रवासियो के वुलाने पर वहाँ जानेवाले थे। दुनिया भर में जहाँ-जहाँ भारतीय प्रवासी गये हुए थे, प्राय उन सभी जगहो में उनलोगो की दशा अच्छी नही थी। इसका एक विशेप कारण यह था कि वे लोग इन दूर के टापुओ और देशो में वहुत करके गिरमिटिया कुली वनकर गये थे और वहाँ वस गये थे। वहुतेरो की तो एक-दो पीढियाँ वीत चुकी थी। लोगो ने उन प्रदेशो को आवाद करने में वडा काम किया था। यदि यह कहा जाय कि उनके विना शायद वे देश इतनी जल्दी आवाद न होते, तो इसमें अतिशयोक्ति न होगी, तो भी वे स्वतत्र रूप से एक स्वतत्र देश के नागरिक की हैसियत से नही गये थे। जो अँगरेज या दूसरे योरोपीय लोग वहाँ अपना कारवार वढाना चाहते थे उन्हे उसके लिए मजदूरो की जरूरत थी। उन्ही कारवारियो के ले जाने से और उन्ही के खर्च से वे लोग, जहाँ जाकर कार्य करने की शर्त्त का वन्धन मानकर, गये थे। उसी 'एग्रीमेंट' को वे 'गिरमिट' कहा करते थे और उस गिरमिट से वँधे लोगो को 'गिरमिटिया' कहते थे। उनके पीछे कही-कही कुछ व्यापारी भी हिन्दुस्तान से चले गये थे और कुछ दूसरे लोग भी। पर सवकी दशा वुरी थी। उनको किसी प्रकार का अधिकार तो था ही नही। उनकी गणना असभ्य लोगो में की जाती थी और व्यवहार भी उनके साथ वैसा ही हुआ करता था। गाधीजी ने इसी प्रकार के दुर्व्यवहार के विरुद्ध दक्षिण अफ्रिका मे आवाज उठाई थी और सत्याग्रह किया था।

चार्ली एण्डरूज का दिल विशाल था। सच्चे ईसाई थे। हिन्दुस्तानियो के साथ इस प्रकार के दुर्व्यवहार से दुखित थे। उन्होने अपना यह काम बना लिया था कि जहाँ-जहाँ विदेशो मे हिन्दुस्तानी जाकर बसे और कष्ट भोग रहे है वहाँ जाना, जो कुछ हो सके उनकी सहायता करना, अत्याचारो को रोकने के लिए इगलैड में जनमत जाग्रत करना इत्यादि। इसी सिलसिले में गाधीजी से दक्षिण अफ्रिका में उनकी केवल मुलाकात ही नही हुई थी, घनिष्ठता भी हो गई थी। अँगरेजो में भी उनका काफी आदर था और हिन्दुस्तान में वाइसराय तक पहुँच थी। वह इसी प्रकार के काम में फीजी जा रहे थे, और वहाँ जाने के पहले गाधीजी से सलाह-मशविरा कर लेने के लिए वह चम्पारन आये। ऐसे काम में वह हमेशा गांधीजी से राय-बात करके ही कदम उठाया करते थे।

एण्डरूज से हमलोगो की यह पहली मुलाकात थी। ऐसा अँगरेज हमने कभी पहले देखा ही नही था। कपडे तो अग्रेजी काट के पहने हुए थे, पर बहुत ढीले-ढाले। सारी दुनिया में कई बार चक्कर लगा चुके थे, तो भी इतने सीधे-सादे कि समझ में नही आता था कि वह किस तरह इतना काम और इतना सफर कर सकते है। उनके आने की खबर शायद पहले नही मिली थी, इसलिए उनको लेने के लिए स्टेशन कोई नहीं गया। वह रेल से उतरकर एक इक्का भाडा करके स्टेशन से रवाना हुए। इक्का ऐसा था कि उसपर एक तरफ बगल में पैर लटकाकर बैठाना पडता था। इस तरह के इक्के की सवारी का उनको अनुभव नही था। पैर लटकाकर जो बैठे, तो इस तरह बैठे कि उसके पहिये से उनका एक पैर छू जाता था और पहिया जब घूमता तो उससे पैर घिसता था। पर इसकी खबर उनको न थी। निवास-स्थान तक पहुँचते-पहुँचते चमडे के जूते का वह अश, जो पहिये से लगता था, घिसते-घिसते कट गया। शायद पैर के चमडे तक पहिया पहुँच चुका था, पर जब उतरे तब ही इसका पता उनको चाहे दूसरो को लगा।

गाधीजी उनको देखकर प्रसन्न हुए और अपने हाथो नीबू काट-निचोड शर्बत तैयार करके उनको दिया। यह पहला अवसर था जब हमने गाधीजी को एक पुराने मित्र की खातिरदारी करते और अपने हाथो उसकी सेवा करते देखा। चन्द दिनो के बाद से ही इस तरह के प्रेम का प्रदर्शन ही नही, बल्कि उसका अनुभव भी हमलोगो को नसीब हुआ—जब वह स्वय अपने हाथो हम सबको खिलाने लगे। एण्डरूज वहाँ दो-तीन दिनों तक ठहर गये। जब उनके जाने की बात चलने लगी तब हम लोगो ने सोचा कि वह कुछ

दिनो तक अगर रह जाते तो अच्छा होता। उनसे पहले हमलोगो ने अलग वाते की और ठहर जाने का अनुरोध किया। उन्होने उत्तर दिया कि उनको फीजी जाना है, जिसके लिए जहाज पर जगह वगैरह का इन्तजाम हो चुका है और वहाँ काम भी है, तो भी हम लोगो का अनुरोध मानकर वह ठहर सकते है—अगर गाधीजी इस वात की इजाजत दे। उन्होने हमलोगो की तरफ से यह वात गाधीजी के सामने पेश भी की। हमलोगो ने भी इस पर जोर दिया। गाधीजी राजी नही हुए। जव उनसे वहुत आग्रह किया गया तो उन्होने यह जवाव दिया कि आप लोग जितना ही आग्रह कर रहे है, उतना ही हमारा विचार दृढ होता जा रहा है कि एण्डरूज को चम्पारन में न रहकर फीजी जाना ही चाहिए। खुलकर उन्होने कहा—"मै समझ गया हूँ कि आप लोग क्यो इतना जिद कर रहे है। आप लोगो के दिल में जो वात है, वह भी मैने जान ली है और जिस कारण से आप इनको रोकना चाहते है उसी कारण से मै इनको जल्द-से-जल्द यहाँ से रवाना कर देना चाहता हुँ। आप समझते है कि यहाँ हमारा सघर्ष अँगरेज नीलवरो से है। यहाँ के जिला-मजिस्ट्रेट तथा दूसरे वडे अफसर भी अँगरेज है। सूवे के गवर्नर और दूसरे ऊँचे अधिकारी तो अँगरेज है ही। एण्डरूज भी अँगरेज है। इनका प्रभाव अँगरेजो में और गवर्नमेंट पर भी काफी है। गवर्नमेंट ने अगर सख्ती करना चाहा तो एण्डरूज-जैसे अँगरेज का हमलोगो के बीच रहना अच्छा होगा और उससे हमको मदद मिलेगी। आपके दिल में डर है और एण्डरूज का आप सहारा चाहते है। मै इस डर को आपके दिल से निकालना चाहता हूँ। नीलवरो से अगर सघर्ष हुआ तो उसमें हम किसी अँगरेज की मदद से —चाहे वह एण्डरूज ही क्यो न हो—कहाँ तक सफलता प्राप्त कर सकेंगे? हमको तो निडर हो अपनी शक्ति पर विश्वास रखकर काम करना होगा, तभी सफल हो सकेंगे। इसलिए यह हमारा निश्चय है कि एण्डरूज को यहाँ से जाना ही चाहिए। कल ही सवेरे की गाडी से वह रवाना हो जायेंगे। फीजी का काम भी तो जरूरी है। वह भी छोडा नही जा सकता।"

हमलोगो से इतना कहकर उन्होने एण्डरूज से कहा कि कल सवेरे चले जाने के लिए तैयार हो जाओ। उनको तैयार होना क्या था, वह तो तैयार थे ही। इससे हमलोगो को कुछ थोडी निराशा-सी हुई, पर हमने देखा कि हमारे दिल की वात को उन्होने ठीक समझ लिया है, इसका असर हमलोगों के दिल पर वहुत पडा। निर्भयता का यह वस्तुपाठ हमलोगो को कार्यारम्भ में ही मिल गया। हमने देखा कि इससे हमको लाभ हुआ है। इस तरह

दिन-दिन निर्भयता और हर प्रकार से स्वावलम्बन का पाठ हमको मिलने लगा। दूसरे दिन रवाना होने के पहले एण्डरूज, जो उतने ही दिनो के अन्दर जिला-मजिस्ट्रेट और दूसरे अधिकारियो तथा कुछ नीलवरो से भी मिल चुके थे, जिला-मजिस्ट्रेट से विदा लेने गये। मुकदमे के फैसले की तारीख अभी एक-दो दिन के वाद थी। पर मजिस्ट्रेट के पास गवर्नमेंट का हुक्म उस दिन आ चुका था कि मुकदमा उठा लिया जाय और गाधीजी का जाँच करने दिया जाय। उसने एण्डरूज को यह वता दिया और कह दिया कि वाजाब्ता हुक्म कुछ देर में पहुँचेगा। एण्डरूज आये और रवाना होने के पहले यह खुशखवरी हमको सुना गये। यह खवर पाने के वाद उनका जाना हमलोगो को ज्यादा नही अखरा। गाधीजी ने भी कहा, मुझे कुछ अनुमान हो गया था कि यह तूफान शायद ऊपर ही ऊपर चला जायगा। कुछ देर के बाद वाजाब्ता हुक्म भी आ गया, मुकदमा उठा लिया गया। महात्माजी जिला-मजिस्ट्रेट से मिले। उसने कह दिया कि आप जाँच जारी रख सकते है, पर इसका ख्याल रखिएगा कि अशान्ति और हलचल न होने पावे।

अब हमलोग रैयतो के बयान वाजाब्ता लिखने लगे। गाधीजी ने बहुत ताकीद करके हमलोगो से कहा कि हो सकता है, जो वयान आपको दिये जायँ उनमें कुछ गलत भी हो या कुछ अत्युक्ति हो, आपलोग तो सब वकील है, खूब जिरह करके जहाँ तक आपको सच मालूम हो वही लिखिएगा। इसी तरीके से हम बयान लिखने लगे। यह खवर तुरत जिले में फैल गई कि गाधीजी पर से मुकदमा उठा लिया गया और वह रैयतो का वयान सुन रहे है। बहुतेरे रैयत आने लगे। सवेरे से शाम तक हम लिखते रहते, तो भी सवका बयान हम नही लिख पाते थे।

अभी यह काम शुरू हुआ ही था कि हमको दूसरा वस्तुपाठ भी मिला। हमलोगो को जाँच की इजाजत तो मिल गई, पर साथ ही पुलिस के अफसरो को भी हुक्म था कि सब चीजें देखते-सुनते रहें और सब बातो की खवर अधिकारियो को देते रहे। इसलिए सब-इन्स्पेक्टर प्राय सारा दिन हमलोगो के इर्द-गिर्द में ही रहा करता था। एक दिन बाबू धरणीधर एक कमरे में चौकी पर वैठे थे। उनके चारो तरफ आठ-दस रैयत घेरे वैठे या खडे थे। वह उन्ही का वयान लिख रहे थे। सब-इन्स्पेक्टर भी आकर पास ही वैठ गया। यह उनको अच्छा न लगा, पर कुछ वोले नही, वहाँ से उठकर दूसरी जगह जा वैठे और वयान लिखने लगे, तो सब-इन्स्पेक्टर वहाँ भी जाकर वैठ गया। वहाँ से उठकर वह फिर तीसरी जगह जा वैठे,

सव-इन्सपेक्टर वहाँ भी जा पहुँचा ! तव उनसे यह वर्दाश्त न हो सका, उन्होने उसे झिडककर कहा—"क्यो आप इस तरह हमारे सिर पर सवार रहते है ? आपको जो कुछ देखना-सुनना है, कुछ दूर से देखिए-सुनिए।" इस पर उसने वहाँ इतना ही कहा कि उसको तो ऐसा ही हुक्म है। पीछे उसने गाधीजी से जाकर शिकायत की। गाधीजी ने वावू धरणीधर और हम सवको वुलाकर पूछा कि क्या हुआ है। वावू धरणीधर ने सव वातें कह दी। गाधीजी ने पूछा, "आप अकेले थे या आपके पास और भी कोई था"? उन्होने उत्तर दिया, "वहुत-से रैयत हमको घेरे हुए थे।" तव गाधीजी ने पूछा, "इनका वहाँ जाना आपको क्यो नापसद हुआ"? उन्होने उत्तर दिया, "इनकी वजह से हमारे काम में वाधा पडती थी"। गाधीजी ने पूछा—"और रैयतो के रहने से आपके काम में कोई वाधा नही पडी, पर इनके जाने से वाधा पडी, इसके मानी तो यह है कि यह चूँकि पुलिस के आदमी है, इसलिए वाधा पडी, इनमे और दूसरो में आपने क्यो विभेद किया, इनको भी रैयतो-जैसा ही क्यो न समझा ? मालूम होता है कि पुलिस का डर अभी दिल में है। इसको निकालना चाहिए। हम कुछ लुक-छिपकर कोई वुरा काम तो कर नहीं रहे है। तव, चाहे पुलिस या कोई भी वहाँ क्यों न रहे, डरने की कौन-सी वात है ? रैयतो के दिल से भी यह डर निकाल देना चाहिए। उनको जो कुछ कहना है, पुलिस, मजिस्ट्रेट और नीलवरो के सामने भी निडर होकर साफ-साफ कहना चाहिए।"

वात उनकी ठीक थी। उस वक्त तक पुलिस का डर सवके दिल में कुछ-न-कुछ तो रहता ही था। और, यह भी हमेशा दिमाग के सामने रहा करता था कि हमारी वातें अगर पुलिस को मालूम हो जायें तो न मालूम उसका क्या नतीजा निकलेगा, इसलिए केवल क्रान्तिकारी लोग ही नही, दूसरे लोग भी पुलिस से वचे रहना चाहते थे। इधर तो हमलोगो के दिल से पुलिस का डर निकला और उधर पुलिस सव-इन्सपेक्टर ऐसी वातें सुनकर अप्रतिभ हो गया। उसने सोचा था, गाधीजी से नालिश करके उनको डाँट खिलावेंगे और हमारा रोव और भी वढ जावेगा। गाधीजी ने एक प्रकार से डाँटा तो जरूर, पर उस डाँट ने पुलिस-सव-इन्सपेक्टर को यह वता दिया कि हमलोगो की नजर में पुलिस अफसर और रैयतो के वीच कोई फर्क नही है और हमारा वर्ताव पुलिस के साथ भी वैसा ही होना चाहिए जैसा किसी मामूली रैयत के साथ हम करते है ! यहाँ तो रोव वढने के वदले एक तरह से विल्कुल गायव हो गया ! पर वह कुछ कह भी नही सकता था। नतीजा यह हुआ कि इसके

बाद रैयतो की धक्कम-धुक्की मे उसने फिर बैठना पसद न किया और फिर कभी न बैठा। रैयतो की भीड भी दिन-दिन बढने लगी। अब हमलोग कही एक चटाई पर बैठ जाते और रैयत हमे चारो तरफ से घेर कर बयान लिखाने जमीन पर ही बैठ रहते।

गाधीजी ने हमलोगो से कहा कि जैसा रग मालूम होता है, इस काम में कुछ समय लगेगा, इसलिए इतना बोझ केवल गोरख बाबू पर डालना ठीक नही है, इसके अलावा इनके मकान मे इतनी जगह भी नही है, एक दूसरा मकान तलाश करके हमलोग अपना डेरा उसी में जमावें। शहर के लोगो ने एक मकान थोडी ही दूर पर ढूंढ निकाला, जिसमें एक छोटा-सा अहाता भी था। गाधीजी ने निश्चय कि मकान की सफाई वगैरह हो जाय और हमलोग आज ही वहाँ चले चलें। मकान की सफाई वगैरह होते-हवाते सध्या हो गई। हमलोगो ने सोचा, आज रात को नई जगह में न जाकर कल दिन में सवेरे वहाँ चले जायँगे। यह सोचकर हमलोगो ने अपने मन-ही-मन उस रात डेरा बदलने का इरादा छोड दिया। गाधीजी से यह बात कही नही गई थी, क्योकि हम सब सोचते थे कि यह छोटी बात है, इसमें क्या पूछा जाय। रात मे करीब ८ या ९ बज गया। तब गाधीजी ने पूछा, नये डेरे में जाने की बात क्या हुई—उसमे कब चलना है? उनसे कहा गया कि सफाई वगैरह में देर हो जाने की वजह से हमलोगो ने सोच लिया है कि कल सवेरे चलेंगे। इस पर उन्होने कहा—"ऐसा नही होना चाहिए। जब एक बार निश्चय कर लिया गया कि इस काम को करना है तो उसको कर ही डालना चाहिए, इस तरह निश्चय बदलना अच्छा नही है। और, सफाई की क्या ऐसी बात है, क्या हमलोग अपन रहने के स्थान को भी खुद साफ नही कर सकते? अगर सफाई नही भी हुई तो हमलोगो को खुद कर लेनी चाहिए।"

गाधीजी का सामान तो बहुत मुख्तसर था। छोटे-से बिस्तर में ही सब कपडे बँधे रहते थे। वह बिस्तर सिर्फ सोने के वक्त ही खुलता और सवेरे उठकर उसे खूब करीने से बाँधकर वह रख देते। इस तरह वह हमेशा बँधा तैयार ही रहता। दूसरा एक टिन का डिब्बा था। बातें अपनी पूरी करते-करते वे उठ खडे हुए और अपना बिस्तर तथा डिब्बा लेकर यह कहते हुए रवाना हो गये कि मै तो जाता हूँ, वही सोऊँगा। हमलोग बहुत घबरा गये और पीछे पीछे दौडकर उनके हाथ से किसी ने बिस्तर लिया और किसीने डिब्बा। हमलोग कहने लगे, हमलोग भी चलते हैं। गाधीजी थोडी देर

ठहर गये। हमलोगो के सामान मे से जो रात के लिए जरूरी था उसे अलग करके हमलोग भी चले गय। वहाँ पहुँचते ही गाधीजी ने देखा, वरामदे में एक तरफ झाड़ू पडी है। उमे झट उन्होंने उठा लिया और एक तरफ से बुहारना शुरू कर दिया। यह देखकर हमलोग अवाक् रह गये। खैर, किसी तरह उनके हाथ से झाड़ू ले ली गई। जहाँ-तहाँ हमलोगो के भी विस्तर पड गये। अत में, हमलोगो ने यह कैफियत पेश करने की कोशिश की कि हमलोगो ने सोचा था, आज रात न आकर अगर कल सवेरे इस मकान में आते तो इसमें कोई वात विगडती नही, इसलिए जव सध्या तक हम यहाँ नही आ सके तव हमने आज आने का इरादा छोड ही दिया था। इसपर उन्होंने फिर सव वातें समझाकर हमारे दिल पर इस वात को खूव जमा दिया कि जव एक वार कोई निश्चय कर लिया जाय तो उसे छोडना नही चाहिए। यह एक तीसरा वस्तुपाठ था। अपने हाथो अपनी गठरी उठाना, आते ही झाड़ू लगाना—हम सवके लिए विल्कुल एक नई वात थी, क्योंकि हमारा जीवन उस दिन तक दूसरे ही प्रकार से कटा था। हमने, या हमारी श्रेणी के लोगो में किसी ने, कम-से-कम विहार में, इन तरह के काम कभी नही किये थे। पर इस प्रकार के वस्तुपाठ तो दिन-प्रति-दिन और भी मिले।

हमारी दिनचर्या वहुत ही कडी और परिश्रम की रहती। महात्माजी सवेरे वहुत जल्द उठ जाते। उन दिनो सामूहिक प्रार्थना नही करते थे—शायद वे अकेले कर लिया करते थे। उनका भोजन, शुरू में कुछ दिनो तक, चिनिया-वादाम (मूँगफली) और खजूर था। जव आम मिलने लगा तव आम भी खाते थे। पर अभी कुछ दिनो तक, अन्न उन्होंने नही खाया। अपना सव काम अपने ही हाथो कर लेते। स्नानादि के वाद अपने कपडे भी साफ कर लेते। सवेरे से शाम तक लिखते-पढने और रैयतो से मिलने-जुलते रहते थे। जव कभी जरूरत होती, सरकारी कर्मचारियो से मिलते, पर अभी नीलवरो से सीधा सम्पर्क नही हुआ था। हमलोग भी खूव सवेरे उठकर स्नानादि और कुछ जलपान करके, सूर्योदय होते-होते, अलग-अलग एक-एक चटाई और कलम-कागज-दावात लेकर, वैठ जाते और वयान लिखने लग जाते थे। इन तरह करीव ग्यारह साढे-ग्यारह तक वयान लिखने और फिर भोजन इत्यादि करके थोडा आराम के वाद एक वजे से फिर वैठ जाते और सध्या तक लिखते रहते। रैयतो की इतनी भीड होने लगी कि हम जितने थे, वयान लिखने का काम पूरा नही कर सकते थे। इसलिए चन्द दिनो के अन्दर ही दूसरे और कई मित्र आ गये और इसी तरह काम में जुट

गये। मेरा अनुमान है कि हम दस-बारह आदमी इस तरह अपनी दूकान लगा लेते और दिन-भर लिखते-लिखते थक जाते, तो भी जितने रैयत आये रहते, सब का बयान पूरा नही हो पाता और उनको दूसरे दिन तक के लिए ठहरना पड जाता। शाम को उठने के पहले हमलोग बाकी रैयतो के नाम लिख लेते और दूसरे दिन उनके बयान लिख लेने के बाद ही नये आनेवालो के बयान लिखते। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता कि रैयतो को एक दिन से अधिक इन्तजार करना पडता।

'मोतीहारी' चम्पारन जिले के दक्षिणी हिस्से के बीच में है। जिले के आधे या उससे भी अधिक उत्तरी हिस्से के बीच में मुख्य स्थान 'बेतिया' है, जहाँ पर बेतिया-राज के महाराज के निवास-स्थान इत्यादि है। मोतीहारी मे स्वभावत दक्षिणी हिस्से के रैयत अधिक आये। उत्तरी हिस्सावाले, दूरी की वजह से, बहुत नही पहुँच सके। तो भी जितने आये, उतने के बयान से इतना तो मालूम हो गया कि वहाँ की हालत भी उतनी ही खराब है—और कुछ जगहो की तो दक्षिणी हिस्से से भी खराब है। इसलिए निश्चय किया गया कि रैयतो की सुविधा के लिए, और वहाँ की हालत स्वय देखने के लिए, बेतिया भी जाना चाहिए था। राजकुमार शुक्ल बेतिया से भी और दूर उत्तर के हिस्से के—जो 'थारू' लोगो के रहने की वजह से 'थरुहट' कहा जाता था—रहनेवाले थे। वे तो चाहते ही थे कि गाधीजी उधर भी जायँ। इसलिए निश्चय हुआ कि दो टोलियो में हम बँट जायँ—एक टोली मोतीहारी में बयान लिखे और दूसरी बेतिया में जाकर रहे। और, हमलोगो में अदल-बदल भी होता रहे, जिसमें हरएक को सारे जिले का परिचय हो जाय। हमलोग एक-एक रैयत का बयान लिखते और उसे पूरा करके महात्मा गाधीजी को दे देते। वे उसे पढ़ लेते। अगर कोई विशेष महत्त्व का बयान होता तो उनको खास तौर से बता दिया जाता कि कोई जरूरी कार्रवाई अगर करनी हो तो कर सकें।

एक दिन का जिक्र है कि करीब दस बजे दिन में एक गाँव के रैयतो ने बयान दिया कि उनके गाँव के किसी आदमी को एक नीलवर के कर्मचारियो ने पकडकर पीटा है और मुर्गीखाने में ले जाकर उसे बन्द कर रखा है। महात्माजी ने उसे पढते ही, हममें से एक आदमी को, हुक्म दिया कि साइकिल पर जाकर तुरत देखो और तहकीकात करके बतलाओ कि इसमें कहाँ तक सचाई है। दोपहरी में ही वे वहाँ गये, जो पाँच-सात मील की दूरी पर था। उनके वहाँ पहुँचते ही कुछ रैयत जुट गये और कोठीवालों

को खबर मिल गई कि गांधीजी का कोई वकील आया है। उन्होंने तुरत उस आदमी को मुर्गीखाने से निकाल दूसरी जगह छिपा दिया, पर पीछे जब वह छूटा तब खुद आया और उसने सब हालत कह सुनाई। यह तो एक घटना थी। इस तरह की घटनाएँ अक्सर हुआ करती। कभी मजिस्ट्रेट को लिखना पडता या कही हमलोगो में से किसी को जाना पडता। इसका असर यह होता कि जो तत्काल जुल्म होता रहता, वह रुक जाता। इससे रैयतो के दिल में और भी भरोसा बढता।

मोतीहारी मे जब हमलोग अलग डेरे पर चले गये और वहाँ अपना इन्तजाम करना पडा तो यह प्रश्न उठा कि रसोई कौन बनाए और चौका-बर्तन कौन करे। हम बिहारियो की ऐसी आदत थी कि जिससे हो सकता है वह नौकर रखता है, जो उसका सब काम कर लिया करता है और इस तरह हम में से कई आदमी अपने-अपने नौकर साथ लेते गये थे, तो भी इनमें से कोई रसोई बना नही सकता था, क्योंकि इनमे कोई ब्राह्मण नही था, और हम कई जातियो के थे। इसलिए एक ऐसा रसोइया हो सकता था, जिसका बनाया भोजन हम सब कर सकते थे। हममें से प्राय सभी जाति-पाँति के माननेवाले थे। मै तो ऐसे ही कट्टर लोगो मे से था। घर का कुछ बचपन से ऐसा ही सस्कार और प्रभाव पडा था। मै घर से जब बाहर छपरा, पटना, कलकत्ता इत्यादि गया तो भी या तो अपनी जाति के या ब्राह्मण रसोइये ही की बनाई हुई कच्ची रसोई खाया करता। जब हम लोग कलकत्ता गये और वहाँ इडन-हिन्दू-होस्टल में रहने लगे तब वहाँ भी अपने लिए अलग रसोई का इन्तजाम कराया, जिसमें बिहारी ब्राह्मण रसोइया रखा गया। वहाँ जाति-पाँति की इतनी सख्ती रही कि हमलोगो में से एक-दो बिहारियो को छोडकर दूसरे सभी बिहारी, बगाली ब्राह्मण की बनाई, कच्ची रसोई खाने को तैयार नही थे। इसलिए बिहारी ब्राह्मण खोजकर रसोइया रखा गया। कलकत्ता जाने के बाद मुझमें इतना ही अन्तर पडा कि मै कायस्थो की कई उपजातियो के भेद छोडकर हरएक कायस्थ के साथ, चाहे वह किसी शाखा का हो, खा लेता था; पर किसी दूसरी जाति के आदमी के साथ पन्द्रह वर्षो तक, शिक्षा पाते समय भी या उसके बाद वकालत शुरू करने पर भी, मैने बगाली ब्राह्मण तक की बनाई हुई कच्ची रसोई कभी नही खाई। हमारे बहुतेरे बगाली मित्र थे जिनमे से कुछ के साथ बडी घनिष्टता थी और जिनके घर के लोग स्वय जाति-पाँति के कट्टर माननेवाले थे। उनके ब्राह्मण होते हुए भी मैने उनके घर की कच्ची रसोई कभी नही

खाई थी। यह सव लोग जानते थे और जव कभी खानपान का मौका आता था तव मुझ-जैसो के लिए वे पूरी-मिठाई इत्यादि का प्रवध करते थे, भात-दाल का नही, क्योकि पूरी-तरकारी पक्की रसोईसमझी जाती है और भात-दाल कच्ची। यह भाषा विहार, सयुक्त (उत्तर) प्रदेश, राजपूताने इत्यादि में ही वरतीजाती है। इसलिए कच्ची-पक्की लेकर मजाक भी हुआ करता। 'जल-पान' शब्द तो महात्माजी के लिए एक वडा मजाक का शब्द हो गया था। शब्द का अर्थ तो है 'पानी पीना', पर विहार में कुछ खाकर पानी पीते है और जो कुछ खाया जाता है उसी को जलपान कहते है। इसलिए 'जलपान' का अर्थ कुछ खाने का है, जिसकी मात्रा खानेवाले और खिलाने-वाले की रुचि पर निर्भर करती है। वह इसलिए अक्सर मजाक किया करते थे कि पानी पीने के नाम पर आपलोग इतना खा लिया करते है! और, यह मजाक अन्त तक चलता रहा—जव कभी हमारे-जैसे किसी विहारी के भोजन करने की वात आती तव महात्माजी जलपान शब्द का व्यवहार करके हँसते।

जाति पाँति की वजह से अव ब्राह्मण रसोइया खोजने की जरूरत पडी। महात्माजी ने कहा कि इस तरह जाति-पाँति रखने से काम में वाधा पडेगी और हममें से हरएक के लिए अलग-अलग चूल्हे जलाने पडेंगे तथा खर्च भी पडेगा, सार्वजनिक काम इस प्रकार नही चल सकता, हमको इसे छोडना पडेगा, आखिर जव हम सव एक ही काम में लगे हुए है तव हम सबकी एक ही जाति क्यो न समझी जाय? इस तरह समझाकर उन्होने मोतीहारी में ही जाति-पाँति तुडवा दी। हम में एक आदमी ने भोजन वनाया और हम सबने मिलकर खाया! इस तरह पहले-पहल किसी दूसरी जाति के आदमी की वनाई हुई कच्ची रसोई मैंने खाई!

चन्द दिनो के वाद उनको पता लगा कि हमलोगो के साथ कई नौकर है। पहले तो वहुत-से लोग दिन-रात घेरे रहते थे और सव कुछ न-कुछ सेवा करने पर तैयार रहा करते थे। इस तरह, कौन नौकर है और कौन किसी गाँव का आया स्वय-सेवक है, इसका पता नही चलता था। पर मेरे साथ एक स्थूल-काय और देखने में प्रतिष्ठित रैयत-जैसा नौकर था। वह मोतीहारी में भी था और जव मै वेतिया पहुँचा तव वहाँ भी साथ था। तव महात्माजी को खयाल आया कि यह कौन आदमी है जो मोतीहारी में भी और वेतिया में भी इतनी सेवा करता रहता है। उनका खयाल था कि वह भी कोई स्वयमेवक है। पर जव उनको मालूम हुआ कि केवल वही नही, वल्कि

और भी उस प्रकार के सेवक थे जो स्वयसेवक नही थे, तब उन्होने हम लोगो से कहा कि इस तरह नौकर रखकर अपना अपना काम कराना किसी भी देशसेवक के लिए ठीक नही है और देशसेवक को तो इन सब बातो मे स्वावलम्बी होना ही चाहिए। नतीजा यह हुआ कि एक-एक करके सब नौकर हटा दिये गये, केवल एक आदमी रखा गया जो चौका-बर्तन करता था। हमलोगो ने भी अपने सब काम खुद कर लेना आहिस्ता-आहिस्ता सीख लिया। अपना काम कर लेना कुछ इतना कठिन नही होता जितना हम पहले समझते थे। हमने अपने लिए यह नियम बना लिया कि सवेरे उठते ही अपने बिस्तर ठीक लपेटकर एक नियत स्थान पर रख दें। उसके बाद नित्य-क्रिया-स्नानादि करके अपने कपडे धो लें और अपने लिए पानी भी भरकर रख ले जिसमें जब जरूरत पडे तब पानी मौजूद मिले। पानी भरने का काम कम करना पडता, क्योकि कोई-न-कोई रैयत मौजूद रहता और वह दौडकर हमारे हाथो मे घडा ले लेता और पानी भर देता। इस तरह स्नानादि का काम भी, जिसमे ज्यादा पानी लगता है, आसानी से हो जाता, क्योकि बिहार की प्रथा के अनुसार हम कुएँ के नजदीक ही खुले मैदान में स्नान कर लिया करते।

जब श्रीमती कस्तूर बा वहाँ आ गई तब रसोई बनाने का काम गाधीजी ने उनके ही सुपुर्द कर दिया। हमलोगो को यह अच्छा नही लगा, क्योकि हमलोगो की सख्या काफी थी और उनसे इतना काम लेना ठीक नही मालूम पडता था। पर गाधीजी ने नही माना और कहा कि उनको आदत है, इसमें कोई हर्ज नही है—हाँ, उनको आपलोग चाहे तो मदद दे सकते है। कृपलानीजी विशेष करके उनकी मदद करते। जब बडे बर्तनो मे, ज्यादा आदमी होने की वजह से, अधिक चावल राँधना पडता तब वह बर्तन 'बा' के लिए भारी पड जाता, तो हमलोगो मे से कोई जाकर उसे उतार दिया करता। 'बा' के आ जाने के बाद गाधीजी अन्न खाने लगे और जब हम सब एक साथ खाने बैठ जाते तो महात्माजी स्वय अपने हाथो सबको भोजन परस देते। भोजन के बाद हम सब अपने-अपने बर्तन धो लेते और अपने-अपने पास रख लेते। केवल बटलोई इत्यादि माँजने-धोने के लिए एक नौकर था। सन्ध्या के समय पाँच बजे और दिन में प्राय ग्यारह बजे भोजन हुआ करता और सवेरे हमलोग कुछ जलपान किया करते थे। भोजन के बाद सन्ध्या को हमलोग गाधीजी के साथ टहला करते और इसके लिए कुछ दूर तक चले जाते। टहलकर लौट आने के बाद बयान नही लिखा जाता था।

हम काम करनेवालो के साथ वैठकर गाधीजी दिनभर के हुए काम पर विचार-विनयम कर लेते थे, आगे का कार्यक्रम भी सोचकर ठीक कर लेते थे ।

मै कह चुका हूँ कि थोडे ही दिनो के वाद महात्माजी हममे से कुछ को साथ लेकर वेतिया गये । हमारा एक दफ्तर वहाँ भी खुल गया । वेतिया में हजारीमल की धर्मशाला है । उसी के दो-तीन कमरे हमलोगो ने ले लिये । उस धर्मशाला में उन दिनो ऊपर पक्की छत तो थी, पर कोई कमरा नही था, केवल ऊपर जाने के लिए सीढियाँ थी, जिनके ऊपर भी छत थी, जिसमें थोड़ी-सी—तीन फुट चौडी और छ फुट लम्वी-जैसी—जगह मिल गई थी, महात्माजी के काम करने और रहने की यही जगह थी । दिन भर वे वही काम करते, और रात को वे और हम सभी ऊपर खुली छत पर ही सो जाते । दिन को हमलोग नीचे के कमरो मे रहते । कमरे के अन्दर, वरामदे में और वाहर भी—अहाते में जहाँ-कहीं जगह मिलती—अपनी अपनी चटाई लेकर वैठ जाते और रैयतो के वयान लिखा करते । भीड इतनी हुआ करती कि धर्मशाला और उसका अहाता खचाखच भरा रहता । कुछ दिनो के वाद वेतिया ही हमलोगो का मुख्य स्थान हो गया और वही हम अधिक रहने लगे ।

चौथा अध्याय

नीलवरो का एक तरीका था—जब वे किसी इलाके के रैयतो को सिर उठाते देखते थे तब कोई-न-कोई बहाना निकालकर उन्हे दबा देने का प्रयत्न करते। उनके लिए बहाना ढूंढ निकालना या पैदा कर लेना कोई बडी बात नही थी। एक तरीका यह था कि अपनी कोठी के किसी छोटे-मोटे मकान में खुद आग लगवा देते और यह कहकर कि रैयतो ने आग लगा दी है, खूब लूट-मार करते, पुलिस से जुल्म करवाते और कही ज्यादा गम्भीर मामला होता तो अतिरिक्त पुलिस भी बैठवा देते। इस तरह के बयान हम लोगो के सामने कितने ही रैयतो ने किये थे। पर इसका कोई सबूत मिलना कठिन था। बेतिया में हमलोगो ने अखबारो में पढा कि एक कोठी में आग लग गई है और गाधीजी के चम्पारन आने से हलचल मच जाने के कारण ही ऐसा हुआ है। खबर पढते ही हमलोगो ने घटना की जाँच करनी चाही, पर घटना कुछ दिन पहले की थी। इसलिए हम विश्वास-पूर्वक किसी ठीक नतीजे पर नही पहुँच सकते थे—यद्यपि रैयत जोरो से कह रहे थे कि कोठी वालों ने यह खुद कराया है। खैर, अखबारो में यह बात छपी। मुमकिन है कि शायद स्थानीय अफसरो ने इस बात की रिपोर्ट गवर्नमेंट को भेजी हो। मगर हमलोगो को इसकी खबर नही मिली थी। बयान काफी लिखे जाते थे। शायद दस हजार तक बयान हम लिख चुके थे और इसके अलावा बहुत कागज रैयत खोज-खोज कर हमको दे चुके थे। सारे जिले की सभी कोठियो की प्राय सभी बातें हमलोगो को मालूम हो चुकी थी। गाधीजी भी सभी बातें जान गये थे। इतने में एक दिन गवर्नमेंट का पत्र आ गया कि गाधीजी ने बहुत रैयतो के बयान सुन लिए और गवर्नमेंट समझती है कि उनकी जाँच पूरी हो गई होगी, इसलिए रेवन्युबोर्ड के मेम्बर को—जो ऊँचे पदाधिकारी होते थे और एक सीनियर सिविलियन अगरेज अफसर थे—गवर्नमेंट रांची से पटना भेज रही है, गाधीजी उनसे मिले और बातें करें

हुआ कि ये पुस्तकें अनियमित रूप से आई हैं । एक दिन खबर आई कि जेल-विभाग का सबसे बडा अफसर (आई० जी०) आयेगा । जेलर ने आकर कहा कि इन पुस्तको को मै अपने पास ले जाकर रखूंगा और जब आई० जी० चला जायगा तब फिर पहुँचा दूंगा । तब मेरे दिल में शक हुआ । मैंने पूछा, क्या ये नियमित रूप से नही आई हैं ? फिर मेरे यह कहने पर कि आपने अनियमित रूप से पुस्तकें क्यो दी, उसने अपनी उपर्युक्त फिलास्फी बतलाई, जिसका अर्थ यह था कि हमलोगो की मदद के लिए कुछ अनियमित काम करना, झूठ बोलना तक, वह एक प्रकार से पुण्य का काम समझता था और उसे अपनी दूसरी गलतियो का प्रायश्चित्त मानता था । मैंने पुस्तकें वापस कर दी, उनको फिर मेरे पास भेजने की मनाही भी कर दी, क्योकि मुझे महात्माजी की वह बात बराबर याद रही कि जो काम हम नियम-पूर्वक खुले-आम नही कर सकते, उसको लुक-छुप करना झूठ और चोरी है । इसका नतीजा यह हुआ कि जो थोडा काम बाकी रह गया था, वह पूरा न हुआ । बाहर निकलने पर फिर पूरा करने का समय ही न मिला । पीछे, जो कुछ लिखकर लाया था वह भी, दूसरे सत्याग्रह के समय, सदाकत-आश्रम के जब्त हो जाने पर, खो गया । पुस्तक नही छप सकी ।

यह विषयान्तर हो गया । पर इसके साथ एक मजाक, पाठको के मनोरजन के लिए, लिख देना बुरा न होगा । गवर्नमेंट का हुक्म था कि कोई पोलिटिक्स की किताब न पास की जाय, केवल मनोरजन की या धार्मिक पुस्तक ही दी जाय । सेन्सर कुछ बहुत पढे-लिखे समझदार नही थे, और यदि हो भी तो इतनी पुस्तको के पढने का उनके पास समय कहाँ था, क्योकि हम सैकडो की तादाद में थे, अगर पुस्तकें आदमी पीछे एक-एक करके भी दी जाती तो सेन्सर को ही पढकर पास करनी पडती । इसलिए उन्होने एक नियम-सा बना लिया था कि जिस पुस्तक के नाम में 'पोलिटिक्स' या 'पोलिटिकल' शब्द आ जाय वह हरगिज पास न की जाय । इस तरह पोलिटिकल एकोनोमी की छोटी-मोटी पुस्तकें भी, जो स्कूल में पढाई जाती, पास नही होती । पर कम्युनिज्म-सम्बन्धी किताबें, जिनके नाम मे पोलिटिक्स शब्द नही आता, पास होकर चली आती । 'ए० बी० सी० आफ कम्युनिज्म' और 'थ्योरी आफ लीजर क्लास'-जैसी पुस्तकें पास हो गई थी । शायद सेन्सर ने समझा कि पहली पुस्तक कोई ककहरा-जैसी पुस्तक है और दूसरी में यह बताया गया होगा कि समय किस तरह काटना चाहिए अर्थात् ताश इत्यादि खेलने से उसका सम्बन्ध होगा ।

अखवार वाजब्ता तो नही मिलते थे, पर जो चाहता था उसको वेजाब्ता मिल जाया करते थे। खबरें तो सभी को मिल जाया करती थी। इसका रास्ता जेल के अधिकारियो से मिलकर निकाला गया था। जेलर के ऑफिस मे एक आदमी, जिनकी स्मरण-शक्ति वहुत तेज थी, रोज चले जाते, वहाँ जेलर वगैरह जो अपने लिए अखबार मँगाते, उनको पढकर चले आते। वे सन्ध्या को, भोजन के वाद और कमरो में वन्द होने के पहले, एक जगह खडे हो जाते। सव लोग उनके चारो तरफ आ जाते। वे सव वातें जवानी सुना देते। हम लोग कई वार्डों मे थे। वह सभी वार्डों मे जाकर इसी तरह खवरें सुना देते। सरकारी हुक्म का पालन तो होता कि अखवार जेल के अन्दर न जाने पाते, पर कैदियो को अखबार में छपी सभी मुख्य वातो की खवर मिल जाती थी।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि नीलवरो के आदमी, और सरकारी कर्मचारी भी, मदद करना अपना धर्म समझते थे। कुछ तो ऐसी मदद थी जिसे हम ले सकते थे, क्योंकि महात्माजी की दृष्टि मे उसमे कोई झूठ-फरेव की वात नही थी। इस तरह का एक काम सरकारी कर्मचारियो ने वहुत परिश्रम करके कर दिया। उन दिनो महात्माजी हिन्दी थोडी-वहुत जानते तो थे, पर इतनी नही जानते थे कि हिन्दी द्वारा ही सव काम कर सकते या कराते। उन्होंने शुरू मे ही हमलोगो से कह दिया कि वे हिंदी मे वातचीत करना पसद करते है, पर इस वक्त जव इतना वडा काम हाथ मे ले लिया है तव इसमे हिन्दी और अग्रेजी के झगडे में पडकर वे काम मे रुकावट डालना नही चाहते। इसलिए वहुत करके वातें भी अग्रेजी में ही करते और लिखने का तो सभी काम अग्रेजी में ही करते। सभी वयान इसीलिए अग्रेजी मे ही लिखे जाते जिसमे उनको पढ लेने में सुविधा हो। हमलोगो का विचार हुआ कि इन वयानो की नकल भी हो जाय तो अच्छा होगा। इत्तिफाक से वेतिया की जिस धर्मशाला में हम लोग ठहरे थे उसी में गवर्नमेंट के सर्वे-सेटलमेंट-विभाग के टाइप करनेवाले कर्मचारी भी रहा करते थे। गाधीजी और हमलोगो के साथ एक ही मकान मे ठहरना उन्होंने अपना वडा सौभाग्य समझा। हमलोगो से कहा भी कि दफ्तर जाने के पहले सुवह और दफ्तर से लौटने के वाद रात-भर फुर्सत रहती है, अगर हमलोगो को कुछ टाइप कराना हो तो वे खुशी से कर दिया करेंगे। यह वात हमलोगो को वहुत पसद आई। पत्र इत्यादि के अलावा सब वयानो की नकल तैयार कर देने को उनसे कहा। वहुत परिश्रम से उन्होंने यह सव काम खुशी-खुशी कर

दिया। तीन-चार आदमी थे, जिनमे दो तो बहुत ही होशियार और तेज टाइप करनेवाले थे। उनके परिश्रम का अन्दाजा इसी से लग सकता है कि जब हमने बयान लिखना बन्द किया तबतक प्राय चौबीस-पच्चीस हजार रैयतो के बयान हमलोगो ने लिख लिये थे—प्राय दस हजार के पूरा-पूरा और बाकी सक्षेप मे। उनके अलावा, जब कमीशन नियुक्त हुआ तब उसके सामने पेश होनेवाले कागज, चिट्ठी-पत्री इत्यादि को भी उन्होने ही टाइप किया। उन्होने, हमलोग जितने दिन चम्पारन में इस काम में लगे रहे, बराबर यह काम किया—और यह सब किया सन्ध्या के बाद रात को, बहुत देर तक जागकर और प्रात काल बहुत सवेरे उठकर दफ्तर जाने के पहले तक।

एक दूसरा उदाहरण नीलवरो के कर्मचारियो के सम्बन्ध में देना अच्छा होगा। यह बात मशहूर थी कि एक नीलवर बहुत कडे मिजाज का बदमाश था। जो जाता, उसको गालियाँ दे देता और मार-पीट भी कर डालता था। उसके गुस्से का शिकार केवल उसके रैयत ही नही होते, उसके उच्च-से-उच्च कर्मचारी भी कभी-कभी हो जाते। महात्माजी को उसकी कोठी मे जाना था। उसके कर्मचारियो के दिल में यह डर हुआ कि जैसा यह बदमिजाज है, शायद कही महात्माजी के साथ भी बदसलूकी न कर बैठे। इसलिए जब महात्माजी उसके कमरे में मिलने गये तब उसके अपने कर्मचारी इधर-उधर—कही बरामदे में, कही कोने में—डण्डे इत्यादि के साथ छुपकर इन्तजार करते रहे कि कही अगर उसने कोई बुरा बर्त्ताव किया तो अपनी नौकरी की परवा न करके वही उसे खूब पीटेंगे। पर इसकी नौबत तो कभी आनेवाली थी ही नही। बुरा बर्त्ताव करना तो उस नीलवर के खयाल में भी कभी नही आया था। उसने महात्माजी की बडी खातिरदारी की। हाँ, ये सब बातें हमको पीछे उन कर्मचारियो ने ही बताई।

एक दूसरे नीलवर का किस्सा है। उसने महात्माजी को यह कहकर बुलाया कि हम आपको सब कागज-पत्र दिखलाकर साबित कर देंगे कि हमारे खिलाफ जो शिकायतें की गई है, बिल्कुल गलत है। महात्माजी बहुत खुश हुए और उसके यहाँ बैठकर कागज-पत्र देखने लगे। वह जब किसी कर्मचारी से कोई कागज महात्माजी को दिखाने के लिए कहता तब उसके सामने ही उसके विरुद्ध पडनेवाले कागजो को भी कर्मचारी पेश कर देते। महात्माजी उसके सामने ही उसके कागजो को पढते-पढते उसके विरुद्ध मिले हुए कागजो को भी, जो उसके ही अपने आदमियो ने पेश कर दिये थे, पढते और उनके

सम्वन्ध में उससे पूछने लगते कि ये सब बातें तो आपके कागजो मे ही निकल रही है। इसपर वह बहुत चिढा, पर इसमें तो महात्माजी का कोई दोप था नहीं। वह कुछ बोल तो नही सकता था, पर पीछे न मालूम उसने अपने कर्मचारियो के साथ क्या किया। हमने सुना कि कर्मचारियो ने यह कैफियत दे दी कि साहब ने उनको पहले से कागजो को छाँट करके अलग-अलग रखने का हुक्म तो दिया नही था, इसलिए उन्होंने सब कागज मिले-जुले ही पेश कर दिये। पर शायद उन्होने अलग रखे हुए कागजो को भी जानबूझकर इकट्ठा कर दिया था ताकि पूरा भडाफोड हो जाय और उसकी सभी बातें झूठी साबित होकर रहे।

रेवेन्यु-मेम्बर ने रिपोर्ट पाकर, गवर्नमेंट के हुक्म से, उसकी प्रतियाँ नीलवरो, सरकारी कर्मचारियो और कुछ दूसरे लोगो के पास भी भेज दी थी। साथ ही, पूछा भी था कि गाधीजी की शिकायतो के सम्वन्ध मे उनलगो को क्या कहना है। इधर उनके उत्तर का इन्तजार हो रहा था, उधर गाधीजी नीलवरो के यहाँ जाते, उनकी बातें सुनते और विशेप घटनाओ की तहकीकात के लिए भेजते। हमलोग बयान भी लिखते जाते, क्योंकि अभी तक बयान लिखवानेवालो का तार टूटा नही था। शायद रैयतो के दिल में कुछ ऐसा बैठ गया था कि जिसका बयान नही लिखा जायगा उसकी तकलीफ दूर नही होगी। हमलोगो को अब बयानो की जरूरत नही थी, फिर भी उनको राजी रखने के लिए उनका बयान सक्षेप में लिख लिया करते। इस तरह हमारे पास काम काफी रहता।

रिपोर्ट के उत्तर मे सरकारी कर्मचारियो तथा नीलवरो ने अपने-अपने बयान गवर्नमेंट को भेजे। इनमें से कुछ की नकलें उनके दफ्तरो के आदमियो ने ही लाकर हमको दे दी। कुतूहल और उत्सुकता जरूर थी कि हम उनके उत्तर मान लेते। पर गाधीजी का नियम, जिसका ऊपर जिक्र आया है, कड़ा था। इसलिए हमने नाजायज तरीको से आये कागजो से कोई लाभ नही उठाया। गाधीजी को यह बात बता दी गई। पर उन्होंने कहा कि यह गुनाह-बेलज्जत है; क्योंकि यह कागज हमारे पास गवर्नमेंट ही भेज देगी, और चन्द दिनो के बाद हमको यह देखने के लिए मिलेगा ही, पर ऐसा अगर न भी होनेवाला हो, तो इनको देखना नही चाहिए।

एक-दो और घटनाओ का जिक्र कर देना अच्छा ही होगा।

पाँचवाँ अध्याय

रैयतो की मुख्य शिकायत यह थी कि उनसे जबरदस्ती नील की खेती कराई जाती है, जिससे उनका बहुत नुकसान होता है, अगर कोई रैयत इनकार करता है या नीलवर की मर्जी के खिलाफ कोई कुछ करता है, तो उसके साथ बहुत सख्ती और जुल्म किया जाता है। नील से ही बहुत प्रकार के रग बन सकते है, इसलिए वह बहुत मुनाफे की चीज है। वह एक पौधे से बनता है। पानी में कुछ देर तक पौधे की पत्ती तथा डठल को रखकर उन्हे खूब मसल देने से सारा रस पानी में आ जाता है। पौधे मे जो रस रहता है वह पानी में जब आ जाता है तब पानी को कढाई मे गर्म करके सुखा देने से रग जम जाता है। इसके लिए पौधे को खेतो में पैदा करने, खेतों से काटकर पानी-भरे बडे-बडे हौजो में पहुँचाने, पीटने, चूल्हे पर चढाकर सुखाने इत्यादि के लिए काफी मजदूर लगते है। और, जमीन तो चाहिए ही। जमीन के लिए उन्होने यह वन्दोबस्त किया था कि पहले तो वहाँ के कुछ जमीदारो से, और-और किसानो की तरह, जमीन ले लेते तथा पीछे खेतो को न लेकर जमीदार से ही सारे गाँव का ठेका ले लिया करते—इस शर्त्त पर कि जमीदार को जो मुनाफा रैयतो से लगान के रूप में मिलता था, वह स्वय वे ही दिया करेंगे और गाँव का सारा इन्तजाम भी खुद किया करेंगे। इस तरह, गाँव में जो गैर-आवाद जमीन होती उस पर तो उनका अधिकार हो ही जाता, रैयतो पर भी हर तरह का अधिकार—जो किसी भी जमीदार का हो सकता है—उनको मिल जाता। जमीदार उधर लगान के तहसील-वसूल की झझट से वच जाता और इधर उसको नियत समय पर एक-मुश्त आमदनी भी मिल जाती। तो भी जमीदार मामूली तौर से गाँव का ठेका नही देता, क्योकि गैर-आवाद जमीन के आवाद करने-कराने के अलावा उसको और भी कई तरह का मुनाफा गाँव से होता। इसलिए गाँव का ठेका हासिल करने में वे पुलिस और मजिस्ट्रेट की मदद से

छोटे-मोटे जमींदारो पर दवाव डालते । अगर किसी गाँव के एक से अधिक जमींदार होते और उनमें से एक भी किसी कारण से अपने हिस्से का ठेका दे देता, तो दूसरे हिस्सेदारो पर तरह-तरह के दवाव डालकर—कचहरियो में मुकदमे करके, यहाँ तक कि वलवा-फसाद करके भी—उन्हे इतना तग किया जाता कि वे भी अपने हिस्से का ठेका दे देते । । यह सिलसिला सौ वर्ष या इससे भी अधिक समय से जारी रहा । इस तरह, चाहे जमींदार कोई भी हो, प्राय सारा जिला नीलवरो के कब्जे में आ गया था । उन्होंने आपस में राय करके सारे जिले को वाँट लिया था, प्राय सत्तर कोठियाँ खोल कर एक-एक कोठी के लिए, अलग-अलग इलाके कायम कर लिये थे । विहार मे, सरकारी काम के लिए, जिला कई हिस्सो में वाँट दिया जाता है । यह प्रथा वहुत पुरानी है, जो मुगलो या यो कहा जाय कि हिन्दू-राजाओ के समय मे ही चली आ रही है । ब्रिटिश ने कुछ हेर-फेर के साथ, मुगलो के परगनो और जिलो में, सूवे को विभाजित करके काम चलाया । पीछे वगाल-विहार इत्यादि में पुलिस-थाने और सव-डिवीजन भी कायम हुए । इस तरह, यदि सरकारी दफ्तर में देखा जाय कि किस नाम का गाँव कहाँ है तो मालूम होगा कि परगना 'प', थाना 'थ', सव-डिवीजन 'स' और जिला 'ज' में है । चम्पारन में इन चीजो के अलावा यह भी मशहूर हो गया था कि वह नील-कोठी 'न' के इलाके में है । जमींदारो से गाँव का ठेका मिलने में यह एक सुविधा नीलवरो को थी कि उस जिले मे एक वहुत वडा राज्य 'वेतिया' है, जिसकी जमींदारी में जिले के प्राय दो-तिहाई या इनसे भी अधिक गाँव हैं । एक दूसरा राज्य रामनगर है जिसकी जमींदारी मे भी काफी गाँव हैं । और, एक-चौथाई या इससे भी बहुत कम गाँव ऐसे हैं, जो दूसरे जमींदारो के हैं । इसलिए, वेतिया-राज्य और रामनगर-राज्य को अपने हाथो मे कर लेने के वाद नीलवरो को प्राय सारा जिला ही मिल गया । फिर दूसरे जमींदारों ने भी, कुछ डरकर, कुछ अपनी सुस्ती और आलस के कारण, जमींदारो के प्रवधो की झझट से वचने के लिए, अपने गाँव को नीलवरो के हाथ ठेका दे दिया ।

जो जमीन नीलवरो ने अपने कब्जे मे की उसमे वे खुद नील की खेती करते, अपने हल-वैल रखते और मजदूरो से काम लेते । अपनी खेती के लिए जमीन उन्होंने कुछ तो गैर-आवाद जमीन को आवाद करके हासिल की और कुछ रैयतो की जमीनो को किसी-न-किसी तरह हथिया कर । जमीन लेने मे साम, दाम, दड, विभेद—हर तरह की नीति—

से काम लिया गया। रैयतो से, खेत अवाद कराने के लिए, जवर-दस्ती धर-पकड कर काम लिया जाता। मजदूरी भी वराय-नाम दी जाती। उन दिनो जमीन के मुकावले चम्पारन की आवादी वहुत कम थी। इसलिए वहाँ कोई वेकार नही होता था। सभी लोग खेतो में अपना-अपना काम किया करते। अपना काम छुडाकर—चाहे उससे किसी की खेती खराव क्यो न हो जाय—नील के खेतो में काम कराया जाता। मजदूर को अपने घर से खाकर काम करना पडता। पर इतना ही नीलवरो के लिए काफी न था, उन्होने हर किसान को मजबूर किया कि उसके पास जितनी जमीन हो, उसके एक-चौथाई या कम-से-कम तीन-वटा-वीस हिस्से में उसको नील की खेती करनी ही होगी। नीलवर के हुक्म के मुताबिक उसके खेतो में से जो नील के लिए चुन लिये जायँगे, उन्ही में उसको अपने परिश्रम, हल-बैल और खर्च से नील की फसल तैयार करनी ही पडेगी। इतना ही नही। फसल तैयार हो जाने पर उसे काटकर कोठी तक पहुँचा देनी होगी। यह सब करने के लिए वे फी एकड या फी बीघा उसको कुछ दिया करते थे, पर वह इतना कम होता कि किसान को जितना खर्च करना पडता उतना भी नही मिल पाता। इस तरह नीलवरो ने एक प्रकार का कानूनी हक हासिल कर लिया था कि वे मजबूर करके नील की खेती करा सकते है। यह चीज कानून में लिख भी दी गई कि इस तरह मजबूर करके, अपनी मर्जी के मुताबिक, रैयत से नील या कोई दूसरी फसल उपजवाने का हक उन्हे हासिल है, वहाँ वे चाहे तो रैयतो को इस पावन्दी से मुक्त भी कर सकते है और इसके वदले में मनमाना मुआवजा ले सकते है—चाहे उसका रूप एक-मुश्त नकद रुपयो का हो या बँधा लगान बढाकर ज्यादा लगान के रूप में हो, जो उनको साल-साल मिला करे। इन सब बातो से रैयतो को वहुत कष्ट था। जव-जब ऊव कर वे बलवा-फसाद करते तब-तव उनको कुछ दे दिया जाता। नीलवर जिस जमीन में जवरदस्ती नील की खेती कराते उस जमीन का लगान रैयतो को देना पडता। इस तरह, जो थोडा-वहुत उनको नील वोने के वदले में मिलता, उसका वडा हिस्सा लगान के वदले मे ही मुजरा हो जाता। एक वार उनके वलवा-फसाद का नतीजा यह हुआ कि गवर्नमेंट ने नील-खेत के लगान को रैयतो से वसूल करना वन्द कर दिया। किसी दूसरे वलवे का नतीजा यह हुआ कि नील की खेती के बदले में रैयतो को जो मिलता था उसमें कुछ आने वढा दिये गये; पर इतने से रैयतो को कभी सतोप नही हुआ। इस तरह, उनके शोरगुल करने पर,

छोटी-मोटी रियायतें—जो नगण्य थी—गवर्नमेंट उनको दे दिया करती थी, इससे अधिक नही।

इत्तिफाक ऐसा हुआ कि जर्मन किसी दूसरी चीज से रग बनाने लग गये। इस लिए नील की कीमत—जिससे सब प्रकार के रग बना करते थे—इतनी गिर गई कि इतने जुल्म से पैदा किये हुए नील में भी अब मुनाफा नही रह गया। अब नीलवरो को मजबूर होकर नील की सारी खेती छोड देनी पडती, उनका सारा सिलसिला उठ जाता और रैयतो की सारी मुसीबतें खुद-ब-खुद दूर हो जाती। पर नीलवर उसको सहज ही छोडनेवाले न थे। उन्होंने उस कानून का सहारा लिया जो उनको यह हक देता था कि अगर वे किसानो को नील की खेती करने की मजबूरी से मुक्त कर दें, तो इस माफी देने के बदले में उनसे नकद रुपये या लगान में मनमाना इजाफा करके मुआवजा ले सकते हैं। जर्मन रग के कारण उनका जो नुकसान होता उसे उन्होंने गरीब रैयतो के सिर पर डाल दिया और उनसे जबरदस्ती बीस-पच्चीस लाख रुपये नकद वसूल किये। कई लाख रुपयो का इजाफा लगान में भी कर दिया। उसके बदले में नील की खेती से माफीनामा लिखकर दे दिया। कोई रैयत नकद पैसे देकर या लगान में इजाफा कराकर माफीनामा नही लेना चाहता था, क्योंकि वह जानता था कि नील के काम में अब मुनाफा न रहने के कारण ही नीलवर खुद उसका उपयोग छोडनेवाले हैं। पर ये नकद रुपये और इजाफे के दस्तावेज उनसे जबरदस्ती लिये गये। गवर्नमेंट ने नीलवरो की मदद के खयाल से कोठी-कोठी में दस्तावेज रजिस्ट्री करने के लिए खास रजिस्ट्रार मुकर्रर कर दिया। जो नकद या 'सराबेसी' (शरह-बेशी) देने से इनकार करता वह पीटा जाता, उसके घर खेत लूट लिये जाते, उस पर झूठे मुकदमे चलाये जाते, उसको कुँओ से पानी लेने की मनाही कर दी जाती, उसके दरवाजे पर अछूतो का इस तरह का पहरा बिठा दिया जाता कि कोई अन्दर से बाहर न निकल सके, उसके खेतो में चरने के लिए बडी सख्या मे मवेशी हांक दिये जाते, उसके घर में चारो ओर जो थोडी बहुत जमीन होती उसे जबरदस्ती जोतकर उसमे कुछ बो दिया जाता कि जिससे एक बहाना मिल जाय कि खुद रैयत या उसके माल-मवेशी की वजह से फसल को नुकसान पहुँचा है, उसके मवेशी पकडकर मवेशीखाने में बन्द कर दिये जाते जहाँ से काफी पैसे देकर ही वह उनको छुडा सकता, उस पर जुर्माना किया जाता। और भी, कितने ही प्रकार से उसके साथ इतनी सख्ती की जाती कि मजबूर होकर उसे 'सराबेसी' मान लेनी पडती

पर वह सब तरह के कागज भेजा करता था। गाधीजी ने समझा कि इस गलतफहमी को वे दूर नहीं करते हैं तो यह एक प्रकार से उसको धोखा देना होगा—असत्य आचरण होगा, दूसरे यह कि उसकी बात अगर वे मान भी लें और भविष्य में हमको कागज न दिखलावें, तो भी किसी-न-किसी तरह—बातचीत में या उनकी किसी कार्रवाई से भी—हमलोगो को वह गुप्त बात मालूम हुए बिना नही रहेगी, और अगर ऐसा हुआ तो यह भी असत्य आचरण होगा, इसलिए उन्होने इस तरह की बातो को खुद भी न जानना उचित समझा। इसका नतीजा कुछ बरा नही हुआ, क्योकि इसके बाद भी पहले की तरह गुप्त कागज आते रहे। इसका अर्थ केवल इतना ही समझा गया कि गाधीजी सब लोगो को वे कागज नही दिखलावेंगे और अखबारो में भी वे नही जाने पावेंगे। ऐसी छोटी-छोटी घटनाओं से भी हमलोगो को बहुत-कुछ सीखने को मिल जाता था।

इधर तो मजिस्ट्रेट ने गवर्नमेंट के पास रिपोर्ट भेजी, उधर एक नीलवर ने एक षड्यन्त्र रचा। उसकी दो कोठियाँ थी, जिनके बीच में चार-पाँच मील का फासला था। एक में वह स्वय रहता था, दूसरी कुछ छोटी जगह थी, जिसमें जाकर वह कचहरी किया करता था और उसके आस-पास के गाँवो का काम भी। उपर्युक्त घटना इसी शाखा के इलाके में हुई थी। उसने रात को उसमें आग लगवा देने का निश्चय किया। पुरानी रीति के मुताबिक, पुलिस-मजिस्ट्रेट की मदद से लूटपाट मचाकर, वहाँ के रैयतो को जेल भिजवाने का भी इरादा किया। इसलिए, उसने वहाँ के अपने एक कर्मचारी के जिम्मे आग लगा देने का काम सौंपा। एक नौकर को हिदायत भी दी कि आग लगते ही उसके पास आकर रात को ही खबर दे। खुद अपनी दूसरी कोठी में, जो चार-पांच मील की दूरी पर थी, रात को इन्तजार करता रहा कि आग लगने की खबर मिलते ही वह मजिस्ट्रेट के पास पहुँचेगा और वहाँ से पुलिस की मदद लेकर गाँव में लूट-पाट मचा देगा। दिन को ही रैयतो ने देखा कि उस कचहरी में कुछ अजीब कार्रवाई हो रही है—उसके कमरे से सब चीजें निकालकर किसी दूसरी जगह हटाई जा रही हैं, कागज-पत्र भी हटाये जा रहे हैं, यहाँ तक कि शीशे के दरवाजे भी निकाले जा रहे है। वे लोग आग लगाने की रीति को जानते थे, इसलिए उनके दिल में यह शक हो गया कि आज कुछ-न-कुछ रात को होनेवाला है। रात को ऐसा ही हुआ भी, कचहरी का कुछ हिस्सा जल गया। आग बुझा दी गई। कुछ पुराने रद्दी कागज भी वहाँ साथ ही जला दिये गये। इस घटना के होते ही रातो-

रात वहाँ के कुछ रैयत बेतिया पहुँच गये, कुछ रात रहते ही उन्होंने सब बातें कह सुनाई। उमी वक्त गाधीजी ने हममें से एक आदमी को वहाँ जाकर सब चीजो का अच्छी तरह मुलाहजा करने और जो कुछ वहाँ हुआ उसका पता लगा लाने के लिए भेज दिया। साहब ने जिस आदमी को अपने पास खबर देने के लिए तैनात किया था वह रात को साहब के पास गया ही नहीं, क्योंकि वह भी जानता था कि खबर देने का नतीजा यह होगा कि रातो-रात गाँव लूट लिया जायगा और बहुतेरे बेकसूर लोग गिरफ्तार हो जायँगे तथा दूसरे लोग पीटे भी जायँगे। सवेरा हो जाने पर, वह साहब के पास एक पुर्जा लेकर, जो आग लगानेवालो ने दिया था, पहुँचा और साहब को दिया। उसपर साहब बहुत बिगडा और पूछने लगा, रात क्यो नहीं आया? उसने बहाना पेश कर दिया कि वह तो ठीक समय पर आया था, पर साहब के कुत्तो ने उसको अन्दर नही घुसने दिया, इसलिए वह डर के मारे बाहर ही बैठा रह गया।

इस तरह, षड्यत्र तो एक प्रकार से विफल हो गया, पर तो भी वह मजिस्ट्रेट और पुलिस के पास गया। जबतक वह पुलिस वगैरह लेकर पहुँचा तबतक हमारे आदमी ने जाकर सब चीजें देखी और गाधीजी को रिपोर्ट कर दी। सबने मजाक की बात यह थी कि उसने सोचा था—इस अग-लगी से कम-से-कम नुकसान होगा, इसीलिए केवल मकान में रखे सामान को ही हटवाया था, शीशे के दरवाजे भी निकलवा लिये थे, क्योंकि लडाई के कारण उन दिनो शीशा बहुत महँगा बिकता था। हमारे आदमी को किवाड के कब्जे खोलकर निकाले जाने के दो अकाट्य सबूत मिल गये। गलती से कुछ पेंच (कील-काँटे) वही पडे रह गये थे, उन्हे वे उठा लाये। चौखट मे जहाँ-जहाँ कब्जे जडे हुए थे वहाँ-वहाँ कब्जे हटा देने से सादी लकडी दीखती थी, क्योंकि जिस रग मे चौखट और किवाड रँगे गये थे वह कब्जो के नीचे नही पहुँचा था। रिपोर्ट पाकर गाधीजी ने तुरत एक पत्र मजिस्ट्रेट को लिख भेजा और रिपोर्ट की नकल भी भेज दी। उन्होंने साफ लिख दिया कि रैयत अक्सर कहा करते थे कि कोठीवाले उनको फँसाने और उन पर जुल्म करने के लिए खुद अपनी कोठियो में आग लगवा दिया करते है, पर उनपर वे विश्वास नही किया करते थे, किन्तु इस घटना के सम्बन्ध में उनके दिल मे कोई शक नहीं रह गया, अत नीलवरो को अब अपना पुराना तरीका छोडना होगा। इस पत्र के बाद पुलिस या मजिस्ट्रेट कुछ भी न कर सके, रैयतो का भी कुछ बिगडा नही।

ऊपर से तो वे कुछ नही बोल सके, पर भीरत-भीतर गवर्नमेंट के साथ लिखा-पढी उनकी चल रही थी। इसके चन्द दिनो के बाद एक पत्र राँची से आया। उसमें लिखा था कि गाधीजी के चम्पारन में आने से रैयतो में बहुत हलचल है, इसलिए उनका वहाँ रहना गवर्नमेंट को ठीक नही मालूम होता—यह जरूरी भी नही है, क्योकि उन्होने अपनी जाँच पूरी कर ली है और अपनी रिपोर्ट भी गवर्नमेंट के पास भेज दी है, गवर्नमेंट भी उस पर विचार कर रही है, गाधीजी को चम्पारन से हटाने के सम्बन्ध में कोई कार्रवाई करने के पहले लेफ्टिनेंट-गवर्नर चाहते है कि गाधीजी उनसे मिल लें। इस तरह, गाधीजी राँची बुलाये गये। पत्र पाते ही हमलोग समझ गये कि गाधीजी अब यहाँ नही रह सकेंगे। हो सकता है कि राँची में ही वे रोक लिये जायँ या अगर लौटें भी तो चम्पारन में उन्हें न रहने दिया जाय। इसलिए, आज फिर वही स्थिति पैदा हो गई जो पहुँचने के समय पैदा हुई थी। इतने दिनो तक उनके साथ रहकर, उनके काम का तरीका देख और उनसे दक्षिण अफ्रिका की बातें सुनकर हमलोगों ने उनका तरीका समझ लिया था। फिर हमलोग भी तैयार हो गये कि चाहे जो हो, इस काम को तो अब छोडना है नही। गाधीजी ने कहा कि हमारे हाथ में अब इतने सबूत आ गये है कि गवर्नमेंट को मजबूर होकर रैयतो के कष्टो को दूर करना ही होगा, इसलिए हम में से सबके सब अगर जेल चले जायँ तो भी गवर्नमेंट को हमलोगो से ही बातें करनी होगी।

मै ऊपर कह चुका हूँ कि हमलोगो ने जितने बयान लिये थे, सबकी टाइप की हुई कई प्रतियाँ बन गई थी। उनमें से कुछ तो मोतिहारी और बेतिया में रख ली गईं और कुछ हमने दूसरी जगह सुरक्षित रख दी, ताकि हमारे पास की प्रतियाँ अगर बरबाद भी हो जायँ, तो भी कुछ तो मिल ही जायेंगी। गाधीजी ने कहा कि इस समय इतनी चिन्ता की जरूरत नही है, पर तुमलोग अगर ऐसा करना चाहते हो तो करो, इसमें कोई हर्ज नहीं है। हमलोगो की दो टोलियाँ बना दी गईं—एक मोतिहारी में रहने लगी और दूसरी बेतिया में। मै बेतिया में ठहरा। बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद गाधीजी के साथ गये। उनके साथ यह तय पाया था कि जैसे ही महात्माजी की मुलाकात लेफ्टिनेंट-गवर्नर से हो जाय, हमलोगो को वे तुरत जरूरी तार द्वारा सूचित कर देंगे। मुलाकात का वक्त कोई दस या ग्यारह बजे दिन का था। इसलिए हमलोग समझते थे कि लेफ्टिनेंट-गवर्नर से बातें शायद एक

घण्टा तक हो और यदि एक बजे भी तार वहाँ से दिया जाय तो तीन-चार बजे तक हमलोगो को मिल जायगा।

हमलोग अपने-अपने नियत स्थान पर ठहरे रहे। स्थानीय सरकारी कर्मचारियो का रुख भी कुछ बदला-सा मालूम पडता था, क्योकि उनको कुछ आभास मिल गया था कि गाधीजी और उनके साथी वहाँ से हटा दिय जायेंगे। गाधीजी अकेले ही लेफ्टिनेंट-गवर्नर से मिलने गये। जहाँ दोनो आदमी ठहरे थे वही बाबू ब्रजकिशोर इन्तजार कर रहे थे। बात कुछ इतनी लम्बी चली कि गाधीजी चार बजे तक भी वापस नही आये। बाबू ब्रजकिशोर के दिल में भी शक होने लगा कि कही उधर ही से गाधीजी दूसरी जगह भेज तो नही दिये गये। वे इसी उधेड-बुन में लगे हुए, सडक की तरफ टक लगाये, देख रहे थे कि गाधीजी आवें या कोई खबर देनेवाला भी आवे। पर गाधीजी पाँच बजे लौटे और मालूम हुआ कि बात अभी पूरी नहीं हुई है, फिर कल होगी। इसी आशय का तार तुरत वहाँ से उन्होने भेजा, पर वह तार उस दिन हमलोगो को नही मिला—दूसरे दिन सवेरे नौ बजे करीब मिला। हमलोग अपने-अपने स्थान पर तार के इन्तजार में बैठे हुए थ; पर कोई खबर दूसरे दिनो नौ बजे के पहले नही मिली। तब, हमलोगो ने समझा कि 'दूत विलम्बे कारज सिद्ध' कहावत के अनुसार कुछ अच्छा ही फल निकलेगा। इस तरह, गाधीजी वहाँ एक दिन के बदले तीन-चार दिनो तक ठहर गये और केवल लेफ्टिनेंट-गवर्नर से ही नही, दूसरे अफसरो से भी मिलते रहे। जब लेफ्टिनेंट-गवर्नर के दिल पर काफी असर पड गया और उसने सोच लिया कि कुछ करना होगा, तब उसने गाधीजी से कहा कि आप हमारे एक्जिक्युटिव कौंसिल के दूसरे मेम्बरो से भी मिलिए और उनको भी सब बातें समझाइए। अन्त में यह तय हुआ कि गवर्नमेंट एक कमीशन मुकर्रर करेगी। उस कमीशन को, रैयतो की शिकायतो के सम्बन्ध में जाँच करके, रिपोर्ट देनी होगी कि जो जायज शिकायत हो वह किस तरह दूर की जाय।

सर एडवर्ड गेट की ख्वाहिश थी कि गाधीजी भी उस कमीशन के मेम्बर हो और सरकारी अफसरो के अलावा नीलवरो तथा जमीदारो के प्रतिनिधि भी। सरकारी अफसरो ने सिविल-सर्विस के ऐसे आदमियो को चुनकर दिया जिनका उनमें रहना, उनकी विशेष जानकारी और उनके कानूनी ज्ञान के कारण, जरूरी समझा गया था। रैयतो का प्रतिनिधि गाधीजी के सिवा दूसरा कोई न था। गाधीजी ने कहा कि मैं तो कमीशन के सामने

रैयतो की तरफ से सुबूत इत्यादि पेश करना चाहता हूँ, पर मेम्बर होकर मैं वैसा नही कर सकूँगा। इस पर उसने जवाब दिया कि जो कुछ आपकी जानकारी में आ गया है, और जो सुबूत आप के पास हो, सब आप कमीशन के सामने जरूर रख सकेंगे। साथ ही, उसने यह भी कहा कि बहुत वर्षों से जो शिकायतें चली आ रही हैं उनके सम्बन्ध में सरकारी कर्मचारियो ने समय-समय पर क्या किया है और क्या रिपोर्ट भेजी है, वह सब गवर्नमेंट के पास मौजूद हैं, पर वह सब गुप्त हैं, वे सभी चीजें कमीशन के सामने तो रखी जायँगी, पर किसी दूसरे को देखने के लिए नही मिल सकती, अगर आप मेम्बर हो जायँगे तो आप भी वह सब देख सकेंगे और समझ सकेंगे कि जो शिकायतें आप कर रहे हैं उनकी पुष्टि किस हद तक सरकारी कागजो से हो जाती है। अन्त में तय हुआ कि गाधीजी भी उसके मेम्बर होगे। वहाँ से गाधीजी के रवाना होने के पहले यह बात तय हो गई कि जो कुछ भी वहाँ निश्चय हुआ है वह अभी गुप्त रखा जायगा और उसका प्रकाशन पहले-पहल गवर्नमेंट की विज्ञाप्ति द्वारा होगा। इसलिए गाधीजी ने इस चीज को किसी अखबारवाले या बाहर के आदमी को जानने नही दिया।

दूसरे दिन जब गाधीजी पटना पहुँचे तब अखबारो को देखकर उन्हे आश्चर्य हुआ कि कमीशन की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ अधूरी-सी खबरें उनमें छप गई है। गाधीजी ने उनको देखते ही पहला काम यह किया कि गवर्नमेंट को इसकी सूचना दे दी कि उनको अखबारो में यह खबर पढकर बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि उनकी तरफ से यह बात किसी से जाहिर नही की गई थी। सरकारी विज्ञप्ति निकलने में दो-तीन दिनो की देर इस कारण हुई कि कमीशन के सदस्यो की अनुमति बाजाप्ता मिल जाने पर ही सरकार घोषणा कर सकती थी। गवर्नमेंट की तरफ से गाधीजी पर कोई शक नही हुआ, क्योंकि सरकारी दफ्तर से ही गुप्त बातें निकल जाया करती थी या जान-बूझकर जनमत का अन्दाज लेने के लिए निकलवा दी जाती थी। हमको नही मालूम कि यह खबर किस जरिये से अखबार वालों को मिली थी।

गाधीजी बेतिया पहुँच गये। जिस वक्त वे पहुँचे, उसी वक्त अखबार भी आये जिनमें यह खबर छपी थी। गाधीजी ने पहुँचते ही हमलोगो को चेता दिया कि यह खबर अनियमित छपी है और जबतक यह गवर्नमेंट की विज्ञप्ति में न निकले तबतक हमलोगो की तरफ से इस तरह की बातें किसी से नहीं कहनी चाहिए। जब वे मजिस्ट्रेट से मिले तब उसको बहुत आश्चर्य

हुआ; क्योंकि वह समझ बैठा था कि अब गांधीजी जिले में रहने नहीं पायेंगे। पर ऐसा हुआ नहीं, वे तो केवल लौटे ही नहीं, अपने साथ एक कमीशन भी लेते आये और उस कमीशन के वे स्वयं मेम्बर होकर आये। जब दो-तीन दिनों के बाद गवर्नमेंट की विज्ञप्ति छपी तब रैयतों को बड़ी खुशी हुई। विपक्षी लोग कुछ घबराये। कमीशन अपना काम प्रायः एक-डेढ़ महीने के बाद शुरू करनेवाला था। अब हमलोगों को इस बीच में कुछ सुबूत जमा करना या इजहार लेना नहीं था। जो कुछ हमारे पास आ गया था उसी को इस तरीके से सिलसिलेवार तैयार करना था कि वह कमीशन के सामने पेश किया जा सके। गांधीजी ने हमलोगों को आदेश दिया कि अपनी वकालती बुद्धि लगा कर कागजों के ढेर में से सबसे जबर-दस्त सुबूतों को चुनकर निकाल लो और रैयतों के जो इजहार लिखे गये हैं उनमें से भी कुछ को चुनकर कुछ होशियार रैयतों को इजहार देने के लिए ठीक कर लो। चन्द दिनों के अन्दर ही वे सभी गुप्त कागज छपे-छपाये गवर्नमेंट के यहाँ से आ गये। गांधीजी ने, और हमलोगों ने भी, ध्यान-पूर्वक पढ़ लिये। उनको पढ़ लेने के बाद गांधीजी ने कह दिया कि अब हम लोगों को कोई विशेष सुबुत देने की जरूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि गवर्नमेंट के अफसरों ने भी समय-समय पर सभी बातें मान ली हैं, इसलिए इन अफसरों की रिपोर्टों पर ही कमीशन अपनी रिपोर्ट तैयार कर सकता है। बीच के समय में हमलोग इसी काम में लगे रहे। प्रत्येक विषय पर अपने नोट भी तैयार करते रहे, जो जरूरत पड़ने पर कमीशन के सामने पेश किये जा सकें।

छठा अध्याय

गांधीजी के रांची से बेतिया आने पर श्रीमती कस्तूर बा गांधी, देवदास गांधी और प्रभुदास गाधी आ गये। सब उनके साथ ही रह गये। उन्होंने उन लोगों के आ जाने के बाद, जैसा मैंने ऊपर कहा है, रसोई बनानेवाले को हटा दिया और कहा कि कस्तूर बा ही रसोई बनाया करेंगी। हमलोग इसे पसंद नही करते थे, पर हमलोगो की एक न चली। वही हमलोगो के लिए भी रसोई बनाती रही। सबसे अधिक कष्ट उस वक्त होता, जब चूल्हे में ठीक तरह लकडी न जलने के कारण धुंए से उनकी आंखें लाल हो जाती और उनमें से लोर टपकने लगता। हमलोगो की बातो को गाधीजी यह कहकर टाल देते कि उनको इसका अभ्यास है तथा ऐसे सार्वजनिक काम में कम-से-कम खर्च करना चाहिए—नौकर और रसोइये का खर्च जहां तक बच जाय, बचाना चाहिए। हमलोग उसी वक्त समझ गये कि गाधीजी सार्वजनिक पैसे को कितनी किफायत के साथ खर्च करते हैं और कैसे एक-एक पैसा बचाने के प्रयत्न में रहते हैं। वहीं हमने देखा कि जहां पोस्टकार्ड से काम चल सकता था वहां कभी वह अधिक पैसे खर्च करके लिफाफे में पत्र नही भेजते थे—कागज के छोटे-से-छोटे टुकडे को भी बरबाद नहीं होने देते थे। शायद यह बहुत लोगो को मालूम न होगा कि उनके बहुतेरे महत्त्व-पूर्ण लेख और कांग्रेस तथा दूसरी संस्थाओ के बहुतेरे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव ऐसे ही कागज के टुकडो पर लिखे गये हैं, जिनको मामूली तौर से लोग रद्दी की टोकरी में फेंक दिया करते हैं! लिफाफो के अन्दर का और तारो के पुश्त का सादा हिस्सा तथा दूसरे एकपीठा-लिखे कागजो का खाली हिस्सा वे उन्ही दिनो से अन्त तक बराबर लिखने के काम में लाते रहे। यहां हमें यही सीखने को मिला कि सार्वजनिक कामो में पैसे के खर्च के सम्बन्ध में कितनी सावधानी से काम लेना चाहिए। चम्पारन में जो कुछ खर्च हुआ वह गांधीजी ने ही अपने मित्रो से लेकर दिया। उन मित्रो में रंगून के डाक्टर पी० जे० मेहता मुख्य थे। हम लोगों को पैसे जमा करने की न जरूरत पड़ी और न उन्होंने ही इजाजत दी।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि हमलोगो के साथ जो नौकर थे, वे एक-एक करके हटा दिये गये। एक दिन का जिक्र है कि मुझे किसी काम से एक दिन के लिए पटना जाना था। मेरे पास एक छोटा डिब्बा था, जिसमें सफर में खाने के लिए कुछ ले जाया करता था। वह चम्पारन में साथ आ गया था; पर कभी जरूरत न पडने के कारण यो ही पडा था और बहुत मैला हो गया था। पटना जाने के लिए मैं उसे कुँए पर बैठकर साफ कर रहा था। गाधीजी उधर आगये। देखते ही हँस पडे। बोले, हमको बडी खुशी हुई कि पटना-हाईकोर्ट के वकील से हमने बर्तन मँजवाया! जो लोग वहाँ थे सब खिलखिला उठे। गाधीजी ने दक्षिण अफ्रिका में स्वय पाखाना साफ किया था। वह नौबत हमलोगो पर चम्पारन में नही आई। वे जानते थे कि आहिस्ता-आहिस्ता मोडने से ही कच्ची लकडी मुड सकती है, ज्यादा जोर लगाने से टूट जाने का भय रहता है। इसलिए चम्पारन में उन्होने अपना सारा कार्य-क्रम हमलोगो के सामने नही रखा, केवल चम्पान की ही बात रखी और उसके लिए जो जरूरी था वही हमसे करवाया, उसमे ज्यादा नही।

चम्पारन में हमलोग अभी खादी नही पहनते थे, उसका नाम भी नही जानते थे, यद्यपि हममें से कुछ लोग स्वदेशी का इस्तेमाल पहले से ही किया करते थे। मैं तो १८९८ से ही स्वदेशी का इस्तेमाल करता आ रहा था, क्योकि मेरे बडे भाई बाबू महेन्द्रप्रसाद जब प्रयाग में पढने गये तब वहाँ पर उन्होने स्वदेशी वस्त्र का इस्तेमाल शुरू किया और उनकी ही देखादेखी हमने भी। स्वदेशी वस्त्र तक ही यह सीमित न रहा, दूसरी चीजें भी अगर स्वदेशी मिल जाती तो हम स्वदेशी ही लेते और अगर कोई ऐसी चीज होती जो स्वदेशी नही मिलती तो उसका इस्तेमाल ही भर-सक छोड देते। हाँ, ऐसी चीजें, जिनके बिना काम चल ही नही सकता, विदेशी भी ले लिया करते—जैसे, घडी या दवा इत्यादि। मेरी यह बचपन की आदत एक प्रकार से आज तक चली आ रही है—यह मानना पडेगा कि अब विदेशी चीजें शायद उन दिनो से कही अधिक इस्तेमाल करता हूँ। मैं जबतक पढता रहा, किसी परीक्षा में मैंने विदेशी कलम या विदेशी नीब का इस्तेमाल नही किया। सभी परीक्षाओ को देशी नीब के ही द्वारा, चाहे वह कितनी भी खराब क्यो न हो, पास किया। अब तो फाउण्टेन्-पेन् और उसके लिए रोशनाई भी विदेशो की ही इस्तेमाल करता हूँ। कपडा मैंने उस समय से आज तक एक मौके को छोड कभी विदेशी न इस्तेमाल किया है और न

खरीदा है। वह मौका था जब मेरे सिर पर विलायत जाने का जनून सवार हुआ। मैंने वहाँ के लिए जो कपडे बनवाये उनमें देशी-विदेशी का लिहाज नही रखा। यह १९०६ की बातें है। जब से गांधीजी ने खादी चलाई तब से खादी के सिवा और दूसरा देशी कपडा नही लिया। इसमें हमारे भाई साहब बडे पक्के थे। उनसे ही मुझे यह प्रेरणा मिली थी।

गाधीजी से अक्सर हमलोगो की बातें हुआ करती थी, जिनका असर बराबर पडता गया। उन दिनो श्रीमती बेसेण्ट के होम-रूल का आन्दोलन खूब जोरो से चल रहा था। हमलोगो के सभी साथी-सगी, जो सार्वजनिक बातो में दिलचस्पी रखते थे और चम्पारन नही आये थे, उसी आन्दोलन में लग गये थे। गाधीजी ने हमलोगो को मना कर दिया था कि जबतक तुमलोग इस काम में हो, किसी और काम में हाथ मत डालो। इसलिए हमलोग जितने दिनो तक वहाँ रहे, और वह आठ-दस महीने का अरसा हो गया, हममे से किसी ने कही भी कोई भाषण नही किया। स्वय गांधीजी भी दो मौको को छोड (जिनका मुझे स्मरण है), किसी सभा मे शरीक न हुए। एक सभा तो स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी की मृत्यु पर शोक-प्रकाश करने के लिए की गई थी और दूसरी किसी गोरक्षिणी सस्था के वार्षिक उत्सव के समय। केवल इतना ही नही कि हमलोग और गाधीजी किसी राजनीतिक विषय पर भाषण नही करते थे, बलिक चम्पारन के सम्बन्ध में भी किसी ने कही कोई भाषण नही किया और न कोई इस तरह का लेख ही अखबारो में भेजा। हमलोगों को कभी-कभी यह बात अखरती थी। जब हमने होमरूल की सभा में शरीक होने की बात उनसे कही तब उन्होने यही उत्तर दिया कि तुम लोग होम-रूल का सबसे बडा काम यहाँ कर रहे हो, इसलिए अगर किसी दूसरी सभा में शरीक नही हो सकते तो इसकी चिन्ता न करो, क्योकि आगे देखोगे कि यह काम किसी और काम से कम महत्त्व का नही होगा। हमने उनकी बात मान ली, यद्यपि कभी-कभी यह बात समझ में नही आती कि जो काम हम कर रहे थे उससे होम-रूल का क्या सम्बन्ध था। यह मै शुरू की बात कह रहा हूँ। थोडे ही दिनो में हमने अनुभव से समझ लिया कि उन्होने जो कहा था वह अक्षरश सत्य है।

एक बार गाधीजी के साथ मै किसी गाँव से आ रहा था। रास्ते में मैंने उनसे पूछा, आप तो सारे देश में घूम आये है, आपने किस सूबे के लोगो

को सार्वजनिक काम के लिए सबसे अच्छा पाया ? उन्होंने कहा, "दक्षिण के लोग भावुक है—चतुर हैं। बगाल के लोग बहुत भावुक हैं, उनमें त्याग की बडी शक्ति है, उन्होंने त्याग किया भी बहुत है। पर जनता की सेवा करनेवाले के लिए तो तीर्थस्थान 'पूना' है। वहाँ जितनी सार्वजनिक सस्थाएँ कार्यकर्ताओ के त्याग पर निर्भर रहकर चलती है उतनी शायद किसी दूसरे स्थान में नहीं। वहाँ ऐसे बहुतेरे लोग है, जिन्होंने अपने जीवन को देशसेवा के लिए समर्पित कर दिया है। वे अपने सकल्प को बहुत ही दृढता से निवाह रहे है। इसलिए मै उसको तीर्थस्थान मानता हूँ।"

मुझे भी इसका कुछ पता लगा था—जब १९१० में श्री गोखले से मेरी मुलाकात हुई थी और उन्होंने मुझसे भारत-सेवक-सघ में शरीक होने को कहा था। परतु, गाधीजी के कहने पर मेरी इच्छा हो गई कि एक बार वहाँ जाकर उन सस्थाओ को देखना चाहिए।

हमलोग आपस मे बातें किया करते कि हमारा सूबा, और सूबो के मुकाबले में, बहुत पिछडा हुआ है। उस वक्त तक शायद ही ऐसे लोग बिहार में हो, जो अपना समय देकर किसी सार्वजनिक सस्था का अथवा देश का काम कर रहे हो। हमलोगो का विचार हुआ कि कोई ऐसी सस्था बिहार में भी कायम की जाय जिसका लक्ष्य देशसेवा रहे। बाबू ब्रजकिशोर प्रसादजी हमलोगो के नेता और प्रेरक थे। हमलोगो ने सुना था कि पूना में फरगूसन-कालेज के सभी शिक्षक और आचार्य पचहत्तर रुपये मासिक लेकर ही काम करते है। श्री गोखले ने बीस वर्ष तक व्रत लेकर पचहत्तर पर ही काम किया था। उसी तरह, उन दिनो, डाक्टर प्राञ्जपे—जो इगलैंड मे भारी-से-भारी परीक्षाएँ पास करके आये थे—पचहत्तर मासिक पर ही वहाँ काम कर रहे थे। हमलोगो का विचार हुआ कि अब ऐसा ही एक कालेज बिहार में भी खोला जाय। इससे लाभ यह होगा कि उस कालेज के प्रोफेसर अपने जीवन से युवको के सामने त्याग का उदाहरण रख सकेंगे, जिससे सारे सूबे में जागृति पैदा होगी। बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद भी, गाधीजी की तरह ही, जो काम उठाते थे उसको जल्द-से-जल्द पूरा करना चाहते थे। जब बात चली तब उन्होंने स्वय ऐसी सस्था में अपनी चलती वकालत छोडकर शरीक होने का इरादा जाहिर किया। हमलोगो से भी पूछ-पूछकर जो राजी हुए, उनके नाम उन्होंने लिख लिये। कुछ लोगो से बातें करके रुपये के भी कुछ वचन लिये। जहाँ तक आज मुझे स्मरण है, सात-आठ

सर फ्रैंक्स स्लाई कमीशन के अध्यक्ष थे। वे कुछ दिनो के बाद मध्य-प्रदेश के गवर्नर हुए, पर उस समय मध्यप्रदेश मे ही किसी बडे ओहदे पर थे। वे बहुत ही अनुभवी और होशियार आदमी थे। वे भी चाहते थे कि एक ऐसी रिपोर्ट दी जाय जिसके अनुसा गवर्नमेंट कार्यवाही कर सके। इसलिए, वे भी बहुत इच्छुक थे कि किसी-न-किसी तरह एक सर्व-सम्मत रिपोर्ट तैयार हो। इस तरह, गाधीजी की इस बात से वे बहुत प्रभावित हुए; एक प्रकार से उनके प्रशसक बन गये। बात तो यह थी कि रिपोर्ट के इस हिस्से के सम्बन्ध में सरकारी अफसरो को ही—विशेषकर सर फ्रैंक्स स्लाई को—सबसे बडी अडचन आती। नीलवर का प्रतिनिधि तो सभी बातो को आसानी से गलत कहकर नीलवरो का पक्ष ले सकता था। गाधीजी और जमीदारो के प्रतिनिधि के लिए जो सुबूत दाखिल किये गये थे उनके आधार पर–विशेषकर सरकारी अफसरो की समय-समय पर दी हुई रिपोर्टों के आधार पर—नीलवरो के विरुद्ध फैसला लिखना आसान था। पर सरकारी अफसर इस सकट में पड जाते कि उनको या तो नीलवरों के विरुद्ध रिपोर्ट लिखनी पडती या गवर्नमेंट की शिकायत करनी पडती, क्योकि सब बातो को जानते हुए भी सरकार ने इतने दिनो तक मौन साध रखा था और उसके अफसरो ने अक्सर नीलवरो की मदद भी की थी। और, यदि वे ऐसा न करके शिकायतो से नीलवरो को बरी करना चाहते तो सरकारी अफसरो की रिपोर्टों को ही गलत बताना पडता। इसलिए इस दुविधा से बच निकलने का रास्ता जो गाधीजी ने बताया उसको उन्होने सहर्ष कृतज्ञता-पूर्वक मान लिया।

चूंकि तीन-कठिया-प्रथा के कारण ही सारी ज्यादतियाँ हुई थी, इसलिए गाधीजी ने जोर दिया कि उसको कानून द्वारा बन्द कर देना चाहिए। इसमें सरकारी अफसर सहमत हो गये। नीलवरो ने देखा कि इसमें अडचन डालना फिजूल है, क्योकि अब इसको जारी रखना असम्भव नही तो कठिन जरूर होगा, कारण यह कि नील की जो खेती एक बार बन्द हो चुकी थी और अब जर्मन लडाई के कारण फिर मुनाफा दे रही थी वह फिर जर्मन-युद्ध बन्द होते ही बेकार साबित होगी—छोड देनी पडेगी, अत, अच्छा है कि यह बात मान ली जाय। तब, सवाल आया लगान में इजाफा छोडने का। काश्तकारी-कानून के अनुसार चन्द हालतो में जमीदार को लगान बढाने का अधिकार है, पर अदालती हुक्म के बगैर वह रुपये में दो आने से ज्यादा नही बढाया जा सकता। यहाँ नीलवरो ने इससे कही ज्यादा इजाफा कर लिया

था। उनकी तरफ से कहा गया कि जितने दस्तावेज लिखे गये है और उनकी रजिस्ट्री की गई है, सबकी पाबन्दी रैयतो पर है, इसलिए उनको अगर नाजायज ठहराकर 'सरह-बेसी' उठा देना है तो रैयतो को अदालत मे जाकर कार्यवाही करनी चाहिए, कमीशन उनके जायज दस्तावेजो को रद्द नहीं कर सकता। बात कानूनी तौर से ठीक थी, पर इजाफा अगर न छूटा तो रैयतो पर लदा हुआ बोझ हमेशा के लिए कायम रह जायगा। महात्माजी का विचार था कि अदालत में ही अगर जाना था तो कमीशन की कोई जरूरत नहीं थी, क्योकि रैयतो के लिए लाखो मुकदमे अदालत में दायर करना और उनकी पैरवी करना गैर-मुमकिन है। इसका एक तजरबा भी हो चुका था। गाधीजी के वहाँ जाने के पहले ही ग्यारह मुकदमे रैयतो की ओर से दायर हुए थे। नीलवरो ने उन मुकदमो को एक प्रकार से अपने विरुद्ध मोरचा मानकर पैरवी की। सबसे बड़े बैरिस्टर को पटना से ले गये। अन्त में, पहली अदालत में, पाँच या छ में रैयतो की जीत हुई और बाकी में नीलवरो की। जिले की अपील-अदालत ने कुछ फैसले कायम रखे और कुछ को रद्द किया। पर नतीजा यही हुआ कि वहाँ भी आधे में रैयत जीते और आधे में नीलवर। जिला-अदालत के फैसले के विरुद्ध नीलवरो और रैयतो ने हाइकोर्ट मे जो मुकदमे दायर किये थे, उनका फैसला अभी तक नही हुआ था। अगर चन्द मुकदमो की यह हालत थी, तो लाखो मुकदमो का क्या हाल होगा और यह झगडा कितने दिनो तक चलता रहेगा! इसलिए, इन्साफ के खयाल से, और वैमनस्य दूर करने के खयाल मे भी, कमीशन को ही इस सम्बन्ध में फैसला देना चाहिए, गवर्नमेंट को भी 'सरह-बेसी' तोड देनी चाहिए। इस बात पर एकमत होना मुश्किल हो गया। पर गाधीजी इस चीज को छोड़नेवाले नही थे। उन्होने कोई सुलह का रास्ता निकालना चाहा।

मै ऊपर कह चुका हूँ कि लगान-कानून के मुताबिक प्राय सभी जमींदारों ने कुछ-न-कुछ इजाफा किया था। अगर नीलवर भी उतना ही इजाफा किये होते तो उनके विरुद्ध कोई विशेष शिकायत न होती। पर उन्होने इजाफा बहुत ज्यादा किया था। इसलिए हमलोगो ने सोचा कि सारा इजाफा न तोडकर अगर कानूनन जायज इजाफा रहने दिया जाय और जबरदस्ती ज्यादा बढाया हुआ इजाफा हटा दिया जाय, तो रैयतो को शिकायत न होनी चाहिए। यही सुलह का रास्ता हो सकता था। गाधीजी ने यह प्रस्ताव पेश किया। पर नीलवर इस पर भी राजी न होते थे। इसी तरह, जहाँ हम सोलह आने तावान वापस कराना चाहते थे वहाँ वे एक पैसा भी वापस

करना नही चाहते थे। सुलह के खयाल से, अन्त में, गांधीजी को मजबूरन इस बात पर राजी होना पडा कि इजाफे का प्राय तीन-चौथाई से ज्यादा रहने दिया जाय और एक-चौथाई से कम तोडा जाय, और तावान का केवल एक-चौथाई हिस्सा वापस किया जाय तथा तीन-चौथाई छोड दिया जाय। किसी तरह, बहुत पचायत के बाद, इस पर सब राजी हो गये। दूसरी बातो के सम्बन्ध में भी कोई ज्यादा मतभेद नही हुआ। रिपोर्ट सर्व-सम्मति से तैयार करके गवर्नमेंट के पास भेज दी गई। गवर्नमेंट ने रिपोर्ट के आधार पर एक कानून बनाया जिसके जरिये तीन-कठिया-प्रथा गैर-कानूनी करार दी गई और इजाफा भी उपर्युक्त मात्रा में कम कर दिया गया। तावान के सबध में गवर्नमेंट ने हुक्म दिया कि जितना रुपया वापस करना है उतना बेतिया-राज रैयतो को वापस कर दे और फिर बेतिया-राज ही नीलवरो से वसूल करता रहे। जल्दी रुपया वापस दिलाने के खयाल से यह किया गया। साथ ही, यह भी खयाल था कि रैयतो को कोठीवाले बहुतेरी कठिनाइयो में डालेंगे। कारण, जो पैसे वे बराबर लिया करते थे, कभी दिया नही करते थे, और अब तो कुछ भी वापस नही करेंगे। चूंकि बेतिया-राज कोर्ट-आफ-वार्ड्स में था, इसलिए गवर्नमेंट भी आसानी से उसकी मार्फत वापस करा सकती थी। और-और विषयो पर गवर्नमेंट ने मुनासिब आज्ञा जारी कर दी। इस तरह, कमीशन की रिपोर्ट पूरी-पूरी मान ली गई। थोडे दिनो के अन्दर उस पर अमल भी होने लगा।

इस तरह, नील का झगडा समाप्त तो हुआ, पर जिन शर्त्तों को गांधीजी ने माना उन पर कुछ लोगों ने टीका-टिप्पणी की। उनका कहना था कि इजाफा अगर गलत था तो वह सारा-का-सारा हटा दिया जाना चाहिए था, उसी तरह तावान यदि नाजायज था तो वह भी पूरा-का-पूरा वापस होना चाहिए था। हमलोगो ने भी बहुत सोच-विचार करके सुलह की शर्त्तों को माना था। हमारे मानने का विशेष कारण यह भी था कि हम जानते थे कि इस तरह कानून के जरिये या गवर्नमेंट की मदद से अगर कुछ न किया गया, तो अदालतो में जाकर रैयत कुछ नही पा सकेंगे। गाधीजी ने हमलोगो से साफ-साफ कह दिया था कि सुलह चाहे किसी भी शर्त्त पर होती, तीन-कठिया-प्रथा उठ जाने के बाद नीलवर यहाँ ठहर नही सकते, क्योकि उनका कारबार जोर जुल्म-जबरदस्ती से चलता था—अगर वह जुल्म-जबरदस्ती बन्द हो जाय तो वे यहाँ ठहर नही सकेंगे, कारण यह कि तीन-कठिया उठा देने का—और रैयतो के दिल में जो निर्भीकता तथा साहस

आ गया है उसका—असर यह होगा कि उनकी जोर-जबरदस्ती कोई रैयत बर्दाश्त नही करेंगे; इसलिए इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं है। ऐसा ही हुआ भी।

महात्मा गाधीजी के चम्पारन जाने के और इस जाँच तथा रिपोर्ट और नये कानून बनने के थोडे ही दिनो बाद नीलवर अपनी जमीन, कोठी और माल-मवेशी बेचकर चले गये। गाधीजी के वहाँ पहुँचते ही उनका रोब उठ गया था। अब सिर्फ मामूली जमींदार की हैसियत से ही वे वहाँ रह सकते थे। इसमें उनका काम नही निबह सकता था। उन्होने उन्ही रैयतो और बेतिया-राज के हाथो अपना सब-कुछ बेच-बाच डाला था। उनको दाम भी अच्छा मिल गया, क्योकि पहली जर्मन-लडाई के बाद अभी सभी चीजो का दाम बढा-चढा था। पैसे अच्छे मिल जाने से नीलवरो को भी कोई रज नही रहा, और रैयत तो बेहद खुश हुए ही।

नीलवरो के साथ गाधीजी का सम्बन्ध बहुत अच्छा रहा। यह काम समाप्त हो जाने के बाद जब उन्होने शिक्षा, सफाई आदि का काम वहाँ के गाँवो में करना चाहा तब इससे वे खुश हुए—यद्यपि दो-एक ने कुछ बाधाएँ भी डाली, मगर दूसरो ने थोडी-बहुत मदद भी की। गाधीजी का विचार था कि जितना किया गया, उतना ही काफी नही है, उसको स्थायी बनाने के लिए रैयतो में सच्ची जागृति आनी चाहिए, नही तो नीलवरो के चले जाने के बाद भी वे किसी-न-किसी के जुल्म के शिकार बने रहेगे। इसलिए, उन्होने तीन-चार पाठशालाएँ खोली, जिनके सचालन के लिए अच्छे-अच्छे पढे-लिखे त्यागी कार्यकर्त्ता रखे गये। मुझको यह अफसोस रहा कि मैं वहाँ भी किसी पाठशाला में खुद न रह सका और पटना जाकर फिर अपने काम मे लग गया। काम करनेवाले महाराष्ट्र और गुजरात के ही अधिक रहे। उनमें स्त्री और पुरुष, दोनो थे। बिहारियो में केवल बाबू धरणीधर एक स्कूल चलाते रहे। आगन्तुको में श्री महादेव भाई देसाई और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गाबाई, साबरमती-आश्रम के श्रीनरहरि पारिख और उनकी पत्नी मणि बहन, स्वय कस्तूरबा, बम्बई के श्री वामन गोखले तथा उनकी पत्नी अवन्तिका बाई, सर्वेण्ट-आफ-इडिया-सुसाइटी के डॉक्टर श्री कृष्णदेव आदि इन पाठशालाओ को चलाते रहे। वे लोग बच्चों को अक्षर-ज्ञान देते तथा गाँवो की सफाई करते, स्त्रियो को सफाई इत्यादि सिखलाते, गाँवों के रास्तो को और विशेषकर कुओ के आसपास की जमीन को साफ रखने का पाठ सिखाते। आगे चलकर गाँवो के सम्बन्ध में जो कार्यक्रम गाधीजी ने सारे देश में जारी किया, उसका श्रीगणेश

वही पर हुआ। जो सेवक काम करते थे, कुछ दिनो के बाद चले गये। फिर उनके स्थान पर दूसरे लोग आकर काम करने लगे। इन पीछे आनेवाले लोगो में कांग्रेस के वर्तमान मन्त्री श्री शकरावदेव और बेलगांव के प्रसिद्ध काग्रेसकर्मी श्री पुण्डरीक थे। इन सब लोगो के साथ जो परिचय चम्पारन में हुआ, वह बराबर बना रहा। प्राय सबने अपना जीवन देश के ही कामो में लगा दिया।

गाधीजी वहाँ हम लोगो से कहा करते थे कि तुम लोग स्वराज्य का बहुत बडा काम कर रहे हो। वे यह भी कहा करते थे कि यहाँ पर अगर सचाई के साथ ठीक तरह से काम हुआ तो तुमलोग अपने लिए एक बडी पूँजी हासिल कर लोगे, जो आगे चलकर सार्वजनिक सेवा में बहुत कीमती साबित होगी। हमने उनकी बातो का अक्षरश पालन किया। इसमें कोई शक नही कि स्वराज्य का वह बहुत बडा काम था। बिहार के लिए तो वह एक प्रकार से सार्वजनिक कामो का श्रीगणेश था। उसके पहले केवल प्रान्तीय कान्फ्रेंस करके प्रस्ताव पास कर देना, काग्रेस के सालाना जलसे में शरीक हो जाना, कुछ पैसे किसी के पास हो तो काग्रेस को दे देना, अखबारो में कुछ लिख मारना, कौंसिल के मेम्बर हो तो कुछ प्रश्न कर देना और भाषण कर देना—सार्वजनिक कामो का यही आरम्भ और अन्त था, जन-साधारण के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क नही था। सार्वजनिक सभाएँ भी, होम-रूल-आन्दोलन के पहले बहुत ही कम हुआ करती थी। जो होती भी थी, वह भी शहरो में ही। उनमें भाषण भी बहुत करके अग्रेजी में ही हुआ करते थे। उन सभाओ में जानेवाले भी अग्रेजी जाननेवाले ही होते थे, जो सरकारी नौकर नही थे। गाधीजी की चम्पारन-यात्रा ने नई जिन्दगी फूँक दी। चम्पारन-जिले के लोगो में बडी जागृति हुई। वहाँ के कोने-कोने के लोग गाधीजी के नाम और काम से परिचित हो गये। हमलोग भी जिले के कोने-कोने से परिचित हो गये। पर यह असर चम्पारन तक ही नही रहा। यद्यपि गाधीजी ने कभी सभा इत्यादि करके प्रचार का काम नही किया था, तो भी सारे सूबे में एक नई लहर-सी दौड गई। होम-रूल का जो काम हुआ था, उसको भी इससे बहुत अधिक जोर मिल गया। गाधीजी ने जो नया रास्ता दिखलाया, उसको बिहार के लोगो नेउ सी समय मान लिया। जब पीछे गाधीजी ने देश-व्यापी आदोलन आरम्भ किया, तब बिहार बिना मीन-मेष के उनके साथ हो गया। जहाँ तक जनता का सम्बन्ध है, वही बात आज तक भी है। स्वराज्य के आन्दोलन में बिहार का भाग देश के दूसरे किसी हिस्से से कम नही रहा। गाधीजी का भी विश्वास बिहार पर था। बिहार

के सूबे को कुछ दूसरे सूबों के लोग गांधीजी का अनन्य भक्त कहा करते थे। बात भी ठीक है, क्योंकि बिहार के लोगों का विश्वास अनुभव का फल था। उनलोगों ने उनके कार्यक्रम से लाभ उठाया था—जो बात अनहोनी समझी जाती थी, उसको अपनी आंखों के सामने होते देखा था। मेरा विश्वास है, यदि सारा देश वैसा ही अन्धभक्त हो जाता तो आज देश और भी कहीं ऊँचा उठ गया होता।

सातवाँ अध्याय

चम्पारन आने के पहले ही गाधीजी ने साबरमती में सत्याग्रह-आश्रम कायम कर लिया था। वे चम्पारन यह सोचकर आये थे कि पाँच-सात दिनो के अन्दर वहाँ का काम करके वापस आश्रम चले जायेंगे। पर जब उन्होने देखा कि वहाँ पाँच-सात दिनो के बदले महीनो रहना पडेगा तब उन्होने आश्रम-वासियो को खबर दे दी कि वहाँ का काम वही लोग चलावें और कुछ दिनो तक उनके लौटने का भरोसा न रखें। इस प्रकार, आश्रम का काम वहाँ चलने लगा। चम्पारन से ही वे जो आदेश दे सकते थे, देते रहे।

चम्पारन में रहते-रहते उन्होने दक्षिण-भारत में हिन्दी-प्रचार के काम का सूत्रपात किया। वह इस तरह से हुआ कि एक बार उनसे मिलने के लिए स्वामी सत्यदेवजी आये। स्वामीजी की ख्याति बहुत थी। बिहार में, खास-कर चम्पारन में, वे कभी-कभी जाया करते और अपने व्याख्यानो से जागृति पैदा करते। उनकी हिन्दी-पुस्तकें भी प्रचलित थी। विदेश के उनके अनुभवो से लोग परिचित और प्रभावित थे। वे गाधीजी से मिलने के लिए बेतिया आये। गाधीजी ने कुछ दिनो के लिए उनको साबरमती-आश्रम मे जाकर रहने की सलाह दी। उन्होंने वैसा ही किया। फिर कुछ दिनो के बाद गाधीजी ने उनको दक्षिण-भारत में जाकर हिन्दी-प्रचार करने की सलाह दी। स्वामीजी मद्रास में जाकर कुछ दिनो तक काम करते रहे। उनके साथ ही महात्माजी ने अपने पुत्र श्री देवदास गाधी को भी हिन्दी-प्रचार के लिए भेजा। मेरा सम्बन्ध हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ पहले अधिवेशन से ही था, जो काशी में महामना मालवीयजी की अध्यक्षता में १९१० में हुआ था। मै उस प्रथम सम्मेलन में शरीक हुआ था। जहाँ तक स्मरण है, वही पर पहले-पहल श्री पुरुषोत्तम दास टंडन को देखा था। शायद कुछ परिचय भी उनसे हो गया था, पर विशेष परिचय तो सम्मेलन के कलकत्ता वाले दूसरे अधिवेशन में ही हुआ, जिसकी स्वागत-कारिणी समिति का मै मंत्री था। सम्मेलन अभी अपनी शैशवावस्था में ही था। हिन्दी-प्रचार का काम मुझे

याद नही कि उसने कहाँ आरम्भ किया, पर दक्षिण-भारत मे गाधीजी के हिन्दी-प्रचार-कार्य ने मेरी आँखो के सामने हिन्दी के लिए बहुत बडा क्षेत्र खोल दिया, मैं उसके एक दिन सारे भारत की राजकीय भाषा हो जाने का स्वप्न देखने लगा। इस प्रचार-कार्य के साथ मेरा कोई सीधा सम्बन्ध तो नही था, पर उसमें दिलचस्पी मैं लेने लगा। बिहार के कुछ प्रचारक वहाँ गये। कुछ तो आज तक वहाँ काम कर रहे हैं। आरम्भ में जानेवाले प्रचारक मुझसे पूछ कर ही जाते। इस तरह, वहाँ जो काम होता उसके साथ मेरा सम्पर्क रहा करता। महात्माजी के साथ सम्पर्क होने से यह और भी घनिष्ठ होता गया।

महात्माजी के हिन्दी-प्रचार के काम से प्रभावित होकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने उनको इन्दौर के अधिवेशन का, जो १९१८ में हुआ, सभापति चुन लिया। इन्दौर महात्माजी चम्पारन से ही गये। हममें से कई आदमी उनके साथ ही गये। वहाँ का सम्मेलन बडे समारोह के साथ हुआ। दक्षिण-भारत में हिन्द-प्रचार के लिए वही पर कुछ रुपये जमा किये गये। सम्मेलन ने, उनकी प्रेरणा से, इस काम को अपना एक मुख्य काम बना लिया।

इन्दौर के सम्बन्ध में एक छोटी घटना का उल्लेख मनोरजक होगा—यद्यपि उसमें गूढ तत्त्व भी था। महात्माजी और उनके साथ गये हुए हमलोग राज्य के अतिथि थे, इसलिए वहाँ खातिरदारी का बडा इन्तजाम था। जितने बर्तन हमारे काम के लिए वहाँ रखे गये थे, यहाँ तक कि स्नान के लिए पानी रखने के बर्तन भी, चाँदी के ही थे। राज्य के कर्मचारी दिन-रात खातिरदारी में लगे रहते थे। महात्माजी तो अपना सादा—मूँगफली इत्यादि का—भोजन अलग कर लेते थे, पर हमलोगो के लिए नाना प्रकार के पकवान इत्यादि चाँदी के बडे थालो और अनेक कटोरियो में परस कर सामने रखे गये। हमलोगो ने खूब आनन्द से भोजन किया। महात्माजी से भोजन के बाद जब मुलाकात हुई तब उन्होने पूछा कि तुम लोगों ने क्या खाया। जो कुछ हमलोगो ने खाया था, महादेव भाई ने वर्णन कर दिया। कुछ देर के बाद जब राजकर्मचारी आये तब महात्माजी ने उनसे कहा कि आप इनलोगो को जैसा भोजन दे रहे है, वैसे भोजन की इनकी आदत नहीं है, इसलिए ये लोग तो यहाँ अस्वस्थ हो जायँगे, आप इनके लिए मामूली सादा फुलका और सब्जी का प्रबध कर दीजिए, थोडा दूध भी दे दीजिएगा, इनके लिए यही स्वास्थ्यकर और अच्छा भोजन होगा। बस, उसके बाद से, चाँदी के थालो में हमलोगो को वही सादा भोजन मिलने लगा, जो हमें चम्पारन में गाधीजी के साथ मिला करता था!

महात्माजी इस बात को मानते थे कि स्वाद-इन्द्रिय पर विजय पाना बहुत कठिन है। हमलोग जो भोजन करते है, वह शरीर को सुरक्षित और पुष्ट बनाने के लिए नही, केवल स्वाद के लिए। भोजन का प्रभाव तो स्वास्थ्य पर पडता ही है, इसलिए हममे से जिनके पास पैसे होते है, वे अधिक और अस्वास्थ्यकर—पर मजेदार—खाना खाकर बीमार पडते रहते है, पर जिनके पास पैसे नही होते, वे यथेष्ट और स्वास्थ्यकर भोजन न मिलने के कारण कमजोर और बीमार हो जाते है। इसीलिए उन्होने चम्पारन में ही सादे भोजन और स्वाद पर विजय का उदाहरण हमको स्वय दिखाया था। चम्पारन में पहले तो वे मूंगफली और खजूर ही खाया करते थे। कुछ दिनो के बाद रसोई खाने लगे। पर उसमें भी उनका नियम था। चाहे फल हो या रसोई, किसी में पाँच चीजो से अधिक कुछ न होना चाहिए। इन पाँच चीजो में नमक-मिर्च-जैसी चीजें भी एक-एक अलग समझी जाती थी। इस तरह, यदि हमलोगो की तरफ कोई चीज मसालेदार बनाई जाती तो उनके लिए वह अखाद्य हो जाती, क्योकि मसाले में ही पाँच-छ चीजें हो जाती। पर इस नियम के अलावा भी वे मसाला-जैसी चीजो का इस्तेमाल बुरा समझते थे। कारण यह था कि एक तो ये चीजें बहुत करके गर्म और उत्तेजक होती है, दूसरे, ये स्वाद को भी बदल देती है, इसलिए स्वाद के कारण आदमी अधिक खा लेता है, और ऐसी चीजें खा लेता है जो हानिकर होती है। चम्पारन में जब उन्होने अन्न खाना शुरू किया, तो भी वे न तो नमक खाते थे और न दूध या दाल ही, सिर्फ चावल और उबाली हुई सब्जी ही खाया करते थे। उबाली हुई चीजो में भी विशेष करके करैला, जो कुछ अधिक पानी देकर उबाल दिया जाता और उसी पानी के साथ भात मिलाकर बहुत स्वाद से वे खा लिया करते। करैला बहुत कड़ुआ होता है। उसका उबाला हुआ पानी तो और भी कड़ुवा होता है। पर हम देखते थे कि उसीको वे आनन्द और स्वाद के साथ खा लेते थे। इन्दौर में जो उन्होने हमलोगो के लिए भी पकवान की मनाही कर दी थी, वह भी इसी प्रयोग का एक अग था। हमने यह भी देखा और समझ लिया कि सादा भोजन स्वास्थ्यकर होने के अलावा कम-खर्च भी होगा। पीछे जब बहुत स्थानो पर आश्रम के नाम से सस्थाएँ चलने लगी तब उनमें सादा भोजन अच्छी तरह से प्रचलित हो गया। यद्यपि यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि मसाले का खर्च एकबारगी बन्द हो गया, पर इसमें सन्देह नही कि वह कम जरूर हो गयी। वे जहाँ जाते और जो काम हाथ में लेते, केवल किसी एक विषय को ही मुख्य बनाकर

काम करते। पर साथ ही जहाँ तक सम्भव होता, अपने और विचारो के सम्बन्ध में भी प्रयोग करते ही रहते। यही कारण है कि वे जीवन की सभी प्रकार की समस्याओ पर केवल रोशनी ही नही डाल गये, बल्कि क्रियात्मक रूप से उनके हल करने के उपाय भी बता गये।

गाधीजी के सभापति होते ही, और प्रचार कार्य को सम्मेलन के कार्यक्रम में मुख्य स्थान मिलते ही, हिन्दी का काम जोरो से दक्षिण में चल निकला। दक्षिण को उन्होंने इसलिए हाथ में लिया कि वहाँ की भाषा बिल्कुल भिन्न है, यदि वहाँ हिन्दी-प्रचार हो जाय तो दूसरे हिस्सो में उसका प्रचार कठिन न होगा। वे प्राय कठिन काम को ही हाथ में लिया करते थे, क्योकि वे समझते थे कि कठिन काम में अगर सफलता हुई तो हल्के काम मे तो सफलता होगी ही। चम्पारन का काम भी बहुत कठिन था। बिहार में उन दिनो सार्वजनिक काम मे जो लोग हिस्सा लिया करते थे उन सब लोगो ने उनको मना किया था, पर उन्होंने किसी की न सुनी। आखिर सफल होकर एक नया रास्ता खोल ही दिया।

चम्पारन में गाधीजी के रहते-रहते ही, खेडा-जिले के किसानो ने, फसल कम हो जाने या मारे जाने के कारण, गवर्नमेंट का माल कम कराने के लिए, आन्दोलन आरम्भ किया था। गाधीजी वहाँ की हालत जानते थे। किसानो ने वहाँ सत्याग्रह करने का निश्चय किया। सरदार वल्लभ भाई ने गाधीजी के साथ उनका नेतृत्व किया। इन्दौर से महात्माजी के साथ मैं साबरमती गया। वहाँ अभी मकान तैयार नही हुए थे। शायद एक मकान का थोडा हिस्सा बना था। सब लोग बाँस की चटाइयो से बनी झोपडियो में ही रहते थे। आश्रम का जीवन आरम्भ हो गया था। सुबह-शाम की प्रार्थना, भोजन और—मुझको जहाँ तक याद आता है—कुछ चरखे का काम भी अभी शुरू ही हुआ था। वहाँ एक ही दिन ठहरकर महात्माजी खेडा-जिले में दौरा करने निकल पडे। मैं भी उनके साथ गया। अप्रैल का शायद अतिम सप्ताह था। वहाँ धूप बहुत कडाके की थी। आश्रम से रेल पर सवार होकर हम लोग कुछ दूर गये। वहाँ से कई गाँवो में जाकर लोगो से मिले। महात्माजी उनलोगो से बातें गुजराती में ही किया करते; इसलिए मैं कुछ समझ नहीं सकता था। पर इतना तो अनुमान कर लेता था कि लोगों को बताया जाता—अगर माल न देने के कारण ढोर-मवेशी जब्त किये जायें तो उनको भी बर्दाश्त करना चाहिए, पर माल हरगिज न देना चाहिए।

एक दिन दोपहरी की कडी धूप में गाधीजी के साथ मैं जा रहा था। जमीन रेतीली होने की वजह से बहुत तप रही थी। मै तो जूता पहने हुए था,

पर वे तो उन दिनो चप्पल भी नही पहनते थे। बालू में पैर जलने लगे। अभी कुछ दूर तक जाने पर ही किसी पेड की छाया मिल सकती थी, पर इस बीच में गर्म बालू के सिवा और कुछ नही था। मुझे तो कोई विशेष तकलीफ नही थी, पर मैंने देखा कि वे बहुत कष्ट पा रहे है। मेरे कन्धे पर एक चादर थी। मैंने उसे उनके पैरो के सामने डाल दिया कि इस पर थोडा आराम पैरो को मिल जाय। किन्तु उन्होने उस पर पैर नही रखा। मुझसे कहने लगे कि इसकी क्या जरूरत है, इस देश में करोडो आदमी इसी दोपहरी में, इससे भी अधिक गर्म बालू में, बिना जूता के चलते है और काम करते है। मै लाचार होकर, चादर लेकर, उनके पीछे-पीछे चुपचाप चलता गया। उसी समय मुझे चम्पारन की भी इसी तरह की एक घटना याद आ गई।

महात्माजी समय की बहुत पाबन्दी रखते थे। अपना एक मिनट भी समय बरबाद नही होने देते थे और न दूसरे का बरबाद करते थे। उनको जो समय किसी से मुलाकात के लिए दिया जाता, ठीक उसी समय—अगर उनको जाना होता तो—वे पहुँच जाते। यदि दूसरे को उनसे मिलने आना होता तो उसको भी ऐन वक्त पर उनके पास पहुँच जाना पडता। हमारा अक्सर अनुभव हुआ है कि जब-कभी नियत समय से एक-दो मिनट बाद भी पहुँचा तो किसी-न-किसी तरह से वे याद दिला देते कि देर करके आये हो। इसी तरह, अगर किसी ने समय मांगा और कह दिया कि केवल पांच ही मिनट चाहिए तथा उन्होने भी उस पांच मिनट को मजूर कर लिया, तो उन पांच मिनटो में काम पूरा न होने पर भी वे काम को अधूरा ही छोड़ देते थे—कह देते थे कि आपका समय पूरा हो गया, अगर आपको और समय चाहिए तो फिर लीजिए।

चम्पारन में हमलोग इन बातो की अच्छी तरह जानते नही थे। इस-लिए कभी-कभी कुछ ढिलाई हो जाती थी। एक दिन मजिस्ट्रेट से उनको दो बजे मिलना था। मजिस्ट्रेट का घर कुछ दूर था, इसलिए भाडे की घोडा-गाड़ी मँगा देने का प्रबध किया गया था। उन्होने पूछा था कि पैदल जाने में कितना समय लगेगा। कहा गया कि आधा घटा। इस पर उन्होने कहा कि डेढ बजे से पांच मिनट पहले ही यहां गाडी तैयार रहनी चाहिए। हम लोगों ने समझा था कि पैदल जाने में जब आधा घटा लगेगा तो घोडा-गाडी के लिए आठ-दस मिनट काफी होना चाहिए। इसलिए, गाडीवाले को यद्यपि डेढ़ बजे से पहले ही आने को कहा गया तथापि ऐसा प्रबध नही हो सका कि कोई जाकर उसे ठीक समय पर लाकर तैयार रखे। पहुँचने में उसने कुछ

देर कर दी। ठीक डेढ बजे उन्होंने पूछा, गाडी तैयार है ? और, यह सुनकर कि अभी गाडी नहीं आई, वे निकल पडे। हमलोगो ने बहुत कहा कि गाडी अभी आ जाती है, वह दो बजे के बहुत पहले ही वहाँ पहुँच जायगी, अभी थोड़ी देर ठहरकर जाने पर भी समय से पहुँच जायेंगे। पर उन्होंने नहीं माना। उस कडी धूप में ही चल पडे। पूछने पर पीछे हमलोगो को पता लगा कि उन्होंने ऐसा इसलिए किया कि वे ठीक समय पर पैदल ही पहुँच जायँ, क्योंकि किसी कारण अगर गाडी न आती तो वे देर करके चलते और वहाँ ठीक समय पर न पहुँच सकते। हमलोगो को इसी से पता चला कि वक्त की वे कितनी पाबन्दी रखते है—यह केवल सार्वजनिक काम के लिए ही नहीं, शारीरिक नित्य-क्रिया के लिए भी।

खेडा की इसी यात्रा में मेरी पहली मुलाकात सरदार वल्लभ भाई पटेल, श्रीशकर लाल बैंकर, श्री अनसूया बाई आदि से हुई। वह दिन याद है, जिस दिन 'करमसद' गाँव में हम गये थे, वही सरदार वल्लभ भाई का घर देखा था और वही भोजन किया था। जो मुलाकात उस समय हुई, वह पीछे एक घनिष्ठ सम्बन्ध के रूप में परिणत हो गई। गुजरात के गाँवो का दो-तीन दिनो तक दौरा करके मैं पटना वापस आ गया। मैंने वहाँ पूछा था कि मेरी जरूरत अगर हो तो मैं रह जाऊँ, पर इसकी जरूरत नहीं समझी गई और मुझे छुट्टी मिल गई।

खेडा का सत्याग्रह थोडे ही दिनो में सफलता-पूर्वक समाप्त हुआ। उसके बाद गाधीजी उस जिले में दौरा करके लोगों को फौज में भर्ती कराने के प्रयत्न में लग गये। उस समय जर्मन-युद्ध बहुत जोरो से चल रहा था। लार्ड चैम्सफोर्ड को महात्माजी ने वचन दिया था कि वे मदद करेंगे। उस वचन को पूरा करने के लिए उन्होंने उस गर्मी के मौसम में गावो का दौरा किया, जिसका एक नतीजा यह हुआ कि कुछ दिनो के बाद वे सख्त बीमार पड गये।

जब गाधीजी ने फौज में भर्ती कराने का काम शुरू किया तब उसका असर बिहार पर यह हुआ कि उस सूबे की गवर्नमेंट भी भर्ती के काम में हमसे मदद लेने लगी। गाधीजी के साथ चम्पारन में रहने की वजह से लोगो से काफी परिचय हो गया था। शायद सरकारी कर्मचारियो के दिल में भी यह बात बैठ गई थी कि हमारे ऐसा आदमी उस काम में मदद पहुँचा सकता है। इसलिए जब पटना में एक प्रातीय कमिटी बनाई गई तब उसका सदस्य बनने को मुझसे कहा गया। चूकि गाधीजी इस काम को कर रहे थे, मैंने भी मजूर कर लिया। मुझसे विशेष आशा यह की जाती थी कि

युवक-वर्ग में से मै कुछ लोगो को लडाई में जाने के लिए तैयार कर सकूँगा, क्योकि बिहारी-छात्र-सम्मेलन के कारण छात्र-वर्ग के साथ मेरा बहुत सम्पर्क था। पटना-युनिवर्सिटी-बिल के विरोध के आन्दोलन में मेरी साख जम गई थी। मैंने कुछ प्रयत्न तो किया, पर बिल्कुल असफल रहा, क्योकि छात्र-वर्ग लडाई में जाने के लिए तैयार नही था। गाधीजी को भी अधिक सफलता नही मिली। पर जहाँ तक उनके शरीर से हो सकता था, उन्होने कुछ भी उठा न रखा। इतना अधिक परिश्रम किया कि उनकी जान भी जोखिम में पड गई। मै अपने बारे में ऐसा नही कह सकता। कुछ थोडा-बहुत प्रयत्न किया, पर और कामो के साथ इसको भी एक काम समझा, केवल इसी में सारी शक्ति नही लगा दी, अगर लगाता भी तो शायद बहुत बडा नतीजा नही निकलता। हमने इससे यह समझ लिया कि गाधीजी जो काम हाथ में लेते है, उसको पूरा करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देते है। हमने अपने में यह कमी पाई—केवल उसी समय नही, पीछे भी। वह एक-चित्तता और नतीजे की परवा न करके काम करने की प्रवृत्ति हमने अपने में कभी न पाई।

इसी समय मौंटेगु-चैम्सफोर्ड-रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उन्होने हिन्दुस्तान के विधान में सुधार करने के लिए यह रिपोर्ट तैयार की थी। देश की जागृति और होम-रूल-आन्दोलन के कारण ही ब्रिटिश गवर्नमेंट ने विधान में सुधार करने की घोषणा की थी। मि० मौण्टेगु भारत-सचिव थे। लार्ड चैम्सफोर्ड वाइसराय थे। दोनो ने भारत में भ्रमण करने और नेताओ से मिलने के बाद यह रिपोर्ट लिखी। रिपोर्ट की सिफारिशो के सम्बन्ध में देश में मतभेद देखने में आया। कुछ लोग उसको ना-काफी समझते थे, कुछ लोग नाकाफी समझते हुए भी कृतज्ञ थे। तब काग्रेस का एक विशेष अधिवेशन करने का निश्चय हुआ। वह अधिवेशन बम्बई में होनेवाला था। अधिवेशन के लिए सभापति चुनने की बात आई। इसी सम्बन्ध में श्रीमती बेसेण्ट पटना आई। मुझसे भी इस सम्बन्ध में उनकी बातें हुई। यो तो मैंने उसके भाषणो को पहले भी सुना था, पर उनसे परिचय नही हुआ था। उन्होने मुझ से पूछा कि तुम किसका सभापति होना पसन्द करोगे। मैंने गाधीजी का नाम बताया। उन्होने कहा, वे दूसरा काम तो खूब कर लेते है, पर वे पोलिटिशियन नही है। उन्होने मेरे प्रस्ताव को, जो महज खानगी तौर से बातचीत में किया गया था, नामजूर कर दिया। शायद वे पहले से ही निश्चय करके आई थी कि श्री सैयद हसन इमाम सभापति बनाये जायँ। हसन इमाम साहब, जबतक हाईकोर्ट के जज नही हुए थे, काग्रेस में जाया-

आया करते थे—उसमें दिलचस्पी लिया करते थे, पैसे भी दिया करते थे। कलकत्ता में हाईकोर्ट के जज होकर, फौजदारी के मुकदमो में इन्साफ करके, उन्होने अच्छी ख्याति भी पाई थी। जब १९१६ में पटना में हाईकोर्ट खुला, जजी से इस्तीफा देकर पटना में बैरिस्टरी करने लगे। इन सारी बातो ने मिल-जुलकर उनको बहुत ही प्रसिद्ध जननायक बना दिया था। श्रीमती बेसेण्ट ने लोगो से राय करके उनको ही सभापति बनाया। जिस वक्त उन्होने मुझसे यह कहा कि गाधीजी पोलिटिशियन नही है, मैने दबी जबान से इसका कुछ प्रतिरोध भी किया। चम्पारन में जो बडा काम गाधीजी ने कर दिखाया था, उसका हवाला भी दिया। पर मेरी एक न चली। जब उन्होने अपनी ओर से हसन इमाम साहब का नाम पेश किया तो उनके विरोध में मैं कुछ कह ही नही सकता था। मेरा अनुमान है कि श्रीमती बेसेंट का इसी किस्म का विचार गाधीजी के सम्बन्ध में बना रहा; क्योकि गाधीजी ने जब देशव्यापी असहयोग-आन्दोलन आरम्भ किया तब श्रीमती बेसेंट ने भी उसका जोरो से विरोध किया। यहाँतक कि गाधीजी की एक तरह से शैतान से तुलना करके अपने पत्र में लिखा—"वे अन्धकार-मय शक्तियो का प्रतिनिधित्व करते है।"

गाधीजी इतने अस्वस्थ थे कि बम्बई-काग्रेस में नही जा सके। मै उसमें गया। काग्रेस समाप्त होने पर महात्माजी से मिलने अहमदाबाद चला गया। उन दिनो वे वहाँ मिरजापुर में, सेठ अम्बालाल की कोठी में, ठहरे हुए थे। मै भी जाकर वही ठहरा। उनको पेट की बीमारी थी। ज्वर भी हो जाया करता था। वे औषधि कुछ लेते नही थे। उस वक्त दूध या दूध से बनी कोई चीज भी नही लेते थे। सब लोग घबराते थे कि वे कैसे रोगमुक्त होगे। मैने सोच लिया था कि दो-चार दिनो तक उनके साथ ठहरूँगा। रोज कुछ देर उनके पास बैठता। बाकी समय इधर-उधर घूमने में लगाता। एक दिन शहर में कुछ पुरानी ऐतिहासिक चीजो को देखने के लिए चला गया। कुछ देर करके लौटा तो सुना कि वे आश्रम चले गये। मै भी आश्रम चला गया और वही ठहरा। दूसरे ही दिन वहाँ से लौटने का मेरा इरादा था।

उस वक्त तक कुछ मकान आश्रम मे बन गये थे। एक कमरे में एक चारपाई पर वे लेटे थे। मै खूब सवेरे वहाँ उनसे मिलने चला गया। देखा कि वे कुछ चिन्तित और व्यस्त है। थोडी देर में श्रीछगनलाल गाधी आ गये। कुछ देर के बाद महात्माजी स्वयं बोलने लगे—"शहर में ज्वर की हालत में जिद करके यहाँ चला आया। मै वहाँ उस बड़े महल में पटा-पटा

यही सोचता था कि इस महल में मेरा क्या काम, मुझे तो आश्रम में ही रहना चाहिए और जबतक आश्रम में न जाऊँ, मुझे शान्ति कहाँ मिलेगी। यहाँ भी आकर मैं बहुत देर तक जागता और सोचता रहा हूँ कि मैं क्या कर रहा हूँ—एक काम भी पूरा नही कर पाता कि दूसरे काम में हाथ लगा देता हूँ, वह अभी अधूरा ही रहता है कि तीसरे में पड जाता हूँ। इस आश्रम को मैंने बहुत आशा और हौसले से खोला था। मैं चाहता था कि यहाँ रह कर, जैसा यह आश्रम होना चाहिए, वैसा इसे बनाने में और जैसे आश्रमवासी होने चाहिए, वैसे लोगो के तैयार करने में लगा रहूँ। पर वह काम अभी ठीक तरह से आरम्भ भी न हुआ कि मुझे चम्पारन चला जाना पडा और तुमलोगो पर आश्रम चलाने का सारा भार पड गया। यहाँ तक कि जिस दिन से बाजाब्ता आश्रम का काम शुरू हुआ उस दिन भी मैं न आ सका। चम्पारन में जहाँ तक गवर्नमेंट से काम करा कर रैयतो को राहत दिलाने की बात थी, वह तो एक प्रकार से पूरी हुई। पर क्या इतने से ही रैयतो का भला होगा ? उनके बीच में रहकर उनकी रहन-सहन सुधारना, उन्हे निर्भीक बनाना और सच्ची शिक्षा देना असल काम है। इसके लिए मैंने कुछ पाठशालाएँ खुलवाईं। वहाँ उनके बीच रहकर कुछ काम करना चाहिए, ऐसा सोचा तो, पर वह रचनात्मक काम अभी पूरी तरह आरम्भ भी न हुआ था कि मुझे 'खेडा' जाना पडा। खेडा का काम अधूरा ही था कि फौज की भर्ती का काम आ गया। वही करते-करते इतना बीमार हो गया हूँ। मालूम नही, क्या होगा। अहमदबाद के मिल-मजदूरो में भी मैंने काम शुरू किया। पर उसको भी अधूरा ही छोड कर दूसरे काम में लग जाना पडा। तो क्या सारा जीवन इसी तरह के अधूरे काम करके ही समाप्त करना है ? मुझे वह महल कल आराम नही देता था, चुभ रहा था। इसीलिए मैं इतना जिद्द करके, ज्वर की हालत में ही, यहाँ चला आया। यही रात भर सोचता रहा। अब क्या होगा, कुछ देख नही रहा हूँ।"

इसी तरह की बातें करते-करते वे इतने आवेश में आ गये कि आँखों से आँसू बहने लगे। वे बच्चो की तरह फूट-फूट कर रोने लगे। हमलोग चुप बैठे देखते रहे—क्या बोलें, क्या कहें और उनको क्या समझावें। थोडी देर के बाद खुद ही शान्त होकर फिर बोले—"इतना आँसू बहने से कुछ शान्ति आई। जो ईश्वर को मजूर होगा, वही होगा।" इतना ही कहकर चुप हो गये। फिर, थोडी देर के बाद, आश्रम की और दूसरी बातें करने लगे। मुझे भी पटना जाने की आज्ञा मिली। मैं वहाँ से पटना आ गया।

बराबर वह दृश्य आंखो के सामने रहता है। अब मालूम होता है कि उन्होंने अपने जानते तो काम अधूरा छोडा, पर जिस काम को अधूरा भी छोडा, उसे भी बहुत दूर आगे तक पहुँचा दिया। अगर उसमें भी कुछ बाकी रह गया है तो उसे देश को—विशेष कर जो लोग अपने को उनका अनुयायी मानते हैं उनको—पूरा करना है। यदि वे पूरा नही करते तो देश का दुर्भाग्य और उनकी अकर्मण्यता है।

यही सोचता था कि इस महल में मेरा क्या काम, मुझे तो आश्रम में ही रहना चाहिए और जबतक आश्रम में न जाऊँ, मुझे शान्ति कहाँ मिलेगी। यहाँ भी आकर मै बहुत देर तक जागता और सोचता रहा हूँ कि मै क्या कर रहा हूँ—एक काम भी पूरा नही कर पाता कि दूसरे काम में हाथ लगा देता हूँ, वह अभी अधूरा ही रहता है कि तीसरे में पड जाता हूँ। इस आश्रम को मैने बहुत आशा और हौसले से खोला था। मै चाहता था कि यहाँ रह कर, जैसा यह आश्रम होना चाहिए, वैसा इसे बनाने में और जैसे आश्रमवासी होने चाहिए, वैसे लोगो के तैयार करने में लगा रहूँ। पर वह काम अभी ठीक तरह से आरम्भ भी न हुआ कि मुझे चम्पारन चला जाना पडा और तुमलोगो पर आश्रम चलाने का सारा भार पड गया। यहाँ तक कि जिस दिन से बाजाब्ता आश्रम का काम शुरू हुआ उस दिन भी मै न आ सका। चम्पारन में जहाँ तक गवर्नमेंट से काम करा कर रैयतो को राहत दिलाने की बात थी, वह तो एक प्रकार से पूरी हुई। पर क्या इतने से ही रैयतो का भला होगा? उनके बीच में रहकर उनकी रहन-सहन सुधारना, उन्हे निर्भीक बनाना और सच्ची शिक्षा देना असल काम है। इसके लिए मैने कुछ पाठशालाएँ खुलवाईं। वहाँ उनके बीच रहकर कुछ काम करना चाहिए, ऐसा सोचा तो, पर वह रचनात्मक काम अभी पूरी तरह आरम्भ भी न हुआ था कि मुझे 'खेडा' जाना पडा। खेडा का काम अधूरा ही था कि फौज की भर्ती का काम आ गया! वही करते-करते इतना बीमार हो गया हूँ। मालूम नही, क्या होगा। अहमदबाद के मिल-मजदूरो में भी मैंने काम शुरू किया। पर उसको भी अधूरा ही छोड कर दूसरे काम में लग जाना पडा। तो क्या सारा जीवन इसी तरह के अधूरे काम करके ही समाप्त करना है? मुझे वह महल कल आराम नही देता था, चुभ रहा था। इसीलिए मै इतना जिद्द करके, ज्वर की हालत में ही, यहाँ चला आया। यही रात भर सोचता रहा। अब क्या होगा, कुछ देख नही रहा हूँ।"

इसी तरह की बातें करते-करते वे इतने आवेश में आ गये कि आँखों से आँसू बहने लगे। वे बच्चो की तरह फूट-फूट कर रोने लगे। हमलोग चुप बैठे देखते रहे—क्या बोलें, क्या कहें और उनको क्या समझावें! थोडी देर के बाद खुद ही शान्त होकर फिर बोले—"इतना आँसू बहने से कुछ शान्ति आई। जो ईश्वर को मजूर होगा, वही होगा।" इतना ही कहकर चुप हो गये। फिर, थोडी देर के बाद, आश्रम की और दूसरी बातें करने लगे। मुझे भी पटना जाने की आज्ञा मिली। मै वहाँ से पटना आ गया।

बराबर वह दृश्य आंखों के सामने रहता है। अब मालूम होता है कि उन्होंने अपने जानते तो काम अधूरा छोड़ा, पर जिस काम को अधूरा भी छोड़ा, उसे भी बहुत दूर आगे तक पहुँचा दिया। अगर उसमें भी कुछ बाकी रह गया है तो उसे देश को—विशेष कर जो लोग अपने को उनका अनुयायी मानते हैं उनको—पूरा करना है। यदि वे पूरा नहीं करते तो देश का दुर्भाग्य और उनकी अकर्मण्यता है।

आठवाँ अध्याय

जर्मन लडाई के जमाने में दो मुख्य घटनाएँ हुईं, जिनका भारत के इतिहास के साथ बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक का थोडा जिक्र मैं कर चुका हूँ—वह वैधानिक सुधार-सम्बन्धी घोषणा और उसकी पूर्ति के लिए मौण्टेगू-चैम्सफोर्ड-रिपोर्ट के सम्बन्ध में देश में मतभेद इत्यादि। और, दूसरी चीज थी रौलट कमीशन की नियुक्ति। यह कमीशन देश में राजविद्रोही दलो की कार्यवाहियो की जाँच करने और उनसे राज्य को सुरक्षित रखने के उपाय बताने के लिए नियुक्त हुआ था। इसका नाम इसके प्रधान 'मि० रौलट' के नाम पर पडा था। कमिटी ने एक रिपोर्ट तैयार की। उसमें क्रान्तिकारी दलो का इतिहास तो था ही, लडाई के जमाने में देश और विदेश में जो विद्रोह करने का प्रयत्न किया गया था उसका वर्णन भी था। उसकी सिफारिशें इस तरह की थी कि भविष्य में किसी विद्रोही को विद्रोह करने का मौका न मिले। लडाई के जमाने में, सभी देशो में, दुश्मन के षड्यन्त्र से बचने के लिए, ऐसे कानून बना दिये जाते है। ऐसे कानून के द्वारा, अदालतो के हस्तक्षेप बिना ही, शक-शुबहा पर किसीको गिरफ्तार कर नजरबन्द कर देने और घर-जायदाद पर कब्जा कर लेने का अधिकार सरकारी अधिकारियो को दे दिया जाता है—इत्यादि। चूँकि दुश्मन से मुकाबला रहता है, लोग इन चीजो को बर्दाश्त कर लेते है। जहाँ अपनी सरकार रहती है, वहाँ इन अधिकारो का प्रयोग भी ऐसी ही अवस्था में होता है, जब देश के लिए आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार का अधिकार भारत-सरकार को भी, लडाई के जमाने में, मिले थे। यहाँ अपनी सरकार तो थी नहीं। ऐसे कानून का, गैरकानूनी तौर से भी, लोगों के साथ बहुत दुर्व्यवहार हुआ था। खासकर लडाई के लिए चन्दा वसूलने और फौज की भर्ती में बहुत ज्यादती और जुल्म हुए थे। देश में इस वजह से बहुत असतोष और रोष था। विशेष कर पजाब में, जहाँ के बडे जाबिर और जबरदस्त लेफ्टिनेंट-गवर्नर सर मायकेल ओडायर थे।

रौलट-कमिटी की सिफारिशें थी कि इस लडाई के लिए वने हुए इस भारत-रक्षा-कानून की वुरी-से-वुरी धाराओ को भी अस्थायी रूप से भारतवर्ष के कानून में स्थान दिया जाय। यह कमीशन लडाई के जमाने में ही नियुक्त हुआ था। पर इसकी रिपोर्ट निकलते-निकलते लडाई खत्म हो गई। तव गवर्नमेंट ने इसकी सिफारिशो के अनुसार विल तैयार किया, जो इम्पीरियल-लेजिस्लेटिव-कौंसिल के अधिवेशन में पेश किया गया। गवर्नमेंट की दोहरी नीति वहुत दिनो से चली आती थी—एक तरफ कुछ वैधानिक सुधार करके स्वराज्य की वात करनेवालो का मुंह वन्द कर देना और दूसरी ओर अधिक चीं-चपड करनेवालो के साथ सख्ती करना। इसी नीति के अनुसार एक तरफ सुधार की योजना हुई, दूसरी तरफ रौलट-विल वना। दोनो ही देश के सामने आये। सुधार की योजना के सम्वन्ध में तो देश में कुछ मतभेद था, पर काले कानूनो के सम्वन्ध में देश-भर में कोई मतभेद नही था। यह नाम उन दो विलो का पड गया, जिनके द्वारा रौलट-कमीशन की सिफारिशो को कानूनी रूप मिलता था। देश के नरम दल, गरम दल और क्रान्तिकारी लोग—सवके सव उनके कट्टर विरोधी थे। कौंसिल में उन दिनो थोडे ही लोग जनता का प्रतिनिधित्व करते थे। अधिकतर सरकारी मुलाजिम तथा सरकारी नामजद लोग ही कौंसिल-मेम्वर हुआ करते थे। चुने हुए प्रतिनिधियो में एक आदमी भी ऐसा न मिला, जो उनका कडा विरोधी न हो। सारे देश में आवाज उठी कि हिन्दुस्तान ने लडाई जीतने में गवर्नमेंट की कितनी मदद की और उसका फल इन काले कानूनो के रूप में गवर्नमेंट दे रही है! पर गवर्नमेंट ने एक भी न सुनी। ऐसा मालूम हुआ कि ये जरूर पास हो ही जायेंगे। महात्माजी, जो हाल ही में अपनी वीमारी से उठे थे, इन विलो से वहुत ही व्यथित हुए। उन्होने इनका कडा विरोध किया। दूसरे लोग अपने वयान देकर ही शायद चुप रह जाते, अपने विरोध को कोई क्रियात्मक रूप नही देते, पर गाधीजी इस तरह चुप वैठनेवाले नही थे। उन्होने सभी जगहो पर सभाएं करके विरोध करने का कार्यक्रम देश के सामने रखा। वहुतेरी सभाएं हमलोगो ने विहार में भी की। खासकर पटना में कई सभाएं हुई, जिनमे वहुत लोग आया करते। इस तरह की सभाएं इसके पहले हम कभी विहार में नही देखते थे। नई जागृति और नया जोश आ गया था।

अन्त में, जब सरकार ने कुछ नही सुना, तव उन्होने यह प्रस्ताव किया कि ये कानून यदि पास भी हो जायें तो कदापि न माने जायें। जो लोग ऐसा करने के लिए तैयार थे, उनके नाम लिखकर प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत

कराके भेजने को कहा। बिहार में, चूँकि मै पटना में ही रहता था, मेरे ही जिम्मे दस्तखत कराने का काम आया। कहना अनावश्यक है कि चम्पारन के उनके सहकर्मियो में से बहुतेरो ने, और दूसरे लोगो ने भी, सहर्ष इस प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कर दिया।

यह ठीक पहला समय था, जब हिन्दुस्तान में लौटने के बाद गांधीजी ने सामूहिक रूप से कानून तोडने का कार्यक्रम देश के सामने रखा था। इस कार्यक्रम में एक बडी कठिनाई यह थी कि जो काले कानून बन रहे थे और जिनके विरोध में यह सत्याग्रह होनेवाला था वे आसानी से तोडे नही जा सकते थे, क्योकि उनमें कोई ऐसी चीज जल्दी नही निकलती थी, जिसकी अवहेलना की जा सके। पर इस दिक्कत को गाधीजी ने इस तरह हल किया कि जो प्रतिज्ञा-पत्र उन्होने बनाया उसमें यह लिखा गया कि हस्ताक्षर करनेवाला उन कानूनो को अथवा कमिटी के बताये हुए दूसरे कानूनो को भी तोडेगा। इस तरह, कमिटी के हाथ में यह बात रख दी गई कि कौन कानून तोडना होगा। सत्याग्रह-सभा के नाम से कमिटी मुकर्रर हुई। सारे देश में उत्साह उमड रहा था। पर बहुतेरे लोग, जो काले कानूनो के कट्टर विरोधी थे, सत्याग्रह—अर्थात् कानून-भग—का कार्यक्रम नापसद करते थे। यही पर साफ हो गया कि गाधीजी की पद्धति में और आजतक की प्रचलित राजनीतिक आन्दोलन की पद्धति में कितना फर्क है। वैधानिक सुधार के कारण काग्रेस के भीतर जो मतभेद पैदा हो गया था, वह इस सक्रिय आन्दोलन के कारण और भी स्पष्ट हो गया। बिहार में इस सम्बन्ध में उतना कडा विरोध नही था। यहाँ तक कि मि॰ हसन इमाम ने भी प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कर दिया था। इसी सिलसिले में गाधीजी ने तिथि नियत की। उस दिन देश को उपवास करने, सब करबार बन्द रखने, जुलूस निकालने तथा सभाएँ करके विरोध-प्रस्ता करने का आदेश दिया। उन्होने इस आन्दोलन को देश के लिए शुद्धि का एक साधन बताया और अहिंसा पर काफी जोर दिया। यह भी कहा कि उस दिन सभी लोग अपने धर्म के अनुसार अपने-अपने देवालयो में प्रार्थना करें। तिथि के प्रकाशित होने में कुछ गडबडी हो गई। इसलिए कही एक हफ्ता बाद और कही एक हफ्ता पहले यह दिन मनाया गया।

देश के लिए यह एक नया सदेश था। उस समय तक आन्दोलन का रूप बस सभाओ में प्रस्ताव पास कर देना और अखबारो में लेख लिख देना तक ही सीमित रहा करता था। बग-भग के समय, इसके अलावा, अग्रेजी चीजो के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार की बात भी चल गई थी। पर

वह उसी एक आन्दोलन में काम में लाया गया था। बग-भग रद्द हो जा‹
के बाद उसे भी लोग भूल गये थे। हाँ, जो उग्र मिजाज के थे, वे क्रान्तिकारी
दल में शरीक हो गये। क्रान्तिकारी लोग अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी अफसरो
को, जो आन्दोलन दबाने में अधिक काम करते रहे, मार डालने का प्रयत्न
करते थे। इसके लिए वे बम बनाते और जहाँ-तहाँ से पिस्तौल इत्यादि
जुटाते। कुछ लोग चुपके से पैसे उनको देते। नही तो, जहाँ तक उनकी ओर
से डकैतियाँ की जाती, उन्ही से पैसे जमा किये जाते। विशेषकर इस दल
में युवक होते। इसका खुला प्रचार नही होता; सब काम गुप्त रीति से
किये जाते। इसलिए, देश की जनता में इसका बहुत प्रचार नही हो पाया
था। पर जो इसमें शरीक होते, वे धुन के बड़े पक्के होते—अपनी जान हथेली
पर लेकर काम किया करते। बहुत मुकदमे भी चले। बहुतेरो को फाँसी,
कालापानी और लम्बी-लम्बी कैद की सजाएँ मिलती। एक कमजोरी इसमें
यह थी कि जब कभी मुकदमे चलते, चाहे जिस तरह हो, किसी-न-किसी को
पुलिस फोड़ ही लेती। वही सरकारी गवाह हो जाता। मुकदमा चलने
पर कचहरियो में पैरवी की जाती और जिस तरह से हो, बचने का प्रयत्न
किया जाता।

गांधीजी ने जो कार्यक्रम बतलाया था, वह इससे भिन्न था। एक तो
उसमें प्रतिपक्षी पर हाथ उठाने की बात नही थी; दूसरे जो कुछ करना था,
वह खुले-आम लुक छिपकर नही, और उसके लिए जो भी सजा हो उसे
हँसते हँसते शिरोधार्य करना था। रौलट बिल के विरुद्ध आन्दोलन मे जितनी
सभाएँ देश में हुई और उनमें जितने लोग शरीक हुए, उनमे जो उत्साह
के दृश्य देखे गये, वे अभूतपूर्व थे। जो लोग पहले की पद्धति से सतुष्ट नही
थे और जो उसे निष्फल तथा निष्क्रिय समझते थे—पर साथ ही जो क्रान्ति-
कारी कार्यक्रम को भी पसद नही करते थे—इस नये कार्यक्रम को देखकर
बहुत प्रभावित हुए। ऐसा मालूम हुआ कि देश के हाथ में एक नया हथियार
गांधीजी ने दे दिया।

चम्पारन से जाने के बाद भी गांधीजी ने विहार के साथ सम्बन्ध रखा।
हमलोग समझते थे कि जो कुछ वे कहे, हमें करना ही चाहिए। उनको
भी भरोसा था कि वे जो कहेंगे, उसे विहार के लोग मान लेंगे। इसलिए,
इस सत्याग्रह में हमने अपनी जवाबदेही समझकर ही उस काम को हाथ में
लिया था—यद्यपि यह अभी साफ नही था कि कब और किस तरह इसका
आरम्भ होगा। पटना में छठी अप्रैल की हड़ताल, जुलूस और सभा ऐसी
हुई, जैसी पहले विहार में कभी न हुई होगी। केवल पटना में ही नही,

बिहार के दूसरे शहरो और गाँवो में भी यह दिन बडे समारोह से मनाया गया। शहरो में एक भी दूकान न खुली और न भाडे की एक सवारी चली। सारे शहर के हिन्दुओ ने मानो उस दिन को एक पवित्र दिन मानकर गगा में स्नान किया और मदिरो में प्रार्थना भी की। मुसलमानो ने मसजिदो में दुआएँ माँगी। दोपहर को दो-ढाई मील लम्बा एक जुलूस निकला, जिसमें सभी लोग नगे सिर और नगे पैर शरीक हुए। पटना शहर में किले पर सभा होनेवाली थी, पर वह जगह छोटी साबित हुई। अत सब लोग गगा के किनारे बालू पर फैल गये। वही एक इतनी बडी सभा हुई जितनी बडी उसके पहले पटना में कभी हुई न होगी। गाधीजी का नाम बिहार के देहातो मे—विशेषकर उत्तर-बिहार में—लोग अच्छी तरह जानते थे, क्योकि चम्पारन की बात घर-घर में फैल गई थी। गाँव के लोगो ने भी उस दिन काम बन्द रखने के आदेश का ऐसा पालन किया कि उस दिन देहातो मे न हल जोते गये और न बैलगाडियाँ चली। सभी जगहो पर लोगो ने उपवास किया और सभाएँ की। यह खबर जब हमलोगो को मालूम हुई कि गाँवो में भी लोगो ने यह दिन मनाया है, तब हमलोगो का उत्साह और भी बढ गया। अब हम इसकी अपेक्षा करने लगे की आगे क्या आदेश मिलता है।

गाँधीजी, दिल्ली में कुछ वाकयात हो जाने के कारण, अहमदाबाद से दिल्ली जा रहे थे। गवर्नमेंट के हुक्म से, दिल्ली के नजदीक पहुँचने पर, वे गिरफ्तार कर लिये गये। गवर्नमेंट के आदमी उनको कही ले गये—उस समय उनलोगो ने यह नही बतलाया कि उन्हे कहाँ ले जा रहे है। श्री महादेव भाई उनके साथ थे, उन्हे भी यह पता न लगा कि महात्माजी कहाँ ले जाये गये। तब वे सीधे बम्बई वापस हुए। उन्होने मेरे पास तार भेजा कि महात्माजी दिल्ली के रास्ते में गिरफ्तार कर किसी अज्ञात स्थान में भेज दिये गये। मुझे उन्होने तुरत बम्बई बुलाया कि वही मिलकर सलाह-बात की जाय कि अब क्या करना होगा। मै तार पाते ही बम्बई के लिए रवाना हुआ। समझ लिया कि कुछ-न-कुछ होकर ही रहेगा, अब ज्यादा इन्तजार करने की जरूरत नही पडेगी। रास्ते में मुझे कुछ अखबार मिले, जिनसे यह पता चला कि कई जगहो पर बलवा शुरू हो गया है। पटना से बम्बई जाने में प्राय दो दिन रेल में लग जाते हैं। मुझे यह खबर भी एक दिन देर करके मिली थी, इसलिए मेरे बम्बई पहुँचते-पहुँचते तीन या चार दिन बीत चुके थे। मै पहुँचा तो मालूम हुआ कि महात्माजी को और कही न ले जाकर बम्बई में ही लाकर छोड दिया है। उनकी गिरफ्तारी की खबर

से बम्बई में भी कुछ बलवा-फसाद शुरू हुआ था। पर वहाँ उनके पहुँच जाने पर शांति हो गई थी। किन्तु वे अहमदाबाद चले गये थे, जहाँ जोरों से बलवा हो रहा था। तब तो बम्बई में मेरा कोई काम नहीं रह गया। मैंने सोचा कि अहमदाबाद ही चलना चाहिए। उसी दिन सध्या की गाड़ी से मैं अहमदाबाद के लिए रवाना हो गया। वहाँ भी महात्माजी के पहुँचने के बाद बलवा-फसाद कम हो गया था। पर सरकारी चौकसी सारे शहर में दीख रही थी। पुलिस और फौज के आदमी पहरा लगा रहे थे। स्टेशन से साबरमती-आश्रम पहुँचने में मुझे कठिनाई का सामना करना पड़ता, किन्तु स्टेशन पर खुफिया-पुलिस के आदमी ने तॉगा ठीक करके मेरा काम आसान कर दिया। मैं महात्मा जी के पास सकुशल पहुँच गया। वे शहर में सभी जगहों पर अपने कार्यकर्ताओं को भेज रहे थे और लोगों को समझा-बुझाकर शान्त करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। बहुत-कुछ शहर शान्त हो चुका था। पर तो भी लोगों में प्रचार की जरूरत तो थी ही। वहाँ की स्थिति सुधरते ही, उसी दिन या दूसरे दिन, महात्माजी फिर बम्बई के लिए रात को रवाना हो गये। मैं भी साथ था। रेल में उनके ही डब्बे में बैठा। रात को वे सोये नहीं, कुछ लिखते ही रहे। सवेरे जो उन्होंने लिखा था, मुझे पढ़ने को दिया। यह आन्दोलन और सत्याग्रह बन्द करने की घोषणा थी। जो बलवा-फसाद उनकी गिरफ्तारी के कारण दिल्ली, पंजाब, बम्बई, अहमदाबाद और और दूसरे अनेक स्थानों में हुआ उसका असर उनके दिल पर बहुत पड़ा। उन्होंने उस समय रेल में ही निश्चय किया कि देश ने उनकी पद्धति को अभी ठीक समझा नहीं, इसलिए आन्दोलन को बन्द करना ही उचित होगा।

जो लोग अभी उनके अहिंसा-तत्त्व को ठीक नहीं समझे हुए थे, उन्होंने इसकी आलोचना की। इस तरह आन्दोलन रोक देने को भला-बुरा भी कहा। अभी तक सत्याग्रह न कहीं शुरू हुआ था और न इसका ठीक रूप ही निर्धारित हुआ था। जिन लोगों ने प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत किये थे, वे भी अभी नहीं जानते थे कि उन्हें क्या और कब कुछ करना होगा। इसलिए महात्माजी की घोषणा निकलते ही सत्याग्रह की बात तो स्थगित हो गई। पर इसी बीच पंजाब के जलियानवाला-बाग में, जेनरल डायर द्वारा, निर्मम हत्याकाण्ड और पंजाब-प्रान्त में बड़े भारी जुल्म और अत्याचार हो गये, जिनकी पूरी खबर देश को बहुत दिनों तक नहीं मिली। किन्तु मिलने पर तो सारे देश में आग-सी लग गई। यही स्वराज्य सम्बन्धी देशव्यापी आन्दोलन की नींव डालने का कारण साबित हुई। इसी बीच ब्रिटिश गवर्नमेंट की खिलाफत सम्बन्धी नीति और वादा-खिलाफी ने मुसलमानों में भी क्षो

जागृति ला दी। जब पजाब-सम्बन्धी हत्याकाड और अत्याचारो की जाँच के लिए गवर्नमेंट ने हटर-कमीशन नियुक्त किया और उस कमीशन के साथ काग्रेस की नही पटी, तब कॉंग्रेस की ओर से जाँच के लिए अलग कमिटी मुकर्रर हुई, जिसके एक सदस्य महात्मा गाधी भी थे। जब हत्याकाड तथा अत्याचारो के ब्योरेवार हाल लोगो को मालूम हुए तब देश के असतोष का पारा और भी ऊँचा चढ़ गया। मै उन दिनो पटना में ही रहा, पर इस जाँच-कमिटी के साथ मेरा कोइ सम्बन्ध नही हुआ।

जब गाँधीजी ने खिलाफत-कमिटी को असहयोग करने की राय दी, उसने खिलाफत-सम्बन्धी सरकारी नीति के कारण असहयोग करने का निश्चय कर लिया। गवर्नमेंट ने भी हटर-कमिटी और काग्रेस-कमिटी की जाँच-रिपोर्ट के बाद पजाब-सम्बन्धी कोई सतोषजनक फैसला नही किया। तब, कॉंग्रेस के सामने भी यह सवाल आया कि अब उसे क्या करना चाहिए। इस तरह, काग्रेस-कमिटी और खिलाफत-कमिटी—दोनो, एक साथ मिलकर, काम करने लगी। दोनो के सामने असहयोग की बात आई। बनारस में एक बैठक हुई। वहाँ यह तय हुआ कि कॉंग्रेस का विशेप अधिवेशन, इसी विषय पर विचार करने के लिए, कलकत्ता में किया जाय। लाला लाजपतराय हाल में ही विदेश से लौटे थे। उस अधिवेशन के वही सभापति चुने गये। १९२० के सितम्बर में अधिवेशन करने का निश्चय हुआ।

असहयोग का जो कार्यक्रम गाधीजी ने वतलाया, उसमें था—सरकारी उपाधियो को न लेना और जो मिली हो उन्हे छोड देना तथा नये विधान के अनुसार होनेवाले सरकारी कौंसिलो के चुनाव का वहिष्कार करना—न कौंसिलों के लिए उम्मीदवार खडे होना और न वोट देना, सरकारी या सरकार से किसी तरह का सम्बन्ध रखनेवाले स्कूलो और कालेजो का वहिष्कार करना—वहाँ न शिक्षा पाना और न अपने बच्चो को शिक्षा पाने के लिए उसमे दाखिल करना, सरकारी अदालतो का वहिष्कार करना—न उनमें मुकदमे दायर करना और न वकालत-मुख्तारी करना। ये चार वहिष्कार असहयोग के मख्य अग थे। साथ ही, विदेशी वस्त्र का वहिष्कार, चरखा तथा खद्दर का प्रचार, राष्ट्रीय शिक्षा, पचायती अदालत कायम करना—इत्यादि उसके रचनात्मक काम थे। देश में इस कार्यक्रम पर बहुत चर्चा होने लगी।

गाँधीजी ने 'यग इडिया' का सम्पादन अपने हाथ में लिया था। इसलिए उनके विचार देश को प्रति सप्ताह मिल जाया करते थे। मै दूर से ही इन सब चीजो को देखता और सुनता रहा। महात्माजी से भी मेरी मुलाकात,

कांग्रेस-कमिटी की किसी विशेष मीटिंग में या ऐसे ही दूसरे किसी मौके पर होती रहती। पर मैंने इस सम्बन्ध में उनसे विशेष कुछ जानने या पूछने की न जरूरत समझी और न उन्होंने कुछ कहने या लिखने की। मैं उनके लेखों आदि से ही सतुष्ट हो जाया करता था। उनके दिल में शायद यह भरोसा था कि जब काम का समय आयेगा तब बिहार के लोग उनके कार्यक्रम को यथासाध्य पूरा करने से बाज नहीं आयेंगे।

उस मौके पर मेरे कम सम्पर्क का एक कारण यह भी था कि १९२० के आरम्भ से ही मैं एक बड़े मुकदमे में काम कर रहा था, जिसमें प० मोती-लालजी नेहरू और देशबन्धु दासजी भी थे। मैंने निश्चय कर लिया था कि असहयोग आरम्भ होने पर भी मुझे उसमें शरीक होना ही होगा और इसके लिए मुझे दो चीजें तत्काल छोड़नी पड़ेंगी—एक तो वकालत और दूसरी असेम्बली की उम्मीदवारी। चुनाव १९२० के नवम्बर में होनेवाला था। मैंने सोचा था कि चम्पारन से मैं खड़ा होऊँगा। वहाँ के किसान हमलोगों को जान गये थे। मैं समझता था कि वहाँ से चुने जाने में आसानी होगी—मैं उस जिले के लोगों का प्रतिनिधित्व भी कर सकूँगा, क्योंकि वहाँ की खासी जानकारी हो गई थी, पर यह तभी करना होगा जब कांग्रेस फैसला कर दे। आशा थी कि बड़ा मुकदमा भी उस समय तक समाप्त हो गया रहेगा, इसलिए मैं अभी अपना काम करता रहा।

अगस्त महीने में, बिहार-प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन का अधिवेशन भागलपुर में होनेवाला था। मुझे ही लोगों ने उसका सभापति चुना था। उसके सामने देश की सबसे बड़ी समस्या पर और असहयोग के कार्यक्रम पर विचार होनेवाला था। लोगों ने, यह जानते हुए भी कि मैं असहयोग का पक्षपाती हूँ, मुझे सभापति चुना। पर मैं यह नहीं जानता था कि सम्मेलन इस कार्यक्रम को मानेगा या नहीं। अभी तक देश के किसी प्रान्त ने इस सम्बन्ध में अपनी राय नहीं दी थी, इसलिए मैं हिचकता था। पर बाबू ब्रजकिशोर आदि के जोर देने पर मैंने सभापतित्व स्वीकार कर लिया। श्री सच्चिदानन्द सिनहा-जैसे बुजर्ग नेता से भी पूछ लिया। उन्होंने बहुत खुले दिल से मेरा सभापति होना पसन्द किया, सलाह भी दी कि तुम्हारा विचार अगर असहयोग के पक्ष में है तो तुम उसको सम्मेलन के सामने साफ-साफ बतला दो और अन्तिम निश्चय सम्मेलन पर छोड़ दो। मैंने ऐसा ही किया। मेरा भाषण, खिलाफत और पंजाब की घटनाओं की चर्चा करके ब्रिटिश गवर्नमेंट से सच्चा न्याय कराने के लिए असहयोग-कार्यक्रम को एक प्रकार से अनिवार्य बनाकर, उसकी पुष्टि करना था। इसके अति-

रिवत कुछ अपने सूबे की तात्कालिक बातें भी उसमें थी। यह सम्मेलन काग्रेस के विशेष अधिवेशन से चन्द दिन पहले ही हुआ। मै जहाँ तक जानता हूँ, यह पहला ही सम्मेलन था जिसमें किसी प्रान्त के प्रतिनिधियो ने असहयोग के समर्थन में बाजाब्ता प्रस्ताव पास किया। जब हमलोग प्रस्ताव के रूप पर विचार करने लगे तब बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद ने पजाब की घटनाओ और खिलाफत-सम्बन्धी शिकायत के अलावा असहयोग के कारणो में स्वराज्य प्राप्ति को भी जुडवा दिया। यह उस समय, विशेषकर हमको, खटका। अभी तक हमने यह समझ रखा था कि यह असहयोग थोडे दिनो के लिए ही होगा, जैसे चम्पारन का काम पूरा करके हम फिर अपने अपने धधे में लग गये थे वैसे ही इसको भी पूरा करके पजाब और खिलाफत के सम्बन्ध में इन्साफ करा लेंगे तथा फिर अपने-अपने धन्धो में लग जायँगे। हम यह समझते थे कि स्वराज्य-प्राप्ति बहुत कठिन है, उसके लिए एक बार असहयोग शुरू कर देने पर शायद सारी जिन्दगी असहयोग करते ही बितानी पडे। इसके लिए सम्मेलन के पहले तक मैंने नही सोचा था और न तैयार ही था। पर सम्मेलन ने जब यह प्रस्ताव मजूर कर लिया तब प्रस्ताव की पूर्ति मे चाहे जितना समय लगे, असहयोग करते रहने का निश्चय करना ही पडा।

बहुत दिनो के बाद जब गाधीजी से इस सम्बन्ध में बातचीत हुई तब उन्होने समझा दिया कि देखने में खिलाफत और पजाब की बातें यद्यपि छोटी मालूम होती है तथापि ब्रिटिश गवर्नमेंट उनको तबतक नही मान सकेगी और न हमारे चाहने के अनुसार न्याय दे सकेगी जबतक वह हमारे हाथो में अधिकार सौंपने के लिए तैयार न होगी। इसलिए स्वराज्य-प्राप्ति की बात लगा देने से हमने अपनी माँग को ब्रिटिश गवर्नमेंट के लिए ज्यादा कठिन नही बना दिया, बल्कि अपने लिए तथा देश के लिए उसे अधिक व्यापक और व्यावहारिक बना दिया। उस समय मै पूज्य ब्रजकिशोर बाबू की दूरदर्शिता और व्यावहारिकता का और भी कायल हो गया।

बिहार-सम्मेलन के बाद ही, और काग्रेस के विशेष अधिवेशन के पहले ही, गुजरात में भी प्रान्तीय सम्मेलन हुआ। उसने भी असहयोग का समर्थन किया। मै कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में शरीक न हो सका, क्योकि ठीक उन्ही दिनो उस बडे मुकदमे की बहस चल रही थी, जिसमें हमारे पक्ष की ओर से पडित मोतीलाल जी नेहरू बहस करनेवाले थे, पर उस समय कलकत्ता के दूसरे बैरिस्टर नृपेन्द्रनाथ सरकार—जो पीछे एडवोकेट जेनरल

और वाइसराय-कौंसिल के सर एन० एन० सरकार के नाम से प्रसिद्ध हुए—बहस कर रहे थे और मैं उनकी मदद कर रहा था।

देशबन्धु दास दूसरे पक्ष की ओर से वाद को बहस करनेवाले थे, पर वहाँ जो कुछ फैसला हुआ उससे मैं पूरा सहमत था, क्योंकि वही फैसला हमने बिहार-सम्मेलन में कर लिया था। अब निश्चय हो गया कि मेरे लिए शायद यही आखिरी मुकदमा होगा। कलकत्ता अधिवेशन के कुछ बाद तक मुकदमे की बहस चलती रही। पर अक्टूबर का आरम्भ होते ही मुकदमे से फुर्सत मिल गई। अब मैं असहयोग के काम में लग गया। कांग्रेस के बाद भी अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक हुई, जिसमें असहयोग-सम्बन्धी प्रचार का निश्चय किया गया। मैं पण्डित मोतीलाल नेहरूजी के साथ ही उस बैठक में गया था। वहाँ जो कार्यक्रम निश्चित हुआ, लौटकर उसीके अनुसार काम करने लगा।

नवाँ अध्याय

१९२० के नवम्बर में, नये विधान के अनुसार, कौंसिलो के लिए चुनाव होनेवाला था। कलकत्ता-काग्रेस के बाद काग्रेसवाले सभी जगहो में चुनाव के लिए उम्मीदवार होने से बाज आये। मैंने तो उसके पहले ही विचार छोड दिया था। इस सम्बन्ध में परचो के जरिये और जहाँ-तहाँ सभा करके खूब प्रचार किया गया। लोगो को वोट देने से भी मना किया गया। बिहार में इसका नतीजा यह हुआ कि उम्मीदवार के बिना कोई जगह खाली न रही, मगर वोट देनेवाले बहुत ही कम शरीक हुए। एक तो इस प्रकार का पहला चुनाव था, इसलिए इसमें शायद कम लोग वोट देते ही। पर काग्रेस के प्रचार से जो वोट देते भी, उनमें से भी बहुतेरे कम शरीक हुए। इसलिए, जब कभी कौंसिल के मेम्बर की बात होती तब यह सचाई के साथ कहा जा सकता था कि ये लोग देश के सच्चे प्रतिनिधि नही है। लिबरल दल के लोगो से काग्रेस का यहाँ पर खुल्लमखुला मतभेद और विरोध हो गया। उनलोगो ने केवल चुनाव में ही हिस्सा न लिया, बल्कि चुनाव के बाद नये विधान के अनुसार जो मन्त्रिमडल बने, उनमें भी आ शरीक हुए। इस तरह वे नये विधान को सफल बनाने में, जहाँतक उनसे हो सकता था, कोशिश करने लगे। यद्यपि काग्रेस के विशेष अधिवेशन में असहयोग का कार्यक्रम स्वीकृत हो चुका था तथापि एक बडा दल था जो उसे स्वीकार नही करता था। वह दल वार्षिक अधिवेशन का, जो दिसम्बर में नागपुर में होनेवाला था, इन्तजार कर रहा था—कि वहाँ पर इसे नामजूर करा दिया जायगा। बात यह थी कि इस कार्यक्रम को लोग पूरी तरह समझते नही थे, इसलिए इसे बेकार मानते थे। यह अक्सर सुनने में आता था कि इससे ब्रिटिश गवर्नमेंट पर कोई असर नही पड सकता। साथ ही, यह भी कहा जाता था कि लोग इसे मानेंगे नही, अगर मानेंगे

भी तो कई बातो से उनका ही नुकसान होगा, ब्रिटिश गवर्नमेंट का नही। इसी बात के आधार पर बतलाया जाता था कि सारा कार्यक्रम निष्फल होगा।

सरकारी खिताबो को छोड़ने के सम्बन्ध में कहा जाता था कि एक तो ये उपाधियाँ जिन लोगो को दी गई है, वे ऐसे वर्ग के हैं जो काग्रेस से प्रायः हमेशा ही अलग रहे हैं। अत, वे इस बात को नही मागेंगे। दूसरे, यदि इक्के-दुक्के कुछ लोगो ने अपने खिताब वापस भी कर दिये तो इससे ब्रिटिश गवर्नमेंट का कुछ बनता-बिगडता नही। बात यह थी कि सारे प्रोग्राम की तह में यह निहित था कि या तो उससे ब्रिटिश गवर्नमेंट का रोब और दबदबा इस देश में कम हो जाय या जो लोग छोटी-छोटी चीजो के लिए गवर्नमेंट पर भरोसा करते है वे उसे छोडकर आत्मनिर्भरता सीखें—लोगो के दिल में जो धाक जमी हुई है, वह किसी तरह कम हो जाय, वे निर्भीकता-पूर्वक स्वतन्त्र विचार करना सीखें—गवर्नमेंट की तरफ से मुँह मोडकर जनता की ओर मुँह फेरें। यह बात सच है कि खिताब थोडे ही लोगो ने छोडे, पर जनता में जो उनके विरुद्ध प्रचार हुआ उसका फल यह हुआ कि उनके लिए लोगो के दिल में जो आदर था, वह घट गया। इसका अर्थ यह नही है कि किसी के दिल में खिताबो के लिए आदर नही रह गया या इनको पाने का अब कोई प्रयत्न नही करता। कुछ लोग तो ऐसे थे ही जो इनका आदर करते रहे और इनके पाने की अभिलाषा से ब्रिटिश गवर्नमेंट को खुश करने के प्रयत्न में लगे रहे। पर जनसाधारण में उनके प्रति विरोध नहीं तो उपेक्षा का भाव अवश्य फैल गया। कहीं-कहीं तो उपाधि-धारियो के प्रति लोगो ने दुर्व्यवहार भी किया। पर यह दुर्व्यवहार कार्यक्रम का अग नही था। कार्यक्रम तो इतना ही था कि ब्रिटिश गवर्नमेंट की दी हुई प्रतिष्ठा को लोग प्रतिष्ठा न समझें। इस विषय में पूरी सफलता मिली। मेरा विचार है कि असहयोग-कार्यक्रम के दूसरे अगों से इसी में अधिक सफलता मिली; क्योंकि औरो के सम्बन्ध में पीछे जाकर कुछ मतभेद हुआ भी, पर इस सम्बन्ध में कभी कोई मतभेद नही हुआ। उपाधियो की ओर उपेक्षा-भाव दिन-दिन बढता ही गया।

कौंसिलों के सम्बन्ध में बहुत मतभेद था, क्योंकि राजनीति से सम्बन्ध रखनेवाले लोग समझते थे कि कौंसिलो में शरीक होकर अगर मन्त्रिपद लेकर हम जनता की भलाई न कर सकेंगे, तो कम-से कम कौंसिलो में रहकर ब्रिटिश गवर्नमेंट की कटु चाल से देश को कुछ हद तक बचा सकेंगे। लिबरल दल के लोग—और बहुतेरे दूसरे लोग जो किसी दल में नहीं थे या किसी नये दल में शरीक हो गये थे—पहले विचार के थे।

सभाओ में भेजे जायँगे, और जिनपर देश के शासन का भार होगा, उनमें भी कोई विशेषता नही होनी चाहिए। कोई आदमी चाहे कितना भी अयोग्य क्यो न हो, वह आयोग्यतर चाहे अशिक्षा के कारण हो अथवा चरित्र-हीनता के कारण, चुने जाने का और जनता के प्रतिनिधित्व का हक रखता है ! हम चाहते हैं कि देश की उन्नति हो, सर्वोदय हो, पर क्या इसके लिए विद्या और चरित्र, दोनो की जरूरत नही है ? अगर है तो उसके लिए हम विधान में कोई विशेष स्थान नही दे रहे हैं, क्योकि पश्चिमी विधानो में इसका कोई उदाहरण हमको नही मिलता। यदि हम कोई चीज ऐसी निकालते, जिसमें विद्या और चरित्र—और विद्या से भी अधिक चरित्र—को देश के शासन में विशेष स्थान मिलता, तो यह हमारी एक देन होती। पर अभी तक हम कुछ नही सोच पाये है, क्योकि हमारे दिमाग आधुनिक विचारो से—जो पश्चिमी विचारो के प्रतिविम्ब मात्र है—इतने प्रभावित और दबे हुए है कि उनके बाहरी हमारे आँखें देख नही सकती, हमारे विचार जा नही सकते। इसमें हमारा दोष नही है, क्योकि यह हमारी शिक्षा का फल है।

एक दूसरी छोटी-सी बात ले लीजिए। आज जहाँ-कही जाइए, लोग प्रगति की बातें किया करते है। कोई लेखक और कवि है, तो उसको प्रगतिशील अथवा प्रतिगामी का विशेषण दे दिया जाता है। उसी तरह, कोई राजनीतिक क्षेत्र में काम करनेवाला है तो उसे प्रगतिशील अथवा प्रतिगामी अथवा प्रतिक्रियावादी कह दिया जाता है। और, यदि थोडा विचार करके देखा जाय तो, यूरोपीय विचारों से जो लोग सहमत नही है, वे प्रगतिशील नही, प्रतिगामी है—इत्यादि-इत्यादि। अर्थात्—प्रगति का मापदड हमने वही मान लिया है जो यूरोप ने माना है। जितने भेद-विभेद यूरोपीय विचारो में पैदा हुए है उन सबका प्रभाव हमारे विचारो पर भी पड गया है। इसलिए, भारतीय प्राचीन विचार तो सब-के-सब प्रतिगामी है ही। पर जो यूरोपीय मापदड से प्रगतिशील भी है उनमें भी विभेद है—कोई प्रगतिशील और कोई प्रतिगामी। क्या प्रगति का दूसरा कोई मापदड नही हो सकता ? यदि हो सकता है, तो क्या हम उसे मानने के लिए तैयार है ? नही। हमारी शिक्षा ही हमको अयोग्य बना देती है, हम दूसरा मापदड काम में नही ला सकते।

दसवाँ अध्याय

नागपुर-कांग्रेस के पहले महात्माजी ने अलीबन्धुओं के साथ दौरा शुरू किया। कौंसिल का काम हो चुका था। अब विशेषकर कालेजो से विद्यार्थियो के निकलने का ही काम चल रहा था। वे जहाँ जाते थे, असहयोग की सभी बातें समझाते थे। इसी यात्रा में वे दृश्य देखे जाने लगे जो आगे चलकर गांधीजी के सभी सफरो में देखने में आये। बहुत बडी-बडी सभाएँ, रास्ते-रास्ते में लोगो का जमघट, एक-एक दिन में कई सभाएँ! दिसम्बर में वे बिहार भी पहुँचे। कई जिलों में गये। मैं उनके साथ फिरा। इसी समय उन्होंने राष्ट्रीय विद्यालय खोलने का आदेश दिया। पटना में राष्ट्रीय विद्यालय खोला गया। बिहार भर में बडी हलचल थी। एक दिन सरकारी पटना-कालेज के बहुत-से विद्यार्थी निकलकर हमारे पास चले आये। उनको लेकर महाविद्यालय खोल दिया गया। इससे चन्द दिन पूर्व ही इंजीनियरिङ्ग स्कूल के छात्र स्कूल छोड जुलूस बनाकर मजहरुलहक साहब के घर पर पहुँच गये थे। जहाँ आज-कल सदाकत-आश्रम है, वहाँ उन दिनो आस-पास दूर तक कोई बस्ती नहीं थी। सडक के किनारे-किनारे आम के बगीचे ही थे, जो बहुत दूर तक फैले हुए थे। रात में वहाँ आना-जाना खतरे से खाली नही समझा जाता था। उन्ही में से एक बगीचे में एक छोटा-सा मकान था जिसके मालिक को मजहरुलहक साहब जानते थे। उसकी अनुमति लेकर वे लडको के साथ वही जा रहने लगे। इस तरह सदाकत-आश्रम की स्थापना हुई। हमलोगो ने चम्पारन में कुछ रुपये, एक विद्यालय खोलने के लिए, जमा किये थे। मैं ऊपर बता चुका हूँ कि गांधीजी ने हमारे कालेज खोलने के प्रस्ताव को नापसन्द कर दिया था, इसलिए वह काम बन्द हो गया था; पर रुपये अभी पडे हुए थे। उन्हीं रुपयो से, और कुछ ऐसे युवको तथा उत्साही लोगो को साथ लेकर, जो

खुल गईं । जहाँ-तहाँ विद्यापीठो की स्थापना हो गई । पचायतें आपस के झगडे फैसल करने लग गईं । जहाँ-तहाँ शराबबन्दी का प्रचार भी होने लगा । अद्भुत उत्साह था। स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थी वडी सख्या में निकल आये । कुछ तो राष्ट्रीय शालाओ में शिक्षा पाने लगे । वहुत-से लोग प्रचार के काम में भी लग गये । इसी प्रकार बहुतेरे कानून-पेशा लोग भी—जिनमें वकील, मुख्तार, वैरिस्टर इत्यादि सभी दर्जे के लोग थे—इसी काम में जुट गये । बिहार में, जहाँ पहले शायद गिनती के लिए दो-चार आदमी भी अपना सारा समय देकर देश का काम नही कर रहे थे, अचानक हजारो आदमी ऐसे निकल आये जो अपना सारा समय इसी काम में लगाने लगे । नतीजा यह हुआ कि सारे सूबे के कोने-कोने में काम करनेवाले पहुँच गये । वे लोग असहयोग के सन्देश के साथ-साथ स्वराज्य, खादी और शराबवन्दी का सन्देश भी गाँव-गाँव तक पहुँचाने लगे । मै समझता हूँ कि उस साल शायद ही कोई गाँव ऐसा वचा होगा जहाँ काग्रेसी कार्यकर्त्ता न पहुँचा हो—जहाँ गाधीजी का नाम और काग्रेस का सन्देश न पहुँचा हो ।

मै सारे सूबे का दौरा करने लगा । पहले चन्द जिलो से ही सम्बन्ध था । पर इस वर्ष (१९२० में) सारे सूबे के प्राय सभी सबडिवीजनो में मै गया । अनेकानेक थानो में पहुँचा । बहुतेरे गाँव तो सफर में आ ही गये । इसी तरह सारे सूबे से परिचय हो गया । जहाँ-कही मैं जाता, वडी-बडी सभाएँ होती । मै पहले वहुत भाषण करने का आदी न था, पर इस वर्ष में इतने भाषण करने पडे कि अव जबान खुल गई—घटो भाषण करने की आदत पड गई। उन दिनो दस-बीस हजार आदमी की सभा अक्सर हो जाया करती । अभी उस समय तक लाउड-स्पीकर प्रचलित नही हुआ था । इसलिए वडी-वडी सभाओं में अपनी आवाज पर ही भरोसा करना पडता । मैं पाँच हजार तक की सभा में, विना परिश्रम महसूस किये ही, वोल सकता था । दस हजार से अधिक होने पर परिश्रम पडता । वीस के ऊपर जाने पर मुश्किल हो जाती, आठ-दस मिनट से ज्यादा नही वोल सकता । महात्माजी अली-भाइयो के साथ सारे देश का चक्कर लगा रहे थे । बिहार से जाने के वाद वे और सूबो में भी सफर करते रहे । कुछ दिनो के वाद वे उडीसा पहुँचे । वहाँ मैं भी उनके साथ हो लिया । वहाँ से ही वे अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी की वैठक में शरीक होने के लिए विजयवाड़ा गये । मै भी साथ-ही-साथ गया । रात में लोग चलती रेलगाडी के भी दर्शन किया करते ! जिन स्टेशनो पर गाडी नही ठहरती थी, वहाँ भी हजारो की तादाद में लोग दर्शनो को जुट जाते, चलती गाड़ी को ही देखकर सतोप कर लेते । दिन को

रेलवे-लाइन की वगल में लोग खडे रहते,-चलती गाड़ी को देखकर ही सब्र करते। मुझे यह सब देखकर तुलसीदासजी का वह वर्णन याद आ जाता, जो उन्होने श्रीरामचन्द्रजी की वन-यात्रा का किया है। विजयवाडा में निश्चय किया गया कि तिलक-स्वराज्य-फण्ड के लिए एक करोड़ रुपये तीस जून तक जमा कर लिये जायँ, कांग्रेस के मेम्बर और चरखे भी कम-से-कम दस-दस लाख कर लिये जायँ।

अपने सूबे से बाहर जाने का यह मेरे लिए पहला ही अवसर था। महात्माजी बडी सार्वजनिक सभाओ के अलावा स्थानीय कार्यकर्त्ताओ से जिस प्रकार मिलते और बातें करते, वह नजदीक से इस आन्दोलन में फिर से देखने को मिला। चम्पारन में उनकी कार्यशक्ति और परिश्रम को देखकर हम चकित रहते थे। पर वहाँ का सारा काम बिना किसी सार्वजनिक सभा के ही हुआ था। अब तो कार्यकर्त्ताओ से बातें भी होती तो वह भी एक सार्वजनिक सभा का ही रूप धारण कर लेती। इसमें और उसमें बहुत अन्तर था, पर महात्माजी की कार्य-पद्धति एक थी—उसका रूप मात्र बदला था। वह ब्रिटिश गवर्नमेंट की शिकायत जोरदार शब्दो में किया करते थे। कहीं-कहीं उन्होने उसे शैतानी सल्तनत भी कहा था। गवर्नमेंट की ओर से जहाँ-तहाँ बाधा भी पड़ती। बहुतेरे लोग गिरफ्तार भी हुए—खासकर शराबबन्दी के लिए। पर दो बातो की बडी ताकीद थी—एक तो यह कि अहिंसा पर खूब जोर दिया जाय ताकि कहीं बलवा-फसाद न होने पावे; दूसरे यह कि अभी अपनी तरफ से कोई कानून तोडने का काम न किया जाय। लोग अपने उत्साह में इस बात पर बहुत जोर दिया करते थे कि अब कानून तोडने का हुक्म दिया जाय। पर महात्माजी अभी रोकते जा रहे थे। विजयवाडा की सभा के बाद जो कार्यक्रम वहाँ स्थिर किया गया, उसको पूरा करने में हमलोग लग गये—यह सोचने लगे कि जब यह काम पूरा हो जायगा तब सत्याग्रह शुरू किया जायगा। महात्माजी अभी सत्याग्रह नही करना चाहते थे; क्योंकि वे समझते थे कि लोगो में यद्यपि उत्साह बहुत है, तथापि लोगो ने अभी पूरा सयम नही सीखा है। उनको शायद इसका भी सन्देह था कि सत्याग्रह के कारण जो दमन होगा उसको अहिंसात्मक रहकर लोग बरदाश्त कर सकेंगे या नहीं। इसीलिए अभी वे रोक-थाम लगाते थे। दूसरी ओर उन्होने यह भी कह दिया था कि हमारे दिये हुए कार्यक्रम को अगर लोग पूरा कर दें तो एक साल के अन्दर ही हम स्वराज्य ले सकते हैं। लोगों के दिल पर इसका भी बडा असर पडा था। शर्त्त को तो लोग भूल गये, पर ३१ दिसम्बर (१९२१) को अपने दिल में लोगो ने स्वराज्य-स्थापना के लिए नियत कर दिया।

मैंने 'देश' के नाम से एक साप्ताहिक कुछ दिन पहले पटना से निकाला था। उसके सम्पादक की जगह पर मेरा नाम छपता था—यद्यपि जब-तब लेख लिख देने के अलावा मैं और कुछ नही करता था। उसमें किसी सवाददाता का दिया हुआ एक पत्र या समाचार छपा, जिसमें किसी की शिकायत थी। इस कारण उसने मुझपर फौजदारी का मुकदमा चला दिया। मुझे आरा के मजिस्ट्रेट की कचहरी में हाजिर होना पडा। दरयाफ्त करने पर मुझे मालूम हुआ कि वह शिकायत गलत और निराधार थी। इसलिए गलती मानकर माफी माँग लेने के सिवा मेरे लिए दूसरा चारा न था, पर यह प्रश्न भी सामने आया कि इस वक्त मुझ-जैसे आदमी के माफी माँगने का सीधा अर्थ यह लगाया जायगा कि जेल से बचने के लिए मैंने ऐसा किया है, जिसका बहुत बुरा असर दूसरे कार्यकर्त्ताओ पर पडेगा। मै इस अजमजस और सकट में पड गया कि मै अगर भूल नही स्वीकार करता हूँ तो यह असत्य आचरण होने के अलावा उस आदमी के साथ बडा अन्याय भी होगा, जिसकी गलत शिकायत छप गई थी। मैंने निश्चय किया कि चाहे जो भी अर्थ इसका लगाया जाय, मुझे सत्य बात ही कहनी चाहिए। इस निश्चय पर पहुँचने में मजहरुलहक साहब और बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद ने मेरी सहायता की और मेरे दिल को मजबूत बनाया। मैं गाधीजी से सुना करता था कि सत्य से अगर देखने में क्षणिक हानि भी मालूम हो तो उससे घबराना नहीं चाहिए—इसका विश्वास रखना चाहिए कि अन्त में इससे लाभ ही होगा, नुकसान नही। मैंने माफी माँग ली। पर, साथ ही यह भी कह दिया कि मैं सत्य के आधार पर माफी माँगना चाहता हूँ, सजा से बचने के लिए नही। इसके बाद मुकदमा उठा लिया गया। बस, वही यह बात खतम हो गई। मैंने देखा कि कार्यकर्त्ताओ पर इसका कोई बुरा असर नही पडा। मुझे जो भय हुआ था, वह निराधार था।

विजयवाडा का कार्यक्रम, ३० जून तक, आंशिक रूप में पूरा हुआ। एक करोड से ज्यादा रुपये जमा हो गये। काग्रेस-मेम्बरो की सख्या भी काफी हो गई। पर चरखे का काम अभी पूरा नही हुआ, पूरा हो भी नही सकता था, क्योकि इस विषय के जानकार बहुत थोडे लोग थे। इसका कार्यक्रम भी अभी पूरी तरह स्पष्ट नही था। जहाँ-तहाँ उत्साह में लोगो ने चरखे बनवाये, जो अन्त में किसी काम के लायक नही निकले। सूत तैयार कराया गया, पर उसे बुनवाने इत्यादि का समुचित प्रबन्ध न होने से और स्वय सूत भी बुनने लायक न होने के कारण बहुत बरबाद गया। महात्माजी ने इस पर विशेष जोर दिया था कि राष्ट्रीय स्कूलो में चरखे को मुख्य स्थान दिया

जाय । उन्होने तो यहाँ तक कहा था कि विद्यापीठो को भी, चरखे को ही केन्द्र मानकर, अपने सारे पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए । चरखे सभी राष्ट्रीय स्कूलो में जारी तो किये गये, पर वहाँ भी उनके शास्त्र के ज्ञान के अभाव में बहुत प्रगति न हो सकी; यह कार्यक्रम निर्जीव-सा ही रहा । विद्यापीठो के चलानेवाले अधिक करके शिक्षित-वर्ग के ऐसे ही लोग थे, जो पुस्तक-ज्ञान को अधिक महत्त्व देते थे । चरखे के प्रति न तो उनका विश्वास था और न उन्हें उसका ज्ञान । जहाँ कोई ऐसा शिक्षक मिल गया, जिसकी इसमें कोई विशेष दिलचस्पी थी, वहाँ कार्यक्रम खूब चला । पर अधिकाश जगहो में यह कार्यक्रम रहा तो सही, पर निर्जीव होकर ही । जब रुपये हाथ में आ गये, तब उनमें से एक अच्छी रकम लगाकर जहाँ-तहाँ खादी तैयार कराने का काम आरम्भ किया गया । ऐसे स्थानो में, जहाँ के लोग चरखे को एकबारगी भूल नही गये थे, इसमें सफलता भी मिली और खादी बनने लगी । बिहार में यह काम अच्छा चला । मुझे याद है कि एक महीन धोती, जो मुझे चरखे के सूत की बनी बताई गई थी, महात्माजी के सामने मैंने पेश की । मौलाना मुहम्मद अली उसे देखकर बहुत खुश हुए । महात्माजी भी प्रसन्न थे । पर अब, जब मैं सब बातो पर विचार करता और यह याद करता हूँ कि उसके कई वर्षों के बाद उस तरह का महीन सूत, थोडी मिकदार में, बिहार में तैयार होता रहा, तो मुझे आज सन्देह होता है कि हम, यह बतलाकर, उस समय शायद ठगे गये थे कि खादी का काम अच्छा चलने लगा ।

उस समय हिन्दू और मुसलमान, दोनो ही बडे उत्साह के साथ, असहयोग में शरीक हुए । दोनो में, सभी कामो में, एक प्रकार की होड-सी लग जाती । काग्रेस के अलावा सभी जगहों में खिलाफत-कमिटियाँ भी कायम हो गई । बहुत उत्साह के साथ हिन्दुओ ने खिलाफत-कमिटियो को सगठित करने और पैसे जमा करने में मदद दी । मुसलमान तो काग्रेस में शरीक होते और मदद करते ही । ऐसा मालूम पडता था कि यह एकता कभी टूटने को नही । बहुतेरे ऐसा विश्वास भी करने लगे थे । बकरीद का दिन एक ऐसा होता है जब, विशेषकर उत्तर भारत में, गाय की कुर्बानी के कारण, हिन्दुओ और मुसलमानो में झगडे हो जाया करते । उस वर्ष जब बकरीद का दिन नजदीक आया तब सबको यह चिन्ता ई कि इस एकता में कोई विघ्न न पडने पावे । गाधीजी, मौलाना मुहम्मद अली के साथ, बिहार में फिर दौरा करने आये । कई दिनो तक कई जिलो में फिरते रहे । सभी जगहों पर उनके और मौलाना के भाषण हुए । उन्होने गाय की रक्षा मुसलमानो पर छोड दी । मुसलमानो की तरफ से एलान निकाले गये कि जहाँ तक हो सके,

गाय की कुर्बानी न होनी चाहिए। इसका नतीजा यह हुआ कि उस साल बकरीद में इतनी कम गायो की कुर्बानी की गई, जितनी कम शायद पहले कभी नही हुई थी। इससे एकता पर और भी दृढता की मुहर लगी। पर ऐसा पीछे जाकर मालूम हुआ कि यह एकता स्थायी नही थी। महात्माजी की उक्त यात्रा के समाप्त होने के पहले ही इसके चिह्न दीखने लगे थे।

बिहार से महात्माजी कलकत्ता गये। वहाँ से मद्रास की तरफ गये। रास्ते में ही मलाबार के मोपलो में हलचल की खबर मिली। मौलाना मुहम्मद अली गिरफ्तार कर लिये गये। हिन्दू-मुसलिम मतभेद और अविश्वास के चिह्न इस मोपला-हलचल में देखने में आये। मोपला लोग सीधे-सादे, पर जोशीले, होते हैं। उनका विद्रोह, खिलाफत के कारण, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध था। उसमें धार्मिक भावना ही मुख्य कारण थी। धार्मिक भावना जब एक बार उमड जाती है, तब उसके अनेकानेक रूप हो जाते हैं। इस बार मलाबार में धार्मिक भावना ने एक अजीब रग दिखलाया। मोपलो का झगडा तो ब्रिटिश सरकार के साथ था, पर कुछ ऐसे हिन्दुओ के साथ, जिन पर उनको सन्देह था कि ये ब्रिटिश गवर्नमेंट की मदद कर रहे हैं, उन्होंने सख्ती और ज्यादती की। इसका असर दूसरे हिन्दुओ पर पडा। मोपला लोगो का झगडा एक प्रकार से हिन्दुओं के साथ शुरू हो गया। इसका नतीजा बहुत बुरा हुआ, क्योकि ब्रिटिश गवर्नमेंट से जो लडाई थी, उसमें वे हिन्दू को भी एक पार्टी समझने लगे। नतीजा यह हुआ कि अब इसका असर हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सो पर भी कुछ-न-कुछ पडा। यद्यपि उस समय यह बात इतनी स्पष्ट नही थी तथापि खबर जोरो से फैली कि मोपलो ने बहुतेरे हिन्दुओ को जबरदस्ती मुसलमान बना लिया है। इससे सारे देश में बहुत क्षोभ पैदा हो गया। पर अभी गाधीजी बाहर थे। तब भी काग्रेस तथा खिलाफत-कमिटी का इतना जोर था कि यह विश्वास तथा दुर्भावना टिक न सकी, दूर हो गई।

अली-बन्धुओ और कुछ दूसरे लोगो पर, जिनमें श्रीशकराचार्य भी शामिल थे, कराची में खिलाफत-कमिटी के जलसे में भाग लेने तथा भाषण करने के आरोप लगाकर मुकदमे चलाये गये। आरोप यह था कि उनलोगो ने वहाँ एक ऐसे फतवे का प्रचार किया जिसपर गवर्नमेंट ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। कराची के मुकदमे के कारण सारे देश में बडी हलचल रही। श्रीशकराचार्यजी के भी एक मुजरिम होने के कारण हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य को बडी पुष्टि मिली। पर जो फूट का बीज पड गया, वह समय पाकर पीछे अकुरित हुआ।

उधर देश में बहुत जगहो से इस बात की माँग होने लगी कि अविलम्ब सत्याग्रह आरम्भ करना चाहिए। शाहजादे (प्रिंस ऑफ वेल्स) की हिन्दुस्तान-

यात्रा के भी दिन निकट आ गये । अहमदाबाद में होनेवाली कांग्रेस का समय भी आ पहुँचा । महात्माजी अभी तक सत्याग्रह छेड़ने के पक्ष में नहीं थे । उन्होंने इसके लिए कुछ शर्तें लगाईं । यह भी सूचना दी कि जबतक ये कड़ी शर्तें पूरी नहीं होती, वे सत्याग्रह के लिए इजाजत नहीं देते । उनमें एक शर्त्त यह भी थी कि उसी इलाके में सत्याग्रह किया जा सकता है, जहाँ खादी का काफी प्रचार हो चुका हो—रचनात्मक काम के अंग यथासाध्य पूरे किये गये हो। अब जगह-जगह इन शर्तों को पूरा करने की तैयारियाँ होने लगी । विहार में छपरा-जिले के बसन्तपुर-थाने के लोगो ने यह दावा पेश किया कि वे शर्तों को पूरा कर चुके हैं, अत , उनको इजाजत मिलनी चाहिए ।

शाहजादा बम्बई में उतरे । वहाँ पर बलवा हो गया । उसमें पारसियो के साथ, जिनके सम्बन्ध में यह सन्देह किया जाता था कि ये शाहजादे के स्वागत में शरीक हुए थे, ज्यादतियाँ की गईं । ऐसा मालूम हुआ कि यह फसाद बहुत दूर तक फैलेगा । पर महात्माजी इस कारण चिन्तित थे । उन्होंने उपवास किया । फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में बलवा-फसाद बन्द हो गया । यह एक नया अनुभव देश को मिला । वर्किङ्ग-कमिटी की एक बैठक बम्बई में हुई । उसमें मैं भी शरीक था । उसमें एक छोटी-सी घटना हुई, जिससे हमलोगो को महात्माजी की महत्ता और सहिष्णुता का एक ज्वलंत उदाहरण मिल गया । बम्बई में, बलवे के कारण जो लोग पहले से ही शाहजादे के बहिष्कार के विरोधी थे, वे और भी कहने लग गये कि इसका नतीजा यही हो सकता था, जो हुआ । इस सारे कार्यक्रम के विरोध में वे जोरो से बोलने और लिखने लगे। ऐसे लोगो में श्रीमती बेसेण्ट भी थी । वे शुरू से ही इस कार्यक्रम का विरोध करती आ रही थी । इस बलवे के बाद उन्होंने एक कड़ा लेख अपने साप्ताहिक परचे में लिखा । देशबन्धु दास का विचार हमेशा से श्रीमती बेसेण्ट के विरोध में था । वे उस लेख को साथ लाये । महात्माजी से वर्किङ्ग-कमिटी में उन्होंने कहा, मैं आशा करता हूँ कि आप 'यंग इंडिया' के अगले अंक में इसका एक करारा उत्तर देंगे और हमलोग उसे देख सकेंगे । महात्माजी ने मुस्कुराकर कहा कि आप ऐसी चीज 'यंग इंडिया' में पाने की आशा न रखें । यह नीति उनकी बराबर बनी रही । उन्होंने अपने किसी प्रतिद्वन्द्वी को कभी कोई ऐसी बात न कही और न लिखी जिसमें कटुता हो या विरोधी लेखक के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना की गन्ध तक भी हो—यद्यपि देशबंधु ने उनकी दलीलो को पूरी तरह अपने तरीके से काटा ।

नवम्बर का महीना पहुँच चुका था। अब लोगो में सत्याग्रह के लिए उत्सुकता तथा घबराहट बहुत बढती जा रही थी। सत्याग्रह के लिए कोई विशेष कार्यक्रम देने की अथवा उसको बाजाब्ता आरम्भ करने की जरूरत नही पडी, क्योकि जहाँ-जहाँ शाहजादे को जाना था, वहाँ-वहाँ वहिष्कार-सम्वन्धी प्रदर्शनो के कारण गवर्नमेंट ने गिरफ्तारियाँ शुरू कर दी थी। अब किसी स्थान पर शाहजादे के पहुँचने का इन्तजार गवर्नमेंट नही करती, वह उसके पहले ही प्रदर्शन रोकने के लिए गिरफ्तारियाँ करती, पर तो भी प्रद-र्शन रुकते नही, जोरो से होते।

अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी ने देश की सभी सभाओ में स्वयसेवक-दल का निर्माण करने की आज्ञा दी थी। सभी जगहो में स्वयसेवक भर्ती किये जा रहे थे। गवर्नमेंट ने इस दल को गैरकानूनी करार दे दिया। स्वय-सेवक वडी सख्या में गिरफ्तार होने लगे। जो लोग स्वयसेवक कभी बनते नही थे, वे भी स्वयसेवक बनकर गिरफ्तार होने में अपना गौरव मानने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि आप-से-सत्याग्रह छिड गया और वह भी गवर्नमेंट के कारण। लोगों में इतना जोश फैला कि गवर्नमेंट भी घबरा गई। अत, किसी प्रकार सुलह हो जाय, वह अब इस प्रयत्न में लग गई। बडे-बडे नेता भी—जैसे, देशबन्धु दास, प० मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, मौलाना अबुलकलाम आजाद आदि—गिरफ्तार हो चुके थे। तो भी जनता के जोश में कोई कमी नही हुई। उस समय के वायसराय लार्ड रीडिंग इस चिन्ता में थे कि शाहजादे के कलकत्ता पहुँचने पर किसी तरह कोई गडबड न होने पावे। इसीलिए उन्होने सुलह की बात-चीत चलाई। देशबन्धु दास कलकत्ता की ही जेल में थे, इसके लिए उनसे बातचीत की गई। वे कुछ हद तक सुलह के लिए तैयार भी हुए। किन्तु जिन शर्त्तों पर वे सुलह करना चाहते थे, वे महात्माजी को ना-काफी मालूम हुई। उन्होने शर्त्तों को नामजूर कर दिया। आखिरी बातचीत अभी पूरी तरह हो भी नही पाई, जब शाह-जादा कलकत्ता पहुँच गये। इसका नतीजा यह हुआ कि कलकत्ता में भी खूब जबरदस्त प्रदर्शन हुआ। जहाँ-जहाँ शाहजादा गये, प्रदर्शन होता ही गया। आन्दोलन को दवाने के लिए पहले से जो कार्यवाही हो रही थी, उसमें लार्ड रीडिंग ने और भी कडाई की। देशवन्धु दास, महात्माजी की इस कार्यवाही से, वहुत असन्तुष्ट हुए। जेल से निकलने के वाद तो उन्होने इसकी कडी आलोचना भी की।

इस सम्वन्ध में एक घटना विहार में हुई, जो उल्लेखनीय है। वहाँ भी, और जगहो की तरह, खूब जोरो से गिरफ्तारियाँ हो रही थी। ऐसा मालूम

होता था कि हम सब-के-सब गिरफ्तार कर लिये जायँगे। पर मैं बच गया, मेरी गिरफ्तारी नही हुई। मैंने सुना कि गलतफहमी की वजह से मैं गिरफ्तार नही किया गया। सिर्फ मै ही नही बचा, सारे बिहार में गिरफ्तारियाँ बन्द हो गईं। वह गलतफहमी इस प्रकार हुई। जिस समय देशबन्धु दास के साथ लार्ड रीडिंग समझौते की बातचीत चला रहे थे, उन्होने अपनी एक्जिक्यूटिव-कौंसिल का अधिवेशन कलकत्ता में किया। उसका मुख्य उद्देश्य था उन शर्त्तों को बाजाब्ता मजूर कर लेना जिनको देशबन्धु दास ने मजूर कर लिया था। उस वक्त ऐसा मालूम होता था कि अब समझौता हो ही जायगा। सर तेजबहादुर सप्रू उस समय वायसराय की कौंसिल के एक सदस्य थे। इस सभा में शरीक होने के लिए वे भी कलकत्ता जा रहे थे। वे पटना होकर गुजरे। वहाँ पर उनसे बिहार के गवर्नर की कुछ बातचीत हुई, जिसकी कुछ ऐसी छाप गवर्नर पर पड गई कि उसने समझ लिया कि अब सुलह हो गई। इसलिए उसने गिरफ्तारियाँ बन्द कर दी। सुलह तो अन्त में हुई नही, पर मै और बहुतेरे लोग—जिनकी गिरफ्तारी होने जा रही थी—गिरफ्तार नही किये गये।

इसके थोडे ही दिनो के बाद अहमदाबाद में काग्रेस का अधिवेशन बडे ही समारोह के साथ हुआ। देशबन्धु दास सभापति निर्वाचित हुए थे। पर वे तो जेल में थे, इसलिए हकीम अजमल खाँ ने सभापति का आसन ग्रहण किया। काग्रेस के साथ-साथ प्रदर्शनी भी बडे उत्साह के साथ की गई। यह पहला ही अवसर था, जब काग्रेस का अधिवेशन बडे पैमाने पर किया गया हो। अबतक काग्रेस में लोग कुर्सियो और बेंचों पर ही बैठा करते थे। अहमदाबाद में पहले-पहल फर्श पर काग्रेस का अधिवेशन हुआ। एक बडे मार्के का प्रस्ताव, जिस पर बडी सरगर्मी के साथ बहस हुई, मौलाना हसरत मोहानी का था, जिसमें उन्होने ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होकर भारत के स्वतन्त्र होने को काग्रेस का ध्येय बनाये जाने की बात कही थी। महात्माजी ने इस प्रस्ताव का जोरों से विरोध किया था। उनके विरोध के कारण वह नामजूर हो गया था।

एक छोटी-सी घटना विषय-निर्वाचनी समिति में हुई, वह भी उल्लेखनीय है। उससे यह मालूम होता है कि महात्माजी उनलोगो के साथ किस तरह बर्त्ताव करते थे, जो सत्याग्रह का मर्म समझे बिना ही उस पर चलना चाहते और दूसरो को मजबूर करना चाहते थे। एक सज्जन गो-रक्षा के बडे प्रचारक थे। विषय-निर्वाचनी के बीच में आकर वे बैठ गये। उन्होने घोषणा कर दी कि जबतक उनके लिए गोरक्षा-सम्बन्धी सतोषप्रद कार्यवाही

न की, जायगी तवतक वे विपय-निर्वाचनी की कार्यवाही नही चलने देंगे। यो तो अगर स्वयसेवक चाहते तो उनको धर-पकडकर आसानी से बाहर ले जा सकते थे, कार्यवाही भी वहाँ आसानी से चलाई जा सकती थी, पर महात्माजी को यह तरीका पसद नही था। उन्होने ऐसा नही करने दिया। सब लोगो को इस वात का कुतूहल था कि देखें ! ये जिद्दी आदमी के साथ बिना जोर-जबरदस्ती किय महात्माजी क्या बर्ताव करते हैं—किस तरह काग्रेस के काम में पडी इस बाधा को रोक सकते है। उन्होने, और दूसरे लोगो ने भी, गोरक्षक महाशय को बहुत समझाया कि आप इस तरह काम में विघ्न न डालिए; पर वे कहाँ किसी की सुननेवाले थे। अन्त में, महात्माजी ने हँस करके कहा कि आप सत्याग्रह मुझसे ज्यादा नही जानते है, बस, देखिए कि मै किस तरह आप पर बिना हाथ लगाये अपना काम कर लेता हूँ। इतना कह उन्होने वालटियरो से कहा कि उनके चारो तरफ तुम लोग खडे हो जाओ, फिर दूसरो से कहा कि हमलोग यहाँ से हटकर कही दूर जा अपना काम करें। नतीजा यह हुआ कि वे बीच में ही घिरे पडे रह गये। उन पर किसी ने हाथ भी न लगाया। उधर कमिटी ने अपना काम अलग हटकर जारी रखा।

ग्यारहवाँ अध्याय

अहमदाबाद-कांग्रेस ने महात्माजी को सत्याग्रह-सम्बन्धी सब अधिकार दे दिया और ऐसा समझ लिया कि जल्द सत्याग्रह कही-न-कही शुरू किया जायगा। महात्माजी के ध्यान में सूरत-जिले का बारडोली-तालुका था, जिसको उन्होने सत्याग्रह के लिए क्षेत्र चुना। और-और जगहों को भी तैयारी करने का आदेश था, पर बारडोली को ही सबसे पहला क्षेत्र चुनने का कारण यह था कि एक तो वहाँ के रहनेवाले जाग्रत और जोशीले थे—खादी के प्रचार तथा और बातो में भी अपनी प्रगति दिखलाकर उन्होने अपनी योग्यता प्रमाणित कर दी थी; दूसरे, उस तालुके के अन्दर कुछ ऐसे लोग भी थे जो महात्माजी के साथ दक्षिण अफ्रिका में काम कर चुके थे—वहाँ के सत्याग्रह में भाग लेकर उन्होंने सत्याग्रह का सक्रिय अनुभव पाया था। कुछ दिनो के बाद महात्माजी और दूसरे लोग उस तालुके में दौरा कर जनता की तैयारी से सतुष्ट हुए। निश्चय हुआ कि महात्माजी बारडोली में सत्याग्रह आरम्भ करेंगे। इसके लिए तालुके के प्रमुख लोगों की एक सभा वहाँ हुई। मै भी उस दिन मौजूद था। सत्याग्रह में अहिंसात्मक रहकर हर प्रकार से सरकारी दमन बरदाश्त करने का आदेश देकर महात्माजी ने उनलोगो से एक आम के गाछ के नीचे, जहाँ सभी बैठे थे, प्रतिज्ञा कराई कि लोग सत्याग्रह में विचलित नही होगे—चाहे उनपर मार पडे या वे जेलखाने भेजे जायँ या उनके धन-माल गवर्नमेंट की ओर से जब्त कर लिये जायँ। उनमें जो कुछ अभी त्रुटियाँ देखी गई थी, उनको भी दूर करने पर जोर दिया गया। महात्माजी ने इसके बाद लार्ड रीडिंग को सत्याग्रह की सूचना भेज दी। उन्होने जो पत्र लिखा, उसमें सारी बातें बताई गईं जिनके कारण सत्याग्रह करना अनिवार्य हो गया था।

मै प्रतिज्ञा-सभा के बाद बिहार वापस आकर सूबे में दौरा करने लगा, क्योकि सत्याग्रह जब आरम्भ होगा तब सभी जगहो पर पूरी शाति रहनी चाहिए और सत्याग्रह की तैयारी पूरी तरह होनी ही चाहिए। यही सन्देश मैं घूम-घूम कर पहुँचा रहा था। अचानक, सीतामढी के इलाके में, पुपरी की एक सभा में भाषण करते समय, मझे एक तार मिला कि बारडोली में वर्किङ्ग-कमिटी की बैठक होनेवाली है—मुझे तुरन्त वहाँ पहुँचना चाहिए। मै वहाँ से सीधे पटना जाकर बारडोली के लिए रवाना हो गया। जब मै रेल से बारडोली स्टेशन उतरा, तब मैने प० मदनमोहन मालवीयजी को उसी गाडी से रवाना होते देखा। उनसे बहुत थोडी बातें हो सकी। पर इतना मालम हो गया कि वर्किङ्ग-कमिटी की बैठक समाप्त हो गई और यह निश्चय कर लिया गया कि सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाय। इस निश्चय का कारण यह था कि गोरखपुर जिले के चोराचौरी स्थान में एक बलवा हो गया था, जिसमें वहाँ के लोगो ने वहाँ के पुलिस-थाने को जला दिया था और पुलिस के कई सिपाहियो को मार डाला था। वहाँ कुछ ऐसा जोश पैदा हो गया था कि लोगो ने अपने ऊपर काबू नही रखा, पुलिस-थाने पर धावा बोलकर फसाद कर दिया। इसको सूचना पाते ही महात्माजी ने निश्चय कर लिया कि ऐसी अवस्था में, जब जनता ने अहिसा को ठीक-ठीक न समझकर इतना बडा बलवा कर दिया, सत्याग्रह के लिए ठीक वायुमडल नही है—इसे स्थगित करना ही चाहिए। इसी बात पर विचार करने के लिए यह वर्किङ्ग-कमिटी बुलाई गई थी। उसने महात्माजी के विचार से सहमत होकर सत्याग्रह स्थगित करने का निश्चय वही कर दिया। जब मैने मालवीयजी से इतना सुना तो मेरे दिल में उठा कि इससे जो जोश देश में पैदा हुआ था, उसको ठेस लगेगी। मै रास्ते में यही विचार करता हुआ महात्माजी के पास पहुँचा। उन्होने देखते ही कहा कि देर करके पहुँचे, फिर पूछा कि यहाँ का निश्चय मालूम हुआ या नही। मेरे यह कहने पर कि निश्चय का हाल सुन लिया है, उन्होने दूसरा प्रश्न पूछा, क्या निश्चय से सहमत हो ? मै इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सका, इतना ही कहा कि इससे लोगो में असन्तोष होगा। इस पर उन्होने मेरा विचार जानना चाहा। मैने कहा कि सोचकर उत्तर दूँगा। उन्होने इस बात को पसद किया।

मैने जब और लोगो से वर्किङ्ग-कमिटी की पूरी कार्यवाही ब्योरेवार सुन ली, तब और कुछ सोचकर अपने मन में निश्चय कर लिया कि जो हुआ है, वह ठीक हुआ है। पीछे जाकर महात्माजी से कह दिया कि लोगों में असन्तोष तो होगा, पर जो हुआ है वह अच्छा हुआ है। देखा कि महात्माजी

को मेरी राय से सतोष हुआ। उन्होने अपने विचारो को मुझे विस्तार से बताया, जिसका साराश यह था कि सत्याग्रह के लिए अहिंसा अनिवार्य है, इसमें यदि कोई यह समझता हो कि सत्याग्रह केवल प्रतिपक्षी को तग करने के लिए और उससे जबरदस्ती अपनी बात मनवाने के लिए ही किया जाता है, तो यह गलत है, सत्याग्रह का उद्देश्य तो अपने ऊपर कष्ट सहकर भी प्रतिपक्षी के हृदय को जीत लेना है जिसमें वह सत्याग्रही की बात को ठीक समझकर मान ले—दबाव में पडकर नही, बल्कि उसकी सत्यता और औचित्य को मानकर, यह भावना जबतक साधारण तौर से लोगो में न पैदा हो जाय और लोग यह न समझते रहें कि किसी-न-किसी तरह से गवर्नमेंट को तग करना ही सत्याग्रह का ध्येय है तथा इस तग करने में कही हिंसा करने की भी आवश्यकता हो तो वह जायज है, तबतक सत्याग्रह कभी नही चल सकता, चौराचौरी की घटना ने यह साबित कर दिया था कि अभी जनता की कौन कहे, काग्रेस के कार्यकर्त्ताओ ने भी इस मर्म को नही समझा था; क्योकि काग्रेस के कार्यकर्त्ताओं ने ही जनता को उभाडने में और उसके द्वारा थाना जलवाने तथा पुलिस के आदमियो को मरवा डालने में भाग लिया था।

महात्माजी का कहना था कि जिस तरह हांडी के एक-दो चावल देखकर ही यह जान लिया जाता है कि सारी हांडी का चावल पक गया है या नही, उसी तरह एक घटना से ही सारे देश की स्थिति और जनता के मनोभाव का पता लग गया—इससे, यदि सत्याग्रह किया गया तो, चौराचौरी का उदाहरण अनेकानेक जगहो में प्रकट होगा और बारडोली के सत्याग्रह के बदले में अनेक चौराचौरी देखने में आवेंगे। मैंने इसी प्रकार के विचारों से अपना निश्चय कर लिया था और महात्माजी की बातो को सुनकर इसमें और भी दृढ हो गया। पर, मै इतना जानता था कि इस निश्चय को बहुतेरे लोग पसद नही करेंगे, क्योंकि वे इतनी सूक्ष्मता से इस पर विचार नही कर पायेंगे। ऐसा ही पीछे देखने में आया।

बारडोली में मेरे रहते समय ही, उसी आम्रवृक्ष के साये में, फिर प्रमुख लोगो की सभा हुई। उसमें महात्माजी ने सत्याग्रह स्थगित करने का यह निश्चय लोगो को बताया—उसके कारणो को समझाया। मैंने देखा कि उनलोगों के दिल में निश्चय तथा औचित्य के सम्बन्ध में सन्देह नही था, पर इस निश्चय से वे बहुत दु खित थे। इसका कारण यह था कि वे मानते थे कि उनको देश के लिए कुछ करने का जो मौका मिला था, वह सौभाग्य उनके हाथो से निकल गया। देश के उद्धार के लिए वे सर्वस्व की आहुति देने को तैयार थे, अब वे ऐसा नही कर पायेंगे। इसी का उनको दु ख था।

कई आदमी तो फूट-फूटकर रोने लग गये। महात्माजी ने भी समझा-बुझा कर उनको शान्त किया।

वहीं पर यह भी निश्चय किया गया था कि चन्द दिनों के अन्दर ही अखिलभारतीय काग्रेस-कमिटी का अधिवेशन किया जाय जिसमें बारडोली का निश्चय विचारार्थ रखा जायगा। यह अधिवेशन दिल्ली में होना तय हुआ। जो तिथि मुकर्रर की गई थी वह इत्तिफाक से फाल्गुन की शिवरात्रि थी। कई आदमियों ने इस पर नाराजी जाहिर की। तारों और चिट्ठियों से महात्माजी को सूचित भी किया कि इस पुण्य तिथि पर बहुतेरे हिन्दू उपवास कर शिव-उपासना में लगे रहते हैं, इसलिए यह अधिवेशन इस तिथि को न होकर किसी दूसरी तिथि पर होना चाहिए। महात्माजी ने उसको नहीं माना। मुझे भी यह बात कुछ खटकी। महात्माजी से मैंने कहा कि इससे हिन्दुओं में असन्तोष है और यह वाजिब भी है, तो एक-दो दिन टाल देने में कोई हानि नहीं होगी। उन्होंने मेरी बात न मानकर मुझे समझाया कि जब कोई निश्चय कर लिया जाय तो उसको भरसक तबतक नहीं बदलना चाहिए जबतक कोई बहुत सगीन कारण न हो, पर यहाँ कोई ऐसा कारण नहीं दीखता, क्योंकि जो उपवास करना चाहते हैं वे दिल्ली में भी आसानी से उपवास कर सकते हैं—उपासना में भी कोई दिक्कत नहीं पड़ेगी, क्योंकि अधिवेशन दिन-रात तो होगा नहीं, बचे समय में उपासना कर सकते हैं। उन्होंने फिर कहा कि यह तो किसी शास्त्र में नहीं लिखा है कि कोई अच्छा काम पुण्य तिथि के दिन नहीं करना चाहिए, विशेषकर जब इसका सार्व-जनिक महत्त्व है। मैंने देख लिया कि महात्माजी किसी निश्चय को कितना महत्त्व देते हैं। मुझे चम्पारन की वह घटना याद आ गई, जब वे रात के समय अपनी गठरी-मोटरी उठाकर नये मकान में चल दिये थे, चूंकि नये मकान में जाने का पहले 'निश्चय कर लिया गया था। दूसरी बात मैंने यह देखी कि हमारे व्रतों और त्यौहारों का वे कैसा सच्चा अर्थ लगाते हैं तथा हमारी उन भावनाओं को वे कैसे शुद्ध तर्क से गलत समझते हैं जो हमको व्रत के दिन एक प्रकार से निष्क्रिय और निकम्मा बना देती हैं।

निश्चय के प्रकाशित होते ही चारों ओर से इसके विरुद्ध आवाज उठने लगी। बड़े-बड़े नेता उस समय जेल में थे। देशबन्धु दास तो पहले से ही नाराज थे—जब उनकी बात न मानकर महात्माजी ने लार्ड रीडिंग के साथ समझौता करने से इनकार कर दिया था। अब, इससे देशबन्धु और भी अधिक नाराज हुए, क्योंकि उनको ऐसा मालूम हुआ कि महात्माजी न तो समझौता करते हैं और न लड़ते ही हैं—सारे देश को जोश में उठाकर

उसे पटक देते हैं। पडित मोतीलाल नेहरू भी ऐसे ही विचार के थे; उन्होंने भी अपने विचारों को दिल्ली के अधिवेशन के समय लिख भेजा। लाला लाजपत राय के भी ऐसे ही विचार थे। जहाँ तक मुझे स्मरण है, शायद अली-बन्धुओ ने भी महात्माजी से असहमति प्रकट की थी। मैंने सुना था कि जब एक जेल से कही दूसरी जेल में तबादला होते समय किसी स्टेशन पर अली-बन्धुओ से किसी की देखादेखी हो गई थी तब उनलोगो ने उसे अपनी राय बता दी थी। अखिलभारतीय कमिटी के पहले जो वर्किङ्ग कमिटी की बैठक दिल्ली में हुई थी उसमें ये सभी बातें कही गई। पर महात्माजी सभी बातो को सुनकर भी अपने निश्चय पर अटल रहे।

अखिल भारतीय कमिटी में बारडोली का निश्चय स्वीकार करने का प्रस्ताव महात्माजी ने उपस्थित किया। अपने विचारो को उन्होने खोलकर रख दिया। डाक्टर मुजे ने सशोधन के रूप में प्रस्ताव पेश किया, जिसका आशय महात्माजी की सारी कार्यवाही और सारे कार्यक्रम की निन्दा करने का था। इस पर बहस छिडी। हकीम अजमल खाँ उस समय काग्रेस-प्रसिडेंट थे। उन्होने अचानक अपनी अस्वस्थता के कारण महात्माजी को अपने स्थान पर बैठा दिया और स्वय उठकर चले गये। लोगो को कुतूहल हुआ कि महात्माजी का अपना ही प्रस्ताव है, उसके विरोध में डाक्टर मुंजे का सशोधन है, उसी पर बहस छिडी है, देखा जाय कि महात्माजी क्या करते है। पर उन्होने एक अजीब ढग अख्तियार किया। जब कोई उठता तो उससे पूछते कि आप किस पक्ष में बोलना चाहते हैं। जब वह कहता कि हम डाक्टर मुजे के विरोध में बोलना चाहते है तब उसे वे कहते कि आप ठहर जाइए। अगर वह कहता कि मैं डाक्टर मुजे के सशोधन के पक्ष में बोलना चाहता हूँ, तो उसको बोलने की इजाजत दे देते। इस प्रकार, सभी भाषण महात्माजी के विरोध में ही होने लगे। कुछ देर के बाद, महात्माजी के पक्ष में जो लोग बोलना चाहते थे उन्होने—यह समझकर कि महात्माजी तो हमें बोलने देंगे नहीं—उठकर अपनी इच्छा प्रकट करना भी बन्द कर दिया। इससे ऐसा मालूम होने लगा कि महात्माजी के प्रस्ताव के पक्ष में कोई है ही नही, उनका प्रस्ताव शायद अस्वीकृत हो जायगा। रात के दस बज गये। एक पर एक महात्माजी के विरोध में बोलनेवाले बोलते ही चले गये। मैं भी बैठे-बैठे सब सुनता रहा। मुझे भी यह बुरा लगा कि इस तरह महात्माजी अपने पक्ष को क्यो निर्बल कर रहे हैं, जब सचमुच वही पक्ष ठीक है। जो कुछ मैंने वर्किङ्ग-कमिटी में, और उस वक्त तक अखिल भारतीय कमिटी में, सुना उससे मेरा अपना विचार और भी दृढ़ हो गया कि निश्चय

ठीक हुआ था। अन्त में महात्माजी ने किसी को भी अपने प्रस्ताव के पक्ष में बोलने का अवसर दिये बिना ही मत लेना आरम्भ कर दिया। यह देखकर मुझे कुछ और भी बुरा मालूम हुआ। पर महात्माजी ने या तो सभा का रुख जान लिया था या यह सोच लिया था कि हमारे पहले भाषण से लोगो ने अगर इस प्रस्ताव को अच्छी तरह नहीं समझा है, तो उसके पक्ष में भाषण दिलाकर उस पर जोर डालना कहाँ तक ठीक होगा और इससे उनकी बुद्धि को समझाया नही जा सकेगा। कुछ लोगो के यह कहने पर भी कि दूसरे पक्ष को कुछ कहने का मौका नही दिया गया—उनको मत प्रगट करने का मौका मिलना चाहिए, महात्माजी ने अपना विचार नही बदला। उन्होने उन लोगो को, जो डाक्टर मुजे के सशोधन के पक्ष में हो, हाथ उठाने को कह दिया। जब हाथ गिने गये तो मालूम हुआ कि प्राय उतने ही हाथ उठे जितने उस सशोधन के पक्ष में भाषण हुए थे! इस तरह, सशोधन का प्रस्ताव बहुत बडे बहुमत से नामजूर हो गया और महात्माजी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया! मेरा खयाल है कि महात्माजी के कार्यक्रम और बारडोली के निश्चय की जितने जोरो से, कडे शब्दो में, आलोचना की गई उतना ही लोग महात्माजी के प्रस्ताव के पक्ष में और डाक्टर मुजे के सशोधन के विरोधी होते गये। इसका कारण यह भी था कि डाक्टर मुजे और उनके पक्ष के लोगो ने कभी भी असहयोग के कार्यक्रम को पूर्णरूपेण स्वीकार नही किया था। वे जनमत को उसके पक्ष में देखकर चुप हो गये थे, पर जब कभी मौका मिलता था तो उसकी कडी आलोचना किया करते थे। उस अधिवेशन में सदस्यो पर यह असर पडा कि ये लोग तो हमेशा महात्माजी का विरोध किया करते है, इसलिए यह एक मौका देखकर कि कुछ और लोग भी उनके विरोध में है—डाक्टर मुजे ने खुलकर निन्दा का प्रस्ताव पेश करने का सुयोग ढूंढ निकाला। इससे, जो कोई बारडोली के निश्चय के विरोध में भी था वह भी डाक्टर मुजे के सशोधन का विरोधी और महात्माजी के प्रस्ताव का समर्थक बन गया!

इसके बाद यह स्पष्ट हो गया कि काग्रेस में दो विचार-धाराएँ चल रही है और आपस में काफी मतभेद पैदा हो गया है, गवर्नमेंट इस बात से जरूर लाभ उठायेगी। शाहजादे का दौरा भी समाप्त हो चला था, इसलिए अब काग्रेस के साथ सरकार के समझौता करने का कोई कारण नही रह गया था। बहुतेरे लोग पहले से ही जेल में थे। अब महात्माजी के गिरफ्तार कर लेने में कोई विशेष भय की बात नही थी। ऐसा मैंने दिल्ली में ही एक ऐसे मित्र से सुना जिनकी पहुँच गवर्नमेंट के लोगो तक थी। थोडे ही दिनो के बाद

'यग इडिया' में प्रकाशित महात्माजी के दो लेखो के कारण गवर्नमेंट ने उनको गिरफ्तार कर लिया। १२४-ए-धारा के अनुमार सेशन-जज के सामने उनपर मुकदमा भी चलाया गया। महात्माजी गिरफ्तार करके साबरमती जेल में उन वक्त रखे गये। खबर पाते ही मै साबरमती गया। एक बार दूर से ही, जेल के फाटक से ही, महात्माजी का दर्शन किया। पूरा दर्शन और मुलाकात तो तब हुई, जब सेशन-जज के सामने मुकदमा पेश हुआ।

यह पहला मौका था कि असहयोग-आदोलन के बाद महात्माजी अदालत के मामने अभियुक्त-रूप में लाये गये। चम्पारन में तो उनपर मुकदमा चला ही था, पर आज की और उस समय की स्थिति में बहुत अन्तर था। उस समय गाधीजी को कुछ ही लोग जानते थे, सारा हिन्दुस्तान अच्छी तरह नही जानता था, पर अब तो वे भारतवर्ष में दो चमत्कार दिखा चुके थे—एक तो हिन्दू मुसलिम-ऐक्य का और दूसरा सारे देश में अद्भुत जागृति का। चम्पारन में जिस दिन उन्होंने सरकारी आज्ञा न मानकर जेल की सजा भुगतने का निश्चय किया था उस दिन उनके साथ एक-दो अनजान लोग थे, जो न तो उनकी कार्य-पद्धति जानते थे और न उनमे कोई विशेष परिचय ही रखते थे, पर आज तो उनकी पुकार पर हजारो-हजार लोग सारे देश मे अपना सारा समय देकर काम कर रहे थे और हजारो-हजार ऐसे लोग उनके कहने मे जेलखानो में पड़े हुए थे, जिन्होने कभी स्वप्न में भी नही सोचा था कि उनको ऐसा करना पडेगा।

यह सब होते हुए भी, उस दिन में और आज में बहुत सामजस्य भी था। आज भी महात्माजी वैसे ही ब्रिटिश साम्राज्य का मुकाबला करने को तैयार थे, जैमा उस दिन। आज भी उनका भरोसा ईश्वर पर और कष्ट सहने की शक्ति पर था। आज भी अदालत के सामने जो बयान उन्होंने दिया उसमें वही दृढता और वही विश्वास झलक रहे थे जो मोतीहारी की अदालत के बयान में थे।

अदालत में सबको जाने की इजाजत नही थी। कुछ लोगो को, जिनमें एक मै भी था, पास मिला था। हमीलोग अन्दर जा सके थे। इसलिए, वहाँ बहुत भीड तो नही थी। पर देश के श्री केलकर-जैमे गण्यमान्य नेता, जो जेल के बाहर रह गये थे, वहाँ उपस्थित थे। चम्पारन में तो सजा नही हुई थी, पर अहमदाबाद के जज ने छ. साल की सजा दे दी। विदा लेने के वक्त मेरे-ऐमे लोग अपने को सँभाल न सके, बेकाबू हो फूट-फूट कर रो पडे। वहाँ से हमलोग एक प्रकार से अनाथ होकर घर लौटे।

महात्माजी ने चलने के समय आदेश दे दिया था कि सत्याग्रह नही करना चाहिए। हमारे सामने यही बडा प्रश्न था कि जो उत्साह लोगो में आ गया था वह किस तरह कायम रखा जाय। पर इसके चिह्न स्पष्ट दीखने लगे थे कि यह बहुत ही कठिन काम था। हमने रचनात्मक काम पर जोर देकर उसके द्वारा लोगो का जोश कायम रखने का प्रयत्न किया। पर दिन-दिन वह जोश गिरता गया। गवर्नमेंट भी अपनी तरफ से, जहाँ भी कुछ जोश देखने में आता था उसे दमन द्वारा दबाने में, बाज नही आई। थोड़े ही दिनो में यह स्पष्ट हो गया कि काम ढीला पड जायगा। मै अहमदाबाद से लौटकर बिहार के जिलो का दौरा करने लगा। हमारे सामने काम भी ऐसा था जिसमें हमारा सारा समय लग सकता था। अहमदाबाद-कांग्रेस में ही हमने कांग्रेस के अगले अधिवेशन को बिहार में आमन्त्रित किया था। अब पहले यह निश्चय कर लेना था कि बिहार में कहां पर कांग्रेस हो, उसके लिए किस तरह रुपये जमा किये जायें और क्या प्रबध किया जाय। बिहार में जोश काफी था, इसलिए इस बात की पूरी आशा थी और दृढ़ विश्वास भी था कि हम प्रबन्ध कर लेगे।

बारहवाँ अध्याय

हमारे सामने प्रश्न यह था कि अब क्या किया जाय। कांग्रेस के जो कार्यकर्त्ता बाहर थे वे इस पर बहुत जोर देते थे कि अब सत्याग्रह आरम्भ किया जाय। महात्माजी ने देश में अहिंसा का वायुमंडल न होने के कारण, वायसराय को नोटिस देने के बाद भी, बारडोली का सत्याग्रह रोक दिया था। वह जेल जाने के वक्त भी सत्याग्रह करने की मनाही कर गये थे—रचनात्मक काम में लग जाने का आदेश दे गये थे। पर रचनात्मक काम बहुत ही नीरस और धीमा होता है। उसमें वह चटपटा मजा और उत्तेजना नहीं मिलती। इसलिए उसमें बहुतेरों का जी नहीं लगता। यह बात उसी समय देखने में आ गई। पिछले छब्बीस-सत्ताइस वर्षों के अनुभव ने भी इसी धारणा की पुष्टि की है। जब सत्याग्रह नहीं किया जा सकता था और रचनात्मक काम में बहुतों का जी नहीं लगता था, तो फिर किया क्या जाय। कहीं-कहीं धीमी आवाज—विशेषकर महाराष्ट्र में—उठी कि कौंसिल-बहिष्कार का कार्यक्रम अब छोड़ देना चाहिए, अब अगले चुनाव में शरीक होने के लिए कांग्रेस को अभी से तैयारी करनी चाहिए। पर जन-साधारण और कांग्रेस के कार्यकर्त्ता अभी इस बात को सुनने के लिए तैयार नहीं थे। पर बात उठी। इसके जो पक्षपाती थे वे इस फिक्र में लग गये कि कांग्रेस किस तरह इस ओर खींची जाय।

अहमदाबाद-कांग्रेस में श्रीविट्ठल भाई पटेल कांग्रेस के मंत्री चुने गये थे। यह बात सब लोग जानते थे कि वह असहयोग के कार्यक्रम को पूरी तरह—विशेषकर कौंसिल-बहिष्कार को दिल से नहीं मानते थे। जब यह बात अहमदाबाद में कही गई कि महात्माजी के साथ उनका कैसे निभेगा, तो महात्माजी ने उत्तर दिया था कि मंत्री चाहे जो कोई भी हो उससे वह अपना काम निकाल ही लेंगे, इसलिए इसकी चिन्ता किसी को नहीं करनी चाहिए।

विठ्ठलभाई बहुत करके बम्बई में रहा करते थे। उनके छोटे भाई वल्लभ भाई पटेल गुजरात में रहा करते थे, जो महात्माजी के अनन्य भक्त थे और सारे कार्यक्रम को पूरी तरह मानते थे—अहमदाबाद-स्वागत-कारिणी के अध्यक्ष भी वही थे और वह भी गिरफ्तार नही हुए थे। दक्षिण में श्रीराज-गोपालाचार्य और उत्तर में डा० अन्सारी भी बाहर ही थे।

थोड़े ही दिनो के बाद अखिलभारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक हुई। उसमें श्रीविठ्ठल भाई पटेल की ओर से यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि एक कमिटी मुकर्रर की जाय, जो इस बात की जाँच करे कि किस जगह के लोग कहा तक सत्याग्रह के लिए तैयार है, और उस कमिटी की सिफारिश के अनुसार जहाँ हो सके वहाँ सत्याग्रह आरम्भ किया जाय। श्रीविठ्ठल भाई पटेल बहुत ही चतुर थे। उनका मतलब यह था कि कमिटी ने अगर कहा कि कही सत्याग्रह नही किया जा सकता है तो यह स्वभावत कहा जा सकेगा कि तब कौंसिलो में जाने का कार्यक्रम फिर जारी किया जाय। जो लोग कौंसिलो के विरोधी थे, पर सत्याग्रह चाहते थे, उन्होने इस प्रस्ताव को अच्छा माना, क्योकि वे आशा रखते थे कि कमिटी की रिपोर्ट पर सत्याग्रह हो सकेगा। पर हममें से बहुतेरे कौंसिल को भी नही चाहते थे और महात्माजी के आदेशानुसार सत्याग्रह भी नही चाहते थ, उनके लिए भी इस प्रस्ताव को मानने के सिवा और कोई दूसरा रस्ता न था।

खैर, कमिटी मुकर्रर हुई। वह सारे देश का भ्रमण करके सत्याग्रह की तैयारी-सम्बन्धी बातो की जाँच करने लगी। यह सिलसिला कई महीनो तक जारी रहा। कमिटी से इतना काम तो जरूर हुआ कि इसके सदस्य जहाँ जाते वहाँ जागृति हो जाती, जनता में उत्साह बढ जाता। साथ ही, वह कौंसिल के सम्बन्ध में भी प्रश्न करती और कार्यकमिटी की राय तथा इस बात की जानकारी हासिल करती कि कहाँ तक कौंसिल के चुनाव में कांग्रेस को सफलता मिलने की सम्भावना है।

असहयोग में मुसलमानो ने बहुत काम किया था। कांग्रेस की कमिटियो के साथ-साथ खिलाफत-कमिटियाँ भी हुआ करती थी। खिलाफत-कमिटी ने भी इसी बात के लिए कमिटी मुकर्रर कर दी, जो कांग्रेस-कमिटी के साथ-साथ सभी जगहो में जाकर जाँच करती रही। अन्त मे कांग्रेस की जाँच-कमिटी में बडा मतभेद देखने में आया। कमिटी के छ सदस्यो में प्राय सभी इस बात में तो एक राय के थे कि सत्याग्रह नही किया जा सकता है, पर कौंसिल-बहिष्कार के सम्बन्ध में तीन सदस्य बहिष्कार जारी रखने के पक्ष में और तीन निषेध उठा देने के पक्ष में थे। उन्होने कांग्रेस को उन प्रस्तावो से

बचने के लिए, जिनमें कौंसिल-बहिष्कार का साफ-साफ समर्थन किया गया था, यह रास्ता सुझाया कि बहिष्कार वे भी चहते हैं, पर वे बहिष्कार का तरीका बदलना चाहते हैं, वे चुनाव का बहिष्कार न करके कौंसिल में पहुँचकर कौंसिलो का बहिष्कार करेंगे! अर्थात्—जो लोग काग्रेस के कार्यक्रम को नही मानते उनको कौंसिलो में न जाने दें और इस तरह यह दिखला दें कि देश असहयोग के पक्ष में हैं। जब हम सब लोगो को रोक नही सकते, और सभी जगहो के लिए उम्मीदवार खडे हो ही जाते हैं, तथा कोई विरोध न होने के कारण निर्विरोध चुने भी जाते हैं, तो ब्रिटिश गवर्नमेंट भले कह सकती है और कहती भी है कि कौंसिल-बहिष्कार का कार्यक्रम बिल्कुल सफल नही हुआ, क्योकि एक भी जगह खाली नही है और सभी प्रान्तो में मन्त्रिमडल भी बन गये हैं जो काम कर रहे हैं। उनका कहना था कि हमलोग चुनाव लडकर ऐसे लोगो को जाने न दें, अपना बहुमत प्राप्त करके कोई मन्त्रिमडल बनने ही न दें—इस प्रकार का असहयोग अधिक कारगर होगा, तब ब्रिटिश गवर्नमेंट भी यह न कह सकेगी कि नये विधान के अनुसार सभी जगहो में मन्त्रिमडल काम कर रहे हैं और बहिष्कार की नीति असफल हो गई।

विपक्षियो का कहना था कि हमको ब्रिटिश गवर्नमेंट की सस्थाओं का बहिष्कार करना चाहिए, इसीलिए अदालतो, शिक्षा-सस्थाओ और कौंसिलो का बहिष्कार किया गया है, क्योकि जनता को इन्हीं संस्थाओ के साथ प्रतिदिन काम पडता है—इन्ही के द्वारा ब्रिटिश गवर्नमेंट की प्रतिष्ठा बढती है। अगर हमने एक बार जाना स्वीकार किया तो उन सस्थाओ के साथ हमारा सम्पर्क फिर से जुट जायगा और गवर्नमेंट की प्रतिष्ठा जनता की आँखो में बढ जायगी, गवर्नमेंट की वह दोधारी नीति भी सफल हो जायगी, जिसके द्वारा एक तरफ तो वह हमारे आन्दोलन को दमन द्वारा दबाती थी और दूसरी तरफ यह दिखलाती थी कि उसने जो वैधानिक सुधार दिये हैं उनसे कुछ थोडे लोगो के सिवा—जो केवल आन्दोलन करना ही जानते हैं—सब लोग सतुष्ट हो गये हैं। हम यह भी मानते थे कि असहयोग के कार्यक्रम से इसी तरह एक-एक चीज को हटा-हटा कर हमलोग सारे कार्यक्रम को छोड देंगे। हम तो यह भी मानते थे कि कौंसिलो के अन्दर जाकर बहिष्कार की नीति नही चल सकेगी क्योंकि विधान में इस बात का मौका था कि बहुमत अगर मिनिस्ट्री के विरोध में हो, तो भी गवर्नमेंट का काम नही रुकेगा। यदि गवर्नमेंट मुनासिब समझे तो कौंसिल को तोडकर नया चुनाव करा सकती है। अगर उसने ऐसा किया तो बार-बार चुनाव लडना असम्भव

हो जायगा। इस तरह, कमिटी में दो पक्ष हो जाने के कारण इस विषय पर उसके बहुमत से भी कोई सिफारिश नही हो सकती थी।

इस विषय का निश्चय करना फिर काग्रेस पर ही रह गया। कमिटी के मेम्बरो में पण्डित मोतीलाल नेहरू—जो जेल से मीयाद पूरी कर निकल आये थे, श्री विट्ठल भाई पटेल और हकीम अजमल खाँ कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में थे, श्री राजगोपालाचार्य, डाक्टर अन्सारी और श्रीकस्तूरीरग आयगर वहिष्कार के पक्ष में। पहले पण्डित मोतीलाल नेहरू के विचार साफ मालूम नही थे। जहाँ तक पता लग सकता था, वह वहिष्कार के पक्ष में ही थे, पर अन्त में रिपोर्ट लिखे जाने के समय वह बडे जोरो से कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में आ गये। देशबन्धु दास भी जेल से निकलने के बाद प्रवेश के पक्ष में हो गये। वह तो जेल से निकलने के पहले से भी पक्ष में थे। पण्डितजी के विचार स्थिर करने में वह बहुत अशो में सफल हुए थे। इस तरह तीनो बडे नेता, जिनका स्थान गाधीजी के बाद का समझा जाता था, एक तरफ हो गये। पर जन-साधारण और काग्रेसी कार्यकर्त्ता बहुत करके असहयोग के कार्यक्रम में हेरफेर करने के विरोधी रह गये। यह झगडा पहले तो अखिलभारतीय काग्रेस-कमिटी के सामने आया, पर उसने इसको टाल करके गया में होनेवाले काग्रेस-अधिवेशन के लिए छोड रखा। देशबन्धु दास अहमदाबाद-काग्रेस के सभापति चुने गये थे, पर अधिवेशन में उपस्थित न हो सके थे। हकीम अजमल खाँ ने उनकी गैरहाजिरी में सभापति का काम किया था। स्वभावत लोगो ने उनको ही गया-काग्रेस का सभापति चुना। अधिवेशन के पहले ही यह बात जाहिर हो गई कि सभापति और साधारण प्रतिनिधियो के बीच मतभेद होगा।

मै इस वाद-विवाद में कट्टर अपरिवर्तनवादी समझा जाता था। हमारे पक्ष के तीन प्रमुख नेता थे—श्रीराजगोपालाचार्य, सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा डाक्टर अन्सारी। काग्रेस का प्रबन्ध हम बिहारवालो को ही करना था। मेरा अधिक समय इसीमें लगता था। इस सम्बन्ध में एक घटना उल्लेखनीय है। जो स्वागत-समिति बनी उसका मै ही मत्री था। अभी सभापति का चुनाव नही हुआ था। महात्माजी ने हमको एक वात सिखा दी थी जो वहुत काम की निकली। उन्होने कहा था कि सार्वजनिक काम जितना कम-से-कम खर्च में हो सकता हो उतना ही करना चाहिए—अर्थात् एक पैसे की भी फिजूल-खर्ची नही होनी चाहिए, सार्वजनिक काम तभी चल सकता है जव सव लोग उसकी मदद करें और जो खर्च पडे वह जनता दे, अगर कोई काम ऐसा है जिसके खर्च के लिए जनता पैसे नहीं

देना चाहती तो समझ लेना चाहिए कि जनता उस काम को पसन्द नही करती या नही चाहती। इसलिए वह इसके भी विरोधी थे कि किसी सार्वजनिक सस्था के लिए ऐसा भी प्रवन्ध होना चाहिए कि उसके लिए एक वार पैसे जमा करके रख लिये जायें और सूद से ही काम चलता रहे, ऐसा करने से सस्था निश्चित रूप से ढीली पड जायगी और अपने ध्येय से अलग भी हो जा सकती है, इसलिए सस्था को अपनी उपयोगिता तथा सेवा द्वारा जनता से खर्च पाने का हकदार सावित करते रहना चाहिए, जव उसको जनता वेकार समझेगी तो वह खर्च देना वन्द करके उसको समाप्त कर देगी, मगर वह भार-स्वरूप होकर नही रह जायगी।

इसी सिलसिले में यह वात भी थी कि किसी सार्वजनिक सेवक को कोई ऐसा काम नही उठाना चाहिए जिसके लिए जनता पैसे देने को तैयार न हो और जो पैसे के विना नही हो सकता। हम अक्सर ऐसी ही भूल कर लेते हैं—इस आशा से कि आज अगर जनता ने पैसे नही दिये तो कोई हर्ज नहीं, सार्वजनिक काम रुकना नही चाहिए, वह पीछे चलकर पैसे दे देगी; तत्काल अगर दूसरी तरह से नही हो सकता तो कर्ज लेकर भी काम चला लेना चाहिए—अर्थात् सार्वजनिक काम के लिए सिर्फ निजी जवावदेही पर, जवतक हम इसके लिए तैयार न हो कि जनता यदि पैसे न दे तो भी हम अपने पास से और अपनी सम्पत्ति वेचकर ही कर्ज अदा कर देंगे, किसी को कर्ज नही लेना चाहिए, क्योकि ऐसा करने से आदमी झूठा वन सकता है और वादा-खिलाफी पर भी मजबूर हो सकता है। उनका यह भी कहना था कि किसी कार्यकर्त्ता पर जवावदेही उतने ही काम तक की है जितने काम के लिए जनता उसको खर्च के रूप में साधन देती है, यदि जनता खर्च नहीं देती तो उसको भी कार्यकर्त्ता से यह दावा करने का हक नही है कि उसने क्यो कर्ज लेकर या और किसी प्रकार से काम नही कराया।

मुझे महात्माजी की यह सीख वरावर याद रहती है और उस समय भी याद थी। विहार में काग्रेस के पटना-अधिवेशन के इस प्रकार के कटु अनुभव को, जिनका जिक्र मैंने ऊपर किया है, मै भूला नही था। इसलिए मैंने आरम्भ मे ही स्वागत-समिति से साफ साफ कह दिया था कि मत्री की हैसियत से मै अपने को उतने ही खर्च का जवावदेह वनाऊँगा जितने पैसे स्वागत-समिति के हाथ में आ जायँगे, कोई चीज इस आशा से उधार न लूँगा और न कोई काम उधार कराऊँगा कि आज पैसे न भी हैं तो भी काम रुकना नही चाहिए, क्योकि स्वागत-समिति को पैसे मिल ही जायँगे। नतीजा यह हुआ कि मै न तो कोई ऐसी चीज उधार लेने को तैयार था और न

किसी ऐसे काम के लिए ठेका देने को, जिसके लिए स्वागत-समिति के पास पैसे आ नही गये थे । बिहार में वर्षा के दिनो में बहुत सफर भी नही किया जा सकता था । बरसात में पैसे भी नही मिल सकते थे, क्योकि उस मौसम में न तो किसान के पास पैसे होते है और न जमीदार के पास । व्यापार और कारखाने भी उन दिनो बहुत ही कम थे । इसलिए जो कुछ थोडा-बहुत हमलोग जमा कर सके थे वह बरसात के पहले ही । हमलोगो का ध्यान पैसे जमा करने की परमावश्यकता पर उतना नही था ।

बरसात समाप्त होते ही समय नजदीक आ गया, क्योकि उन दिनो अधिवेशन दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में ही हुआ करता था । अब इस बात की चिन्ता होने लगी कि तुरत सब चीजो के लिए अगर ठेके न दे दिये जायँगे तो, न तो प्रतिनिधियो के ठहरने के लिए झोपडे तैयार हो सकेंगे, न प्रदर्शनी इत्यादि के लिए, और न दूसरा सामान ही हम समय पर जुटा सकेंगे । अत स्वागत समिति की कार्यकारिणी की एक बैठक हुई । उसमें, यह देखकर कि मे कोई चीज या ठेका तबतक उधार नही लेना-देना चाहता जबतक रुपये स्वागत-समिति के हाथ में न आ जायँ, कार्यकारिणी को यह निश्चय करना पडा कि उसके मुख्य व्यक्ति जब बिहार-बैंक से अपनी निजी जवाबदेही पर कर्ज लें तब खर्च किया जाय । इसका अर्थ यह था कि हमको कर्ज देनेवाला एक ही होगा, हमको बहुत लोगो के पैसे के लिए तकाजे नही सुनने होंगे, बैंक को भी अदा करना होगा तो जो लोग कर्ज ले रहे है वही किसी-न-किसी तरह उसको अदा कर देंगे, इस तरह बैंक को भी बहुत लोगो पर मुकदमे करने की जरूरत नही पडेगी । हमने साथ ही यह भी निश्चय किया कि सभी जगहो के कार्यकर्त्ता स्वागत-समिति के—जितने अधिक हो सकें—सदस्य अपने-अपने स्थानो पर बनायें और धनीमानी लोगो से अधिवेशन के लिए चन्दे भी मांगें । अभी तक कांग्रेस-कार्यकर्त्ता, स्थिति ठीक न समझने के कारण, कुछ उपेक्षा का भाव रखते थे । पर जब यह प्रस्ताव प्रकाशित हो गया तो सबकी आंखें खुल गई । तब लोगो ने देखा कि उन्होने अगर उत्साह से काम नही किया तो सारे सूबे की बदनामी होगी । फिर वे देश मे और अपने सूबे म भी मुँह नही दिखा सकेंगे, क्योकि सूबे की जनता भी कह सकेगी कि तुमने हमसे कभी पैसे मांगे ही नही । इसलिए, सब लोग बहुत उत्साह से पैसे जमा करने में लग गये । बहुत जल्द पैसे जमा होने भी लगे ।

गवर्नमेंट के नीचे दर्जे के अधिकारी कुछ सोचने लग गये थे कि गाधीजी के जेल के बाद अब काग्रेस की ऐसी हालत हो गई है कि अधिवेशन के लिए भी पैसे जमा नही हो सकते है—कर्ज लेने की नौबत आ गई है । पर, जैसा

ऊपर कहा है, सब लोग पैसे जमा करने में लग गये। मै भी इस काम के लिए दौरे पर निकल गया। बैंक से भी बातचीत तो हो गई थी और वह पैसे देने पर राजी भी हो गया था, पर अभी पैसे लिये नही गये थे। मै चार-पांच दिनो के सफर के बाद कई हजार की एक अच्छी रकम लेकर गया लौटा। दिन में तीन-चार बजे का समय था। पुलिस के लोग इस बात का पता लगाने की फिक्र में थे कि अब देखें, काग्रेस होती है या नही—इन लोगो को कर्ज मिलता है या नही। जब स्टेशन पर उतरा तो मैने पहले ही सोच रखा था कि जो रुपये मै लाया हूँ उनको बैंक में पहले जमा कर दूंगा, क्योकि काग्रेस के अधिवेशन का स्थान शहर से बाहर कुछ दूर पर था, वही पर एक बगीचे में एक छोटे-से मकान में स्वागत-समिति का दफ्तर था, जहाँ रुपये रखने में खतरा था। इसलिए, मै ज्योही उतरकर गाडी पर रवाना हो रहा था कि पुलिस का दारोगा मेरे नजदीक आया। उसने मुझसे यह पूछा कि कर्ज लेने की जो बात थी उसमें आप कहाँ तक सफल हुए है और काग्रेस का काम कैसे चलेगा। मैने देखा कि उसके दिल की बात तो यह थी कि हम लोग मुश्किल में फँस गये है और अब शायद गया में काग्रेस होगी ही नही। मैने उसको साफ-साफ जवाब दे दिया कि हमको अब कर्ज लेने की जरूरत नही है। यह सुनकर उसको बडा आश्चर्य हुआ। मैने उसको बता दिया कि रुपये जमा होने लग गये है और मै खुद एक अच्छी रकम चार-पांच दिनो के सफर में जमा करके साथ लाया हूँ। इस बात पर उसको विश्वास नही हुआ। उसने समझा कि मै उसको चकमा दे रहा हूँ। तब मै सीधे बैंक गया। वह भी मेरी गाडी के साथ-साथ साइकिल पर गया। जब मैने रुपये जमा करा दिये और स्वागत-समिति के दफ्तर के लिए रवाना हुआ, जहाँ मै ठहरा करता था, तब उसको मेरी बात पर विश्वास हुआ। दफ्तर पहुँचने पर मुझे मालूम हुआ कि रुपयो के सम्बन्ध में जो सफल प्रयत्न हो रहे थे उनकी खबर कई जिलो से आ गई है। अब निश्चन्त होकर मै प्रबंध के काम में लग गया। सब सामान खरीदे जाने लगे। झोंपडे इत्यादि भी तेजी से बनने लग गये।

इस प्रकार, महात्माजी की सीख को, जिसे बहुतेरे लोग ठीक समझ नही पाये थे, हमने अनुभव से ठीक पाया। अबतक उसीके अनुसार चलकर मै अपने को बहुत-सी कठिनाइयो से सुरक्षित रख सका हूँ।

गया-काग्रेस में कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर बहुत बहस हुई। काग्रेस कई दिनो तक होती रही। अन्त में, सम्मति लेने पर, मालूम हो गया कि प्राय दो-तिहाई प्रतिनिधि कौंसिल-प्रवेश के विरोध में है और एक-तिहाई प्रवेश के पक्ष मे। इस तरह, बडे बहुमत के साथ, प्रवेश की मनाही गया-काग्रेस ने

भी कायम रखी। पर झगडा इतने से ही समाप्त नही हो गया। देशबन्धु दास ने सभापति-पद से त्यागपत्र दे दिया, क्योकि बहुमत उनके विरोध में था। बहुत कहने पर भी वह सभापति रहना नही चाहते थे। प० मोतीलाल नेहरू के साथ मिलकर उन्होने स्वराज्य-पार्टी कायम की। यह घोषणा भी की कि वह पार्टी काग्रेस को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न और कौंसिलप्रवेश की तैयारी करेगी। मै अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी का मत्री चुना गया। श्रीराजगोपालाचार्य के साथ मैने कई सूबो का दौरा किया। यह आपस का झगडा किसी-न-किसी रूप में चलता रहा। इसी बीच नागपुर में झडा-सत्याग्रह छिड गया। मध्यप्रदेश की गवर्नमेंट ने पहले जबलपुर में और उसके बाद नागपुर में राष्ट्रीय झडे के साथ जुलूस निकालने पर रोक लगा दी। इसलिए नागपुर में सेठ जमुनालाल बजाज ने सत्याग्रह जारी कर दिया। यह महीनो तक चलता रहा। इसमें दूर-दूर से स्वयसेवक आकर भाग लेते रहे। बिहार के स्वयसेवको के साथ मै भी कई बार नागपुर गया-आया। पर मै स्वय सत्याग्रह में शरीक न हुआ। सेठजी की गिरफ्तारी के बाद श्रीवल्लभ भाई पटेल नागपुर में रहकर सत्याग्रह का नेतृत्व करने लगे। पीछे श्रीविट्ठल भाई पटेल भी उनकी मदद में आ गये। अन्त मे गवर्नमेंट ने झडे का जुलूस उन रास्तो से बिना रोक-टोक जाने दिया, जिनसे वह पहले नही गुजरने पाया था। इस तरह सत्याग्रह समाप्त हुआ। जो लोग जेलखाने में थे, थोडे ही दिनो में, सब छोड दिये गये।

कौंसिल-सम्बन्धी मतभेद इतना बढ गया था कि अब काग्रेस के अधिवेशन बगैर इसका निबटारा सम्भव नही था। १९२३ के नवम्बर में नया चुनाव होनेवाला था। चूकि इसका फैसला उसके पहले ही होना था, इसलिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय हुआ। वह मौलाना अबुल कलाम आजाद के सभापतित्व में दिल्ली में हुआ। मौलाना हालही में जेल से निकले थे। वह कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में थे। अधिवेशन के पहले ही मौलाना मुहम्मद अली भी जेल से निकले। वह सीधे अधिवेशन में पहुँचे। कौसिल-प्रवेश के वह विरोधी थे। उनकी सम्मति से एक समझौता हुआ। उसका साराश यह था कि काग्रेस की तरफ से चुनाव न लडा जाय, पर यदि कोई काग्रेसी कौंसिल में जाना चाहे तो उसको इस बात की इजाजत है। इस प्रकार, स्वराज्य-पार्टी को अपने बल-बूते पर चुनाव लडने का मौका मिला। उसकी तरफ से बहुतेरे काग्रेसी लोग चुनाव के लिए खडे हुए। केवल एक मध्यप्रदेश में स्वराज्य-पार्टी को बहुमत मिला। बगाल में बहुमत तो नही, पर अच्छी तादाद में जगह मिल गई। किन्तु और सूबो में कुछ ऐसे स्वराजी

चुने गये, जो न तो मन्त्रिमडल बना सकते थे और न दूसरो को मन्त्रिमडल बनाने से रोक सकते थे। मध्यप्रदेश में मन्त्रिमडल नही बना। बगाल में कुछ दिनो के बाद दूसरे लोग फूटकर स्वराजियो के साथ मिल गये। वहाँ का मन्त्रिमडल भी टूट गया। कोकनाडा में काग्रेस का अधिवेशन मौलाना मुहम्मद अली के सभापतित्व में हुआ। उसने भी कौंसिल-प्रवेश का निषेध कायम रखा।

तेरहवाँ अध्याय

जब से यह कौंसिल का झगडा छिडा और महात्माजी ने १९२४ में जेल से निकलने के बाद इसका निबटारा नही कर लिया, तब से इस प्रश्न पर सारे देश में वाद-विवाद तो होता ही रहा, दूसरा कोई काम भी तेजी के साथ उत्साह-पूर्वक न हो सका। महात्माजी ने रचनात्मक काम पर जोर दिया था। हमलोगो से जहाँतक बन पडा, उसमें हमने जोर लगाया। खादी के काम को सगठित करने के लिए कोकनाडा-काग्रेस में खादी-बोर्ड की स्थापना की गई। सेठ जमुनालाल बजाज के नेतृत्व में यह काम सगठित रूप से चलने लगा। मेरा भी अधिक समय खादी-प्रचार और राष्ट्रीय शिक्षा-प्रसार में ही लगता रहा। खादी मे दिन-दिन उन्नति होती गई। पर राष्ट्रीय शिक्षा का काम ढीला पडता गया। इसी तरह, दूसरी तरफ कौंसिल-प्रवेश के पक्षपातियो का जोर बढता गया। जितने लोग जेल से निकलते, उनमें बहुतेरे स्वराज्य-पार्टी के कार्यक्रम को ही अधिक पसद करते। राष्ट्रीय शिक्षा में हमलोगो ने आरम्भ से ही एक भारी भूल की थी, वही इसके असफल होने का कारण हुई। हमने बहुत करके सरकारी कालेजो और युनिवर्सिटियो की नकल की थी। पर हमारे पास न इतने साधन थे और न इतना धन था कि हम उनका मुकाबला कर सकते। साथ ही, राष्ट्रीय विद्यालयो में शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियो को सरकारी या गैरसरकारी नौकरियाँ पाने की वह सुविधा भी नही थी जो सरकारी विद्यालयो के विद्यार्थियो को प्राप्त थी। हाँ, हमने एक-दो बातो में कुछ अपनी विशेषता रखी थी। जैसे, सभी राष्ट्रीय सस्थाओ के विद्यार्थियो के लिए चरखा चलाना अनिवार्य था। अत उनकी रहन-सहन में भी अन्य विद्यार्थियो से बहुत फर्क पडता था, क्योकि वे सादगी और महात्माजी के सत्य तथा अहिंसा के वातावरण में रहते थे। इसलिए उनका जीवन सादा और चरित्र उज्ज्वल हुआ करता था। कुछ विद्यार्थी ऐसे भी थे,

जिन्होने गवर्नमेंट की युनिवर्सिटियो के मुकावले की विद्वत्ता भी प्राप्त कर ली। पर ऐसे विद्यार्थियो के लिए कोई ऐसा कार्यक्षेत्र नही मिला जहाँ वे पैसे भी कमा सकें और देश का काम भी कर सकें। इसलिए अब केवल ऐसे ही विद्यार्थी आने लगे, जो पहले से देश-सेवा को अपना ध्येय वना चुके थे, अथवा जिनके माता-पिता उनको ऐसे काम में लगाना चाहते थे। सख्या विद्यार्थियो की घटती गई। हमने शिक्षा-पद्धति में भी जव-तव हेर-फेर किया। सरकारी युनिवर्सिटी का अनुसरण छोडकर, जैसा गाधीजी ने आरम्भ में कहा था, हमने सेवक तैयार करने की तरफ अधिक ध्यान अपनी पद्धति में दिया। पर यह काफी न हुआ, दिन-दिन राष्ट्रीय विद्यालयो का ह्रास होता ही गया। वहुतेरे वन्द हो गये। जो चलते रहे वे अधमरे होकर। यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय विद्यालयो को केवल सेवक तैयार करने के काम में लग जाना चाहिए। स्पष्ट भी है कि इस प्रकार के विद्यार्थी, जो देशसेवा को ही अपना ध्येय वना लें, कम सख्या में मिलेंगे। इस तरह, विद्यार्थियो की सख्या दिन-दिन कम होती ही गई।

हाँ, खादी का काम वढता गया। स्वराज्य-पार्टी ने भी खादी को अपनाया, क्योकि दूसरे दलवालो से उनको मुकावला करना था। खादी ही एक ऐसी चीज थी जो उनको दूसरो से विलगा सकती थी। उस समय खादी महीन और अच्छी वनाने का प्रयत्न किया गया। विक्री भी वढाई गई। विक्री और प्रचार के खयाल से जहाँ-तहाँ खादी-प्रदर्शनी की जाती थी, जिसमें अच्छी-से-अच्छी खादी रखी जाती थी। ऐसे लोग भी, जो काग्रेस से कोई सम्वन्ध नही रखते थे, उस प्रदर्शनी में आते और खादी खरीदते। मै इन प्रदर्शनियो में, विशेष करके बिहार में, वहुत भाग लेता और अपने हाथो से वहुत खादी वेचा करता। उत्पत्ति-केन्द्रो में भी वहुत जाया करता। वहाँ ऐसे-ऐसे दृश्य देखने में आते, जिनसे खादी के प्रति और भी प्रेम तथा उत्साह वढता। हमने इन केन्द्रो में देखा कि गरीव स्त्रियाँ चार-चार, पाँच-पाँच मील की दूरी से, चिथडे पहने हुए, एक चिथडे मे अपना काता हुआ सूत लपेटकर लाती और उसके वदले में कुछ नकद पैसे तथा रूई ले जाती। कही-कही तो दिन-भर यह सिलसिला जारी रहता, केन्द्र के कार्यकर्त्ता सूत तौलकर देने में दिन-भर लगे रहते। यदि किसी दिन इत्तिफाक से रूई घट जाती या पैसे घट जाने से सूत खरीदना वन्द करना पडता तो उन गरीवो का नैराश्यपूर्ण चेहरा देखकर वहुत दुख होता। हमने समझ लिया कि खादी के प्रचार वगैर इन गरीवो का कोई दूसरा सहारा नही हो सकता। जहाँ-कही केन्द्र खोला जाता वहाँ गरीवो के दिल में नई आशा झलकने

लगती। उन दिनो खादी के सम्बन्ध में, खास करके बिहार में, सबसे बडा प्रश्न खादी बेचने का रहता। हम जितनी खादी बेच सकते थे, उससे कही अधिक खादी पैदा कर सकते थे। प्रान्त के बाहर और प्रान्त के भीतर हमारा बहुत समय खादी के बेचने और बिकवाने में ही लगता, क्योकि हम देखते थे कि इसकी बिक्री अगर बढ जायगी तो उत्पत्ति में कोई विशेप कठिनाई नही आयेगी। जो लोग इन बातो को ठीक नही समझते थे, उनको यह आश्चर्य होता था कि हमारा समय कैसे बीतता है। पर हमको अपनी इच्छा पूरी करने के लिए काफी समय नही मिलता था। इस काम में लग जाने पर कौंसिल के झगडे से भी कुछ छुटकारा मिलता। हमने देखा, काग्रेस के अधिकाश लोग चटपटे काम में ही अधिक दिलचस्पी लेते थे। इस तरह के रचनात्मक काम में, जिसमें शात होकर समय लगाना होता, उनका कम जी लगता था।

कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी वाद-विवाद के समय हमलोगो को एक बात की चिन्ता रहती। हम इस बात को जानने के लिए उत्सुक रहते थे कि महात्माजी का क्या विचार है। क्या वह सभी बडे-बडे नेताओ का विरोध, जो हम कर रहे थे, पसद करेंगे ? कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में उनके विचार क्या होगे ? हमारे दिल में सन्देह नही होता था। हमलोगो के दिल में विश्वास था कि वह प्रवेश का विरोध करते ही पर सन्देह इसी बात का होता था कि सभी बडे बडे नेताओ का विरोध करना हमारे लिए उचित था या नही—विशेषकर ऐसी अवस्था में, जब विरोध के कारण काग्रेस के अन्दर इतनी बडी फूट पड गई कि एक दल अलग पार्टी बनाकर काम करने पर उतारू हो गया। महात्माजी के विचारो को जानने का कोई साधन नही था, क्योकि उनसे किसी कैदी को भी जेल में मिलने का मौका नही दिया जाता था, जो छूटने पर किसी को उनके विचार बता सकता। जो लोग कभी उनसे बाजाब्ता मिलने जाते थे, उनसे वह कभी कुछ कहते नही, क्योकि जो बात कहने का उनको बाजाब्ता अख्तियार न था उसे किसी तरह कभी इशारे से भी कह नही सकते थे। पहले-पहल हमलोगो को कुछ पता तब लगा जब श्रीशकरलाल बैंकर, जिनको 'यग इडिया' के प्रिंटर तथा पब्लिशर की हैसियत से महात्माजी के साथ ही उसी मुकदमे में दो साल की सजा मिली थी, अपनी मीयाद पूरी करके बाहर निकले थे। अब हमलोगो को यह जानकर बडा सतोप हुआ कि महात्माजी के कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी विचारो में कोई परिवर्त्तन नही हुआ था।

जिस समय दिल्ली के विशेप अधिवेशन में मौलाना महम्मद अली ने समझौते की बात पेश की, हमलोग उसे बिल्कुल नापसद करते थे।

श्रीराजगोपालाचार्य उस समय तक हम अपरिवर्तन-वादियो का नेतृत्व कर रहे थे। वह जान-बूझकर दिल्ली-काग्रेस में नही आये। सरदार वल्लभ भाई पटेल और मैं इस समझौते से बहुत दुखी थे। पर हम लोगो के सामने दूसरा कोई चारा नही था। हमने मजबूरी उस प्रस्ताव को मान लिया, क्योंकि हमने सोचा कि हम अगर इसको नही मानते तो एक और चोटी का नेता हमारा विरोधी हो जायगा। मौलाना मुहम्मद अली का निजी विचार विल्कुल खिलाफ था। पर उन्होने स्वराजियो को, विना काग्रेस का नाम लिये कौंसिल में जाने की इजाजत दे दी। जो भाषण उन्होने किया उसमें उन्होने, कौंसिल मे जाने से जितनी बुराइयाँ हो सकती थी, सभी वताईं। अन्त में यह भी कहा कि यह सब होते हुए भी अगर कुछ लोग उस घृणित काम को करना ही चाहते है तो उन्हे करने दो, मरने दो। उस विषय पर वातचीत के समय उन्होने एक बात और कही जिसका असर हमारे बहुतेरे लोगो पर पडा था। उन्होने यह कहा कि कही से उनको बे-तार के तार से खवर आई है कि इस झगडे को खतम करना चाहिए—जो जाना चाहते है उनको जाने देना चाहिए। लोगो ने समझा कि उनका इशारा महात्माजी की तरफ था। इसलिए भी लोगो ने उनकी बात मान ली। पर पीछे मालूम हुआ कि कोई ऐसी बात नही थी।

चौदहवाँ अध्याय

१९२४ के आरम्भ से ही मै उस मुकदमे में हाइकोर्ट में काम करने लगा, जिसमें मैंने १९२० में काम किया था और जो इस वक्त हाइकोर्ट में अपील की शक्ल में पेश हुआ था। जिला-अदालत में हमारे मुअक्किल हार गये थे। असहयोग शुरू करने के पहले मैंने उनको वचन दे दिया था। अपने सब मित्रो से भी कह दिया था कि इस मुकदमे में जब जरूरत पडेगी तब मै काम कर दूंगा। इस बीच में, मुझे जहाँ तक याद है, मैंने एक बार हाइकोर्ट में काम किया था—जब प्रतिपक्षी हमारे मुअक्किल की सभी जायदादो पर दखलदिहानी कराना चाहता था। अब, जब अपील पेशी में आई तब, मुझे विशेषकर इसलिए काम करना पडा कि हमारे मुअक्किल पहली अदालत में हार गये थे। यदि वह अपील में न जीतते तो सर्वस्व खो बैठते। मेरा उनका उस वक्त से सम्बन्ध था जब मै पढ रहा था। इङ्गलैंड भागकर मेरे जाने के समय उन्होने कुछ पैसो से मेरी मदद की थी। वकालत शुरू करते ही एक वही धनी लोगो में से थे, जिन्होने हाइकोर्ट के अपने सभी मुकदमो में मुझे वकील मुकर्रर कर लिया था। जब यह मुकदमा उनपर चलाया गया तब आरम्भ से मुझे इसमें लगा रखा था। मै अपना धर्म समझता था कि मुझसे जो कुछ हो सके, उनके लिए कर देना चाहिए—विशेषकर जब वह कठिनाई में थे। इसलिए मैंने अपील में काम करना शुरू कर दिया था।

अभी बहस के आरम्भ हुए चन्द ही दिन बीते थे कि समाचार-पत्रो से मालूम हुआ, महात्मा गाधीजी जेल मे बहुत बीमार पड गये है और पूना के अस्पताल में ले जाकर उनके पेट में चीरा लगाया गया है। बडी चिन्ता हुई। मैंने पूना जाने का निश्चय किया। दो-चार दिनो की छुट्टी लेकर रवाना हो गया। पूना पहुँचकर मैंने अस्पताल में महात्माजी से मुलाकात की। बहुत कमजोर थे, पर कोई खतरा जिन्दगी का नही था। मुझे देखकर वह बहुत

खुश हुए। पर, मैंने उनकी उस कमजोरी की हालत में कोई वातें करना मुनासिव नही समझा। अगर मैं चाहता भी तो शायद वह किसी राजनीतिक विषय पर खुद वातें नही करते; क्योकि वह अभी तक कैदी थे। मैं मुलाकात करके वापस चला आया। उधर गवर्नमेंट ने उनको रिहा कर दिया। अच्छे होने तक वह पूना में ही रहे। पीछे 'जूहू' में, समुद्र के किनारे, स्वास्थ्य-लाभ के लिए, चले गये। ज्योही वह राजनीतिक विषयो में भाग लेने के योग्य हुए कि उन्होने कौंसिल-सम्वन्धी वाद-विवाद में हमलोगो के पक्ष का समर्थन किया। पर, साथ ही, यह भी कह दिया कि उनका यह उस समय का विचार था, अव वह देशवन्धु दास और पडित मोतीलाल नेहरू से भेंट होने के वाद ही अन्तिम राय कायम करेंगे।

मै तो मई के आखिर तक उस मुकदमे में ही लगा रहा। इस वीच में महात्माजी की वातचीत लोगो से हुई। उन्होने एक प्रकार का समझौता करना चाहा, जिसका साराश यह था कि स्वराज्य-पार्टी कौंसिल का काम जैसा करना चाहती है वैसा करे, पर काग्रेस के रचनात्मक काम में भी वह सहायता दे। रचनात्मक कार्यक्रम का मुख्य काम खादी-प्रचार था। इसलिए उन्होने प्रस्ताव किया कि सभी लोगो को चरखा चलाना और काग्रेस का चन्दा सूत के रूप में देना चाहिए। इस चीज को वे लोग मानने को तैयार नही थे, क्योकि सवका चरखे में पूरा विश्वास नही था। वहुतेरे तो चरखा चलाने में समय की वरवादी मानते थ। वहुतेरो के दिल में तो यह भी सन्देह था कि इस प्रकार से यदि काग्रेस का चन्दा अपने हाथ के कते सूत के रूप में ही देने का नियम हो गया तो काग्रेस चरखावालो के ही हाथ में चली जायगी और वे न मालूम स्वराज्य-पार्टी के साथ क्या वर्त्ताव करेंगे।

इन्ही सव वातो पर विचार करने के लिए अखिल-भारतीय कमिटी की वैठक हुई, जिसमें महात्माजी ने अपना प्रस्ताव उपस्थित किया। स्वराज्य-पार्टी के नेताओ ने इसका विरोध किया, तो भी थोडे वोटो मे महात्माजी का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। पर उन्होने इस जीत को अपनी हार वताया और 'यग इडिया' में वहुत ही मर्मस्पर्शी लेख लिखा। इसके वाद वह इस फिक्र में लग गये कि स्वराज्य-पार्टी के साथ किस तरह समझौता हो। अन्त में एक समझौता हुआ। पटना में अखिल-भारतीय काग्रेस की फिर वैठक हुई। समझौते के साथ-साथ अखिल-भारतीय चरखा-सघ की स्थापना हुई, जो काग्रेस द्वारा प्रमाणित—पर अपने कारवार में स्वतन्त्र—सस्था मानी गई। काग्रेस का जो कुछ धन खद्दर-वोर्ड में लगा था वह सव चरखा-सघ के सुपुर्द कर दिया गया। इस समझौते का साराश यह हुआ कि काग्रेस के एक प्रकार से

दो विभाग मान लिये गये—एक कौंसिलो में काम के लिए जिसका सचालन स्वराज्य-पार्टी के हाथ में दे दिया गया और दूसरा रचनात्मक काम के लिए जो गाधीजी के हाथ में रहा। जिन लोगो को कौंसिलो म जाने और उस सम्बन्ध में कोई मदद करने में नैतिक कठिनाई मालूम पडती उनको अधिकार दिया गया कि वे तटस्थ रह सकते हैं, पर दूसरे जो मदद करना चाहते है वे मदद दे सकते है, और जो स्वय खडा होना चाहते है वे उम्मीदवार भी बन सकते है। स्वराज्य-पार्टी के लोगो ने वादा किया कि कौंसिल के अन्दर अथवा बाहर, उनसे जहाँ तक हो सकेगा, रचनात्मक कार्यक्रम की मदद करेंगे। बेलगाँव में उस साल काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था। महात्माजी उसके सभापति हुए। उक्त समझौता वही मजूर किया गया।

अखिल-भारतीय कमिटी की उक्त सभा में, जिसमें अपने प्रस्ताव को मजूर के बाद भी महात्माजी ने अपनी हार मानी थी, एक ऐसी घटना हुई जो बहुत कटुताजनक थी और जिसकी छाप भी बहुतो के दिल पर बहुत गहरी पडी। महात्माजी इसी प्रस्ताव के सम्बन्ध में कुछ कह रहे थे। एक सदस्य ने बीच में कुछ कहकर छेडछाड की, जिसका असर उनके दिल पर इतना पडा कि बोलते-बोलते उनकी आवाज भर्रा आई। कुछ देर के बाद वह बिल्कुल चुप हो गये। उनकी आँखो से आँसू टपकने लग गये। मैंने ऐसा एक दृश्य और भी देखा था, जिसका जिक्र पहले एक जगह कर चुका हूँ। महात्माजी की यह अवस्था देखकर उस सभा में बहुतेरे लोग विकल हो गये। बहुतो की आँखो से आँसू बहने लगे। महात्माजी के विकल होने का एक कारण यह भी था कि जिस सज्जन ने छेडखानी की थी वह महात्माजी के विश्वासपात्रों में थे। उनको इस बात की चोट अधिक थी कि एक ऐसे आदमी ने इस तरह की बात क्यो उठाई। वह बेचारे भी बहुत दुखी हुए। उन्होने बहुत माफी माँगी। महात्माजी इस घटना के पहले से ही बहुत प्रभावित थे, क्योकि उस प्रस्ताव के थोडे वोटो से पास हो जाने के बाद स्वराज्य-पार्टी के लोग देशबन्धु दास और प० मोतीलाल नेहरू के साथ सभा छोडकर चले गये थे। सभा में ऐसे ही लोग रह गये थे जिनके सम्बन्ध में यह समझा जाता था कि वे महात्माजी के साथ है। यह बैठक अहमदाबाद में हुई थी। इन सभी बातो का यह नतीजा हुआ था कि गाधीजी ने अपनी जीत को हार माना और अधिक जोरो से इस प्रयत्न में लग गये कि किसी-न-किसी तरह आपस के झगडे को खत्म करके स्वराज्य-पार्टी के साथ कोई समझौता कर ही लेना चाहिए। हमने देखा, अगर महात्माजी चाहते और जोर लगाते तो काग्रेस स्वराज्य-पार्टी के साथ नही जाती और स्वराज्य-पार्टी के लोगो को

कांगेस से अलग होकर ही काम करना पडता । पर वह जहाँ अपने विचारो में दृढ रहना चाहते थे वहाँ दूसरे के विचारो का भी पूरा आदर करते थे । अब, जब उन्होने यह देख लिया कि देशबन्धु दास और पडित मोतीलाल नेहरू-जैसे लोग अपने विचार में दृढ रहना चाहते है, तो उन्होने विरोध छोड दिया—उनके कामो में, अपने विचार पर डटे रहकर भी, कांग्रेस-जनो को, जो चाहते थे उनको ही, स्वराज्य-पार्टी की मदद करने की इजाजत दे दी । इससे उनकी महत्ता और भी स्पष्ट सर्वोपरि हो गई । इससे भी बढकर दूसरा उदाहरण १९४७ में देखने में आया, जिसका जिक्र आगे प्रसगानुसार किया जायगा ।

महात्माजी के जेल चले जाने के बाद हिन्दू-मुसलमानो में जो मेल देखा गया था, उसमें कमी आने लगी । जो लोग कांग्रेस और खिलाफत-कमिटी में थे उनमें तो कोई विशेष अन्तर अभी देखने में नहीं आया था, पर जन-साधारण में एक दूसरे पर सन्देह की आग आहिस्ता-आहिस्ता सुलगने लगी । मैं ऊपर बता चुका हूँ कि मलाबार के मोपलो के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें किस तरह कही जाने लगी थी । इसमें सन्देह नही कि कारण चाहे जो भी हो, मोपलो ने कुछ हिन्दुओ के साथ ज्यादतियाँ की थी । पर वे बातें बहुत बढा-चढ़ा कर और-और जगहो में कही गई । हिन्दुओ के दिल में यह भावना उठने लगी कि मुसलमानो को, उनके खिलाफत के मामले में सहायता देकर, गाधीजी ने और उनके नेतृत्व में काम करनेवाले दूसरे हिन्दू नेताओ ने भारी भूल की—इन लोगो के ही कारण मुसलमानो में इतनी जागृति हुई और उस जागृति का ही यह नतीजा है कि वे इस प्रकार से हिन्दुओ के साथ ज्यादती करने लगे । जो लोग अधिक समझदारी से बातें करने का दावा रखते थे, वे यह भी कहने लगे कि इस्लाम कट्टरपथी सिखलाता है, और चूकि सारा खिलाफत-आन्दोलन धार्मिक आन्दोलन था, इसलिए उसका एक ही नतीजा हो सकता था—वह यह कि मुसलमानो में कट्टरपन बढे । इस कट्टरपन का ही नतीजा मलाबार में हिन्दुओ को जबरदस्ती मुसलमान बनाने और एकमात्र हिन्दू होने के कारण उनके घर-बार लूटे जाने के रूप में देखने मे आया । दूसरी ओर, मुसलमानो का कहना था कि मलाबार की बातें बहुत बढा-चढा कर, हिन्दुओ में मुसलमानो के विरुद्ध भावना जाग्रत करने के लिए, कही गई है, अगर कही मुसलमानो ने किसी हिन्दू के साथ ज्यादती की तो इसलिए नही कि वह हिन्दू था, बल्कि इसलिए कि उसने मोपलों के खिलाफ ब्रिटिश गवर्नमेंट की मदद की । अली-बन्धुओ का कहना था कि कांग्रेस और हिन्दुओ के कारण मुसलमानो में जागृति नही हुई है; उस जागृति का कारण

उनके धार्मिक एतकादो पर ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जो अपनी नीति से गहरी चोट की थी वह था, यदि काग्रेस या गाधीजी कोई भी उनका साथ न देता तो भी वे इस विषय को लेकर ब्रिटिश गवर्नमेंट से जरूर लडते—चाहे उस लडाई का तरीका कोई दूसरा भी होता और उसका नतीजा भी चाहे जो कुछ हुआ होता, काग्रेस और हिन्दुओ ने जो मदद की थी उसके लिए वे कृतज्ञ जरूर थे, पर हिन्दुओ और काग्रेस को भी यह नही भूलना चाहिए कि मुसलमानो के आ जाने से उनकी भी शक्ति कितनी बढ गई और वे इस योग्य हो गये हैं कि ब्रिटिश गवर्नमेंट से लोहा लेने को तैयार है।

१९१९ में, दिल्ली में जलियाँवाला-बाग में और अनेकानेक जगहो में हिन्दू और मुसलमान के खून एक साथ बहे थे। दोनो ने मिलकर ब्रिटिश गवर्नमेंट का मुकाबला किया था। जलियाँवाला-बाग के बाद तो दोनो की मेल-मुहब्बत इतनी बढ गई कि मालूम होता था, अब यह एकता कभी टूटेगी ही नही। पर एक स्थान पर दुर्घटना होने से आहिस्ता-आहिस्ता उस दूध और पानी के मेल में खटाई पड गई। यद्यपि उसका असर तुरत देखने में नही आया, तथापि थोडे ही दिनो के बाद स्पष्ट दीखने लगा। इसका सबसे पहला और सबसे नुमायाँ उदाहरण, १९२२ में महात्माजी के जेल जाने के पाँच-छ महीने के अन्दर ही, मुलतान में देखने आया। वहाँ मुसलमानों की आबादी बहुत है, हिन्दुओ की कम। मुसलमानो ने मुहर्रम में बहुत धूम-धाम से ताजिया का जुलूस निकाला। बस हिन्दुओ से झगडा छिड गया। नतीजा यह हुआ कि बहुतेरे निरीह हिन्दू मारे गये, बहुतो के घर लूटे और जलाये गये। नाना प्रकार के अत्याचार उनके साथ किये गये। मुसलमानो का कहना था कि हिन्दुओं ने ताजिया की बेहुर्मती की—उस पर ढेले और पत्थर फेंके, जिससे मुसलमानो में उत्तेजना हुई, तब उन्होने बलवा-फसाद किया। हिन्दुओ का कहना था कि उनके इस तरह के पागलपन की कार्यवाही करने की कोई जरूरत नही थी और न वे ऐसा कर ही सकते थे, क्योकि उनकी ओर से लडाई करने की कोई तैयारी नही थी, मुसलमान शहर के और बाहर के बहुत बडी सख्या में हथियार बन्द होकर—जैसा ताजिया के जुलूसो में हुआ करता है—जुलूस में शरीक थे, हिन्दू ऐसे बेवकूफ और नासमझ नही थे कि ऐसे जुलूस के साथ छेडछाड करते, मुसलमान हिन्दुओ को लूटने-पाटने के लिए तैयार आये थे, अत उन्होंने ताजिया पर ढेला-पत्थर फेंकने का केवल एक बहाना बनाकर लूट-मार शुरू कर दी थी।

काग्रेस और खिलाफत के लोगो का कहना था कि इसमें न हिन्दुओ का कसूर था और न मुसलमानो का, ब्रिटिश गवर्नमेंट ही हिन्दू-मुसलिम

एकता देखकर घवरा गई थी; उसीके कर्मचारियो ने यह झगडा करा दिया। हो सकता है कि ढेला-पत्थर ताजिया पर, जैसा मुसलमान कहते थे, फेंका गया हो, पर हिन्दुओ ने नही फेंका था, यह काम गवर्नमेंट के आदमियों की तरफ से किया या कराया गया था। उन्होंने ही मुसलमानो में उत्तेजना पैदा कर हिन्दुओ को लुटवाया, पिटवाया और मरवाया। उस समय वहाँ के डिप्टी कमिश्नर मि० एमर्सन थे। वह वहुत होशियार और चालवाज अफसर समझे जाते थे। वहुत लोगो का तो कहना था कि इस फसाद की जड में वही थे। उनकी तरक्की भी पीछे वहुत हुई। वह थोडे ही दिनों के वाद गवर्नमेंट-आफ-इडिया में होम-सेक्रेटरी और वाद में पजाव के गवर्नर भी हो गए।

जो भी हो, इसमें शक नही कि हिन्दुओं के साथ वहुत ज्यादती हुई थी। जव इसकी खबर मिली तव हकीम अजमल खाँ के साथ, जो कांग्रेस के सभापति थे, पण्डित मदनमोहन मालवीय, सेठ जमुनालाल वजाज, श्री प्रकाशग् आदि, और मैं भी, मुलतान गये। वहाँ स्टेशन पर उतरते ही हमलोगो को मालूम हो गया कि हिन्दू और मुसलमानो के वीच वहुत वडा मनमुटाव हो गया है। अव वे इसी वात पर झगडने लग गये कि हमलोग कहाँ ठहराये जायें। हिन्दू समझते थे कि हमलोग अगर मुसलमानो के प्रवन्ध में ठहराये गये तो केवल मुसलमानो की ही वात सुनकर हम अपनी राय कायम कर लेंगे और मुसलमानो को निरपराध मान लेंगे। उसी तरह मुसलमान समझते थे कि हम अगर हिन्दुओ के इन्तजाम में ठहराये गये तो हिन्दुओ की वात सुनकर हम मुसलमानो को ही अपराधी मान लेंगे। किन्तु, हमलोग अपराध की जाँच करके दोषी निर्धारित करने के लिए ही वहाँ नही गये थे, वल्कि दुखियो को सान्त्वना देने और आपस के फटे हुए दिलो को फिर से जोडने के लिए गये थे। हमने फैसला किया कि हमें दो दलो में वाँटकर एक को हिन्दू ठहरावें और दूसरे को मुसलमान। मै हकीम अजमल खाँ के साथ एक मुसलमान नवाव के यहाँ ठहरा। दूसरे लोग मालवीयजी के साथ किसी हिन्दू के वगीचे में ठहरे।

हम सव साथ मिलकर उन स्थानो को देखने गये जिनको मुसलमानो ने लूटा-खसोटा और जलाया था। उन हिन्दू पुरुषो और स्त्रियो से भी मुलाकात की, जिनके घर के लोग मारे गये थे। दृश्य वहुत ही दुखदायी था। घर के जो सामान न लूट ले जा सके, उन्हे इकट्ठा करके आग लगाकर जला दिया था। जहाँ आग नही लगाई वहाँ सव चीजो को एक-एक करके तोड डाला था। यहाँ तक कि गेहूँ पीसने की चक्की और मसाला पीसने के सिल-

बट्टे को भी नही छोडा था। एक जगह तो मैंने यह भी देखा कि एक पीजडे को, जिसमें तोता पाला गया था, तोते के साथ ही घर के जलते हुए सामान की आग में डाल दिया था। स्त्रियो ने रो-रोकर अपने दुखडे सुनाए। इसका इतना प्रभाव पडा कि हकीम अजमल खाँ की आँखो में आँसू आ गये, हम हिन्दुओ के दिल पर तो बडा गहरा असर पड ही रहा था। डिप्टी कमिश्नर से भी हम लोगो की मुलाकात हुई। मालवीयजी ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि अपराधियो को कडा दड मिलना चाहिए। यह बात मुझे खटकती थी, पर वहाँ कोई दूसरा चारा नही था। पहले हमलोगो ने हिन्दुओ और मुसलमानो की अलग-अलग सभाएँ की। दोनो को हकीम साहब ने और मालवीयजी ने समझाया। पीछे दोनो को मिलाकर सभाएँ हुई। इससे कुछ हद तक दोनो में वैर-भाव कम हुआ। हमलोगो के वहाँ जाने का असर अच्छा हुआ। वहाँ कुछ शान्त वातावरण छोडकर हमलोग वापस आये। मालवीयजी ने वहाँ भी एक बात कह दी थी कि हिन्दुओ के सगठित न होने के कारण ही उनके साथ इस प्रकार की ज्यादती हुई है, अत उनको अब सगठित हो जाना चाहिए। इस बात को उन्होने बडी खूबी के साथ कहा, जिससे हिन्दू-मुसलमान-वैमनस्य बढने की आशका पैदा नही होती थी और न कोई यही कह सकता था कि हिन्दुओ का सगठन मुसलमानो से लडने के लिए या उनके विरुद्ध किया जायगा।

मुसलमानो में वातावरण कुछ सुधर गया। पर यह बात छिपी न रही। दूसरी जगहो के हिन्दुओ में भी कुछ आवेश पैदा हुआ। हिन्दुओ को सगठित करने की आवश्यकता महसूस की गई। थोडे ही दिनो के बाद गया में काग्रेस होनेवाली थी। कुछ हिन्दुओ ने हिन्दू-सभा करने का विचार किया। पूज्य मालवीयजी को सभापति बनाने का निश्चय हुआ। मालवीयजी ने सभापति होना इस शर्त पर मजूर किया कि मै भी उस सभा में शरीक होऊँ और उनको निमत्रण दू। मैंने इस बात को मजूर कर लिया, क्योकि मुझे इसमें कोई बुराई नजर नही आई। पीछे, जब हिन्दू-सभा का काग्रेस के साथ मतभेद हुआ तब, मालवीयजी ने इस बात की मुझे याद दिलाई—कहा कि मेरे कहने पर ही उन्होने गया में सभापति होना स्वीकार किया था। जो हो, सभा सफलतापूर्वक गया में समाप्त हुई। मुख्य बात, वहाँ हिन्दुओ का अलग सगठन करना तय हुआ।

स्वामी श्रद्धानन्दजी ने मालवीय राजपूतो को—जो मुसलमान तो हो गये थे, पर जिनके बीच अब भी हिन्दू-सस्कृति के चिह्न मौजूद थे और हिन्दुओ के रस्म-रिवाज को बहुत बातो में मानते थे—शुद्ध करके हिन्दू

बनाने का प्रयत्न आरम्भ किया। मुसलमान तो चाहे किसी भी दल और विचार का क्यो न हो, किसी हिन्दू को मुसलमान बनाना बुरा नही मानता, पर स्वामी श्रद्धानन्दजी के शुद्धि-आन्दोलन के कारण उनसे मुसलमान बहुत बिगड गये—उनके जानी दुश्मन तक हो गये। जहाँ-तहाँ हिन्दू-मुसलिम बलवा भी होते ही रहे। नतीजा यह हुआ कि आपस का द्वेष बढने लगा।

स्वामी श्रद्धानन्द, १९१९ में, जब दिल्ली मे रौलट-कानून के विरुद्ध आन्दोलन में मुसलमान भी शरीक थे, पुलिस की बन्दूको के सामने सीना खोलकर खडे हो गये थे। उस वक्त वह मुसलमानों में इतने लोकप्रिय हो गये थे कि मुसलमानो ने उनको जामामस्जिद के अन्दर खडे होकर भाषण करने के लिए बाध्य किया था। वही स्वामीजी इस शुद्धि-आन्दोलन के कारण मुसलमानो के सबसे बडे दुश्मन समझे जाने लगे। अन्त में, १९२६ के दिसम्बर में, एक मुसलमान के हाथ से उनकी हत्या भी हो गई। यह हत्या कई वर्षों के बाद हुई। पर इसके लिए वायुमडल १९२३ से ही तैयार होने लगा था।

महात्माजी ने जेल से निकलने पर एक तरफ कांग्रेसियो में कौंसिल के प्रश्न पर मतभेद देखा और दूसरी तरफ यह देखा कि जो हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य इतने लोगो के परिश्रम तथा त्याग के बल से उन्होंने स्थापित किया था वह हिन्दू-मुसलिम दगो की लहर में नस्त नाबूद हो गया। उसी साल एक भारी दगा कोहाट में हो गया था, जिसमें हिन्दुओ के साथ बड़ी ज्याद-तियाँ हुई थी। महात्माजी का अली-बन्धुओ पर अटल विश्वास था। वे दोनो भी महात्माजी के प्रति वैसी ही श्रद्धा रखते थे। कोहाट के झगडे के सम्बन्ध में महात्माजी ने मौलाना शौकत अली के साथ जाँच करने का निश्चय किया। किन्तु दोनो एक राय पर नही पहुँचे, मतभेद हो गया। महात्माजी बहुत ही गम्भीर पुरुष थे। कभी अपने मुँह से किसी की शिकायत भरसक नही किया करते थे। इस मौके पर भी उन्होने नही किया। पर यह बात स्पष्ट हो गई कि अबतक जैसा एक दूसरे के साथ अटूट और अटल विश्वास का सम्बन्ध था वह अब नही रह गया! किन्तु इस बात को उन्होने जाहिर नही होने दिया। काम साधारणतया, जैसा पहले चलता था, चलता रहा।

इन झगडो से महात्माजी कुछ इतने ऊब गये कि उन्होने सोचा, इनको रोकने के लिए कोई बहुत बडा कदम उठाना आवश्यक हो गया है। अभी चन्द ही महीने पहले वह भारी बीमारी से, जिसमें उनके पेट में चीरा लगा था, उठे थे। पर उन्होने जान की परवा न करके इक्कीस दिनो का उपवास

करने का निश्चय कर लिया। इस निश्चय के समय वह दिल्ली में थे। वहाँ मौलाना मुहम्मद अली के घर में, उनके ही अतिथि होकर, ठहरे हुए थे। वही उन्होने उपवास करने का विचार स्थिर किया। मौलाना मुहम्मद अली और दूसरे बहुत-से लोगो ने इस विचार को रोकने का बहुत प्रयत्न किया। पर वह अपने विचार पर अटल और दृढ रहे। आखिर उपवास वही पर आरम्भ कर दिया। मौलाना मुहम्मद अली उस समय काग्रेस के प्रेसिडेंट थे। इस उपवास की खबर छपते ही सारे देश में चिन्ता की लहर-सी दौड गई। मौलाना मुहम्मद अली ने सभी दलो और धर्मों के प्रतिनिधियो की एक कान्फ्रेंस बुलाई। उसमें काग्रेस के अलावा हिन्दू, मुस-लिम, ईसाई, पारसी, सिक्ख, सभी सम्प्रदायो के प्रतिनिधि उपस्थित हुए। क्रिस्तानो के सबसे बडे पादरी—कलकत्ता के लार्ड-बिशप—भी कान्फ्रेंस में आये। कई दिनो तक बहस हुई। अन्त में, आपस के इतने झगडे के जो कारण हुआ करते थे—जैसे शुद्धि, गाय की कुर्बानी, मस्जिदो के सामने बाजा इत्यादि—उन सभी पर प्रस्ताव स्वीकृत हुए। महात्माजी को इससे सतोष हुआ। उन्होंने २१ दिनो के उपवास का जो व्रत लिया था उसे पूरा करके ही उपवास समाप्त किया।

मै उपवास आरम्भ होने के एक ही दो दिनो के बाद दिल्ली पहुँच गया था। महात्माजी मौलाना मुहम्मद अली के घर में ही थे। दो-तीन दिनो के बाद वह शहर से बाहर एक कोठी में ले जाकर रखे गये। उपवास के बाकी दिन उन्होने वही बिताये। मै दूसरी जगह ठहरा था। पर प्राय सारा दिन, और रात का भी कुछ अश, वहीं बिताया करता था। महात्माजी की दृढता, ईश्वर पर भरोसा और अपने निर्धारित कार्यक्रम में तत्परता का जैसा उदाहरण वहाँ देखने में आया वैसा मैने पहले कभी नहीं देखा था।

महात्माजी का एक नियम था कि वह रोज चरखा चलाया करेंगे। इन इक्कीस दिनो के उपवास में भी उन्होने चरखा चलाना एक दिन भी नही छोडा। उपवास के कुछ दिन बीत जाने के बाद वह इतने कमजोर हो गये थे कि अपने से उठना-बैठना भी असम्भव हो गया था। तो भी चारो तरफ तकिया लगाकर, तकिये के सहारे, वह बैठा दिये जाते और अपने नियम के अनुसार चरखा कात लिया करते। अन्त में, जिस दिन उन्होने उपवास समाप्त किया उस दिन भी, चरखा चलाने के बाद ही उन्होने उपवास समाप्त किया। प्रार्थना तो नियत समय पर प्रतिदिन सुबह-शाम हुआ ही करती थी। पूज्य मालवीयजी कुछ देर के लिए प्रतिदिन श्रीमद्भागवत की कथा सुनाया करते थे। ईश्वर पर उनका बडा अटल विश्वास था। इस बात को वह

मानते थे कि ईश्वर को अगर उनसे कुछ और काम लेना होगा तो वह उपवास की अवधि को सकुशल समाप्त करा देगा। डाक्टर अंसारी उनको बराबर देखा करते। पेशाब वगैरह भी जाँचा करते। उनका विचार था, और उपवास आरम्भ होने के पहले ही उन्होंने महात्माजी से बहुत कहकर यह वचन ले लिया था, कि अगर ऐसा समझा गया कि उपवास के कारण अब उनके जीवन पर खतरा है तो, उस हालत में—चूँकि वह उपवास के कारण मरना नहीं चाहते थे—उपवास तोडकर वह कुछ खाने भी लगेंगे। इसलिए डाक्टर अंसारी इसी खयाल से दिन-भर में कई बार देखते और जाँच करते। पेशाब जाँचने में उनको डर होने लगा कि वह सकट का समय अब निकट आ रहा है। इस बात की सूचना उन्होंने महात्माजी को दी। दूसरे दिन उन्होने साफ-साफ कहा कि अब ठहरना खतरनाक होगा, आज आपको भोजन करना ही चाहिए। महात्माजी ने उनसे कहा—"आपने सब बातें सोच ली है? सब देख लिया है? तब भी आपका यही निश्चित मत है? पर आपकी विद्या में एक बात का जिक्र नही होगा—वह है प्रार्थना! आज-भर मुझे छोड दीजिए। कल अगर ऐसी ही हालत रही तो मैं अपने वचन को पूरा करूँगा, खा लूँगा।" दूसरे दिन, जब डा० अन्सारी ने जाँच करके देखा, वे सब लक्षण जिनसे उन्होंने खतरा समझा था, गायब हो गये थे! उनको खुद इससे बडा आश्चर्य हुआ। इस चमत्कार की बात उन्होंने अपने सभी इष्ट-मित्रों से कही।

महात्माजी ने इसके बाद कई बार इक्कीस दिनों के उपवास किये। पर, चूँकि यह समय पहला था, लोगों को चिन्ता बहुत थी। किन्तु सफलता-पूर्वक उपवास समाप्त हुआ। अब, दिल्ली के सम्मेलन के बाद, वातावरण बहुत सुधरा हुआ मालूम हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा कि आपस के झगडे अब नही होंगे, अगर कही झगडे का सामान देखने में आया भी तो आपस की बातचीत या पंचायत से झगडे का फैसला हो जाया करेगा। परन्तु, जितने उत्साह और खुश-दिली से दिल्ली का सम्मेलन समाप्त हुआ था वह कायम न रह सका। उन फैसलों का जितने जोरों से प्रचार होना चाहिए था, वह भी न हुआ। थोडे ही दिनों के बाद ऐसा मालूम हुआ कि वे फैसले महात्माजी के उपवास-जनित चिन्ता के कारण हुए थे—उनके प्रति वह श्रद्धा की भावना और विश्वास नही था जो उनको हिन्दू-मुसलमानों के दिल में स्थायी स्थान दिलवा सकता। क्षणिक सफलता के कुछ दिनों के बाद फिर आपस के झगडे-बलवा-फसाद जारी हो गये। महात्माजी ने, इस प्रकार बेलगाँव कांग्रेस होने के पहले ही, दो प्रश्नों

का—जो देश को चिन्तित कर रहे थे—हल निकाल कर, बेलगाँव-कांग्रेस की सफलता के लिए वायुमडल तैयार कर लिया।

महात्माजी के उपवास कई बार हुए। वे विशेष कारण से ही हुए। उपवासो के सम्बन्ध में उनका विश्वास अटल था। वह उनको आत्मशुद्धि का अचूक साधन मानते थे। यह भी समझते थे कि किसी विषय में अगर सफलता नही होती तो उसका कारण कुछ अपने में कमी है, जब आत्मशुद्धि से वह कारण दूर हो जायगा तब कार्य-सिद्धि अवश्य हो ही जायगी। जो लोग गहराई में पहुँचकर उनकी विचारधारा को नही समझ पाते थे—और देश के अधिकाश लोग ऐसे ही थे—वे यह समझते थे कि महात्माजी दूसरो पर दबाव डालकर कार्य सिद्ध कराने के लिए उपवास करते है। किंतु उनके उपवास का दबाव दूसरो पर, जो उनके साथ प्रेम रखते थे, प्रेम का ही पडता था। हाँ, जो विरोधी थे, उनपर प्रेम का दबाव तो पड ही नही सकता था। पर ऐसे लोग शायद लोकमत से, जो उपवास के कारण जाग्रत हो जाया करता था, जरूर डरते थे। जो लोकमत की परवा न करते उन पर कोई विशेष असर देखने में नही आता। पर महात्माजी का विश्वास था कि कोई प्रभाव यदि नही भी देखने में आता है, तो भी दबाव पडे बिना रह नही सकता, क्योकि असल उद्देश्य तो आत्मशुद्धि होती है, वह हुए बिना रह नही सकती। जहाँ-कही दूसरे पर दबाव डालने का प्रभाव पडा, जैसा राजकोट के उपवास के सम्बन्ध में उन्होने बहुत कुछ लिखा था, वहाँ उस उपवास को, कुछ दबाव आ जाने के कारण, उन्होने गलत और असफल बतलाया था—यद्यपि जाहिर तौर पर वह सफल समझा जाता था।

पन्द्रहवाँ अध्याय

इस वक्त से प्राय पाँच वर्षों तक महात्माजी अपना समय विशेषकर रचनात्मक काम में ही लगाते रहे। राजनीति का काम—अर्थात् ब्रिटिश गवर्नमेंट को किस तरह मजबूर किया जाय कि भारत को स्वराज्य दे दे—स्वराज्य-पार्टी के जिम्मे रहा। यद्यपि दिल्ली की असेम्बली में स्वराज्य-पार्टी का बहुमत नही था, तो भी और-और दलो के लोगो के साथ मिलकर उसने अपने कार्यक्रम में सफलता पाई; क्योंकि बजट को नामजूर करके वायसराय को वह मजबूर कर सकी कि वह अपने विशेषाधिकारो से काम लें। पर स्वराज्य-पार्टी के अन्दर भी कुछ मतभेद देखने में आये। वह मतभेद इस बात में कि कौंसिलो के अन्दर एकबारगी और पूर्ण असहयोग किया जाय, अथवा जहा असहयोग के लिए ब्रिटिश गवर्नमेंट की नीति मजबूर करे वहाँ तो असहयोग किया जाय—पर जहाँ देश-हित के लिए ब्रिटिश गवर्नमेंट की नीति मौका दे वहाँ सहयोग भी किया जाय। पडित मोतीलाल नेहरूजी, देशबन्धुदास की मृत्यु के बाद, स्वराज्य पार्टी के नेता थे। वह असहयोग के पूरे पक्षपाती थे। स्वराज्य-पार्टी का जन्म भी इसी प्रकार के असहयोग के लिए हुआ था। तब से अब तक उस पार्टी के लोग असहयोग की ही दुहाई दिया करते थे। पर, कुछ दूसरे लोग, जिनमें महाराष्ट्र के कुछ लोग प्रमुख थे, प्रतिक्रियात्मक असहयोग के पक्ष में आवाज उठाने लगे। इस कारण, आपस में कटुता भी हो गई। अन्त में, स्वराज्य-पार्टी ने, और उसकी सलाह से कांग्रेस ने भी, यह निश्चय किया कि स्वराज्य-पार्टी के लोग कौंसिल से निकल आवें। वे लोग निकल भी आये। थोडे ही दिनों के बाद फिर चुनाव होनेवाला था। इस चुनाव में स्वराज्य-पार्टी ने, केवल अपने नाम से ही नही—बल्कि कांग्रेस के नाम पर भी, भाग लिया। इसलिए, कुछ अधिक सफलता भी हुई। पर इस चुनाव में, हिन्दू-मुस्लिम दगो के कारण जो वैमनस्य हो गया था उसका नतीजा यह हुआ कि प० मदनमोहन मालवीय

और लाला लाजपतराय जैसे प्रमुख लोग, काग्रेस के विरोध में, हिन्दू-सभा की ओर से, चुनाव लडे। जो प्रति-क्रियावादी असहयोग के पक्षपाती थे वे लोग भी काग्रेस के विरोध में लडे। पर तो भी उस समय के विधान के अनुसार जो जीत हो सकती थी वह अधिकतर काग्रेस की ही हुई। महात्माजी ने स्वराज्य-दल के लोगों को पूरा मौका दिया कि वे जिस तरह से चाहें अपने कार्यक्रम को चलावें। काग्रेस से भी वे लोग जो काम ले सकते थे उसे लेने का काफी अवसर दिया। नतीजा इसका यह हुआ कि चार-पाँच वर्षों तक कार्यक्रम की आजमाइश करके, प० मोतीलाल आदि भी, कौंसिल को छोडकर, असहयोग-सत्याग्रह के कार्यक्रम में फिर आ गये! यहाँ तक पहुँचने में कई साल लग गये। पर इसके चिह्न १९२५ में ही देशबन्धु दास के जीवन के अन्तिम दिनो मे, देखने में आने लगे थे।

देशबन्धु दास ने स्वराज्य-पार्टी को, जहाँ तक वह अपने कार्यक्रम को चला सकती थी, चलाने का प्रयत्न किया। दो प्रातो में, अर्थात् मध्यप्रदेश और बगाल में, या तो मिनिस्ट्री बनी ही नहीं या (बगाल में) बनी भी तो तोड दी गई। केन्द्रीय असेम्बली में बार-बार बजट नामजूर किया गया। बीच-बीच में गवर्नमेंट ने दमन-चक्र भी खूब चलाया। स्वराज्य-पार्टी उसे रोकने में कुछ सफल न हो सकी। इस तरह, कौंसिल के अदर से असहयोग की न्यूनता स्पष्ट होने लग गई थी। पर देशबन्धु दास ने सोचा था कि स्वराज्य-पार्टी ने अपनी शक्ति दिखला दी है, अगर इसके बाद वह समझौता करने के लिए भी अपनी तत्परता दिखलावे, तो शायद ब्रिटिश गवर्नमेंट बातचीत करके रास्ता निकालने को तैयार हो जाय। उन दिनो इङ्गलैंड में लार्ड बर्केनहेड, जो एक कट्टर कन्जरवेटिव और तेज-मिजाज तथा निडर राजनीतिज्ञ समझे जाते थे, भारत-सचिव हो गये थे। देशबन्धु दास को उनसे बहुत आशा थी। कुछ दिनो के लिए देशबन्धु पटना में ठहरे थे। बातो-ही-बातों में उन्होने मुझसे कहा था कि उनको लार्ड बर्केनहेड से बहुत आशा है पर यदि लार्ड बर्केनहेड ने उनको निराश किया तो फिर उनके सामने महात्माजी के चरखे के सिवा दूसरा कोई साधन नही रह जायगा, अर्थात् गाधीजी के कार्यक्रम को ही फिर उन्हे मानना पडेगा? इस आशा से कि लार्ड बर्केनहेड उनकी बातो पर ध्यान देंगे, उन्होंने एक वक्तव्य निकाला। थोडे ही दिनो के बाद वह बगाल-प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के सभापति हुए। उसमें किये गये उनके भाषण से, समझौता करने की इच्छा टपकती थी। लार्ड बर्केनहेड ने कुछ मीठे शब्दो के साथ, पर साफ-साफ, जाहिर कर दिया कि वह इस तरह का कोई समझौता, जबतक स्वराज्य-पार्टी असहयोग का

कार्यक्रम छोड नहीं देती ह, नही करेंगे । इस बात की चोट देशबन्धु दास को लगी । उनका स्वास्थ्य कई महीनो से गिरता जा रहा था । इसके थोडे ही दिनों के बाद दार्जिलिंग में उनकी मृत्यु हो गई ।

जैसा ऊपर कहा गया है, उनकी मृत्यु के बाद, प० मोतीलाल नेहरूजी के नेतृत्व में, स्वराज्य-पार्टी के अधिकतर लोग असहयोग कायम रखने के पक्ष में हो गये । कुछ लोग प्रतिक्रियात्मक असहयोग के पक्षपाती हो गये । स्वराज्य पार्टी में फूट पैदा हो गई । जो भावना देशबन्धु दास के अन्तिम दिनों में अस्पष्ट देखने में आई वही दिन-दिन दृढ होती गई । १९२८ के अन्त में यह स्पष्ट हो गया कि अब कौंसिलो से काम नही चलेगा, असहयोग को कुछ उग्र रूप धारण करना ही पडेगा ।

इन चार-पाच वर्षों में महात्माजी, जैसा ऊपर कहा गया है, अपना समय विशेष कर रचनात्मक काम में ही लगाते रहे । यहाँ पर रचनात्मक काम का कुछ विवरण देना अच्छा होगा । महात्माजी चरखे और खादी को रचनात्मक कार्यक्रम का मध्यविन्दु अर्थात् केन्द्र मानते थे । १९२४ से खादी-बोर्ड, जो कोकनाडा-काग्रेस के बाद स्थापित हुआ था, इसका काम चलाता रहा । इसके लिए काग्रेस के तिलक-स्वराज्य-फड से काफी पैसे भी मिले थे । जब स्वराज्य-पार्टी के साथ समझौता हो गया तब अखिल-भारतीय चरखा-सघ की स्थापना, अखिल-भारतीय काग्रेस-कमिटी के एक प्रस्ताव द्वारा, की गई । यह समझौते की शर्तों में था कि इस तरह के काम गाधीजी के जिम्मे रहेंगे और स्वराज्य-पार्टी के लोग यथासाध्य मदद किया करेंगे । इसलिए, चरखा-सघ काग्रेस द्वारा स्थापित—पर अपने काम में स्वतन्त्र-संस्था बना । जो कुछ काग्रेस के रुपये या धन खद्दर बोर्ड को मिले थे, सब चरखा-सघ को दे दिये गये । गाधीजी का बहुत समय चरखा-सघ और उसके मातहत सूबे-सूबे के चरखा-सघों के सघठन में लगा । इस काम को बढाने के लिए अधिक रुपयो की जरूरत हुई तो महात्माजी ने दौरा करके रुपये जमा किये । वह स्वय चरखा-सघ के अध्यक्ष थे । उसकी सभी बातो की देखरेख करना और उसे मार्ग दिखलाते रहना उनका विशेष काम रहा । उन दिनो चरखा-स घ की नीति थी कि चरखा बेहतर बनाया जाय जिसमें और भी अच्छी तथा अधिक गति हो, बुनाई का काम भी बढे । इसलिए, इस सम्बन्ध के बहुत-से लेख महात्माजी लिखते रहे, अपने भाषणों में भी बहुत बातें बताते रहे । इसका नतीजा यह हुआ कि बहुत जगहो में चरखे का काम सगठित रूप से चलने लगा । उन सभी जगहो में ऐसे अच्छे-अच्छे कार्यकर्त्ता मिले, जिन्होंने इस सगठन में बहुत सहायता पहुंचाई ।

चरखे की उन्नति कई तरह से देखने में आई। अच्छा-से-अच्छा बारीक सूत बनने लगा। मोटे और बारीक, दोनो प्रकार के, कपडे बहुत अधिक तैयार होने लगे। अच्छे-से-अच्छे नमूने की खादी बनने लगी, जो मिल के बने किसी भी कपडे से मुकाबला कर सकती थी। खादी का शृङ्गार बढाने के लिए कपडे की रँगाई और छपाई भी होने लगी। प्रत्येक खादी-भण्डार और प्रान्तीय शाखा का यह प्रयत्न होता था कि वह अधिक-से-अधिक तथा अच्छी-से-अच्छी खादी तैयार करावे। साथ ही, अपने प्रान्त में अथवा बाहर, जहाँ भी हो सके, बेचकर काम आगे बढावे। इसके सिवा, यह भी कोशिश थी कि खादी मिल के कपडे का, कीमत में भी, मुकाबला कर सके। इसलिए खादी का दाम घटाने का, अर्थात् कम-से-कम खर्च में उसे तैयार करके बेचने का, प्रयत्न सभी केन्द्र और भण्डार करते थे। महीन खादी महँगी पड़ती। मिल के महीन कपडे के मुकाबले उसकी कीमत ज्यादा पडती। पर मोटे कपडे में इतना फर्क नही था। अधिक लोग महीन कपडे ही ज्यादा पसन्द करते। पर वह कम तैयार होता। बिक्री वढाने के लिए और प्रचार के खयाल से जगह-जगह प्रदर्शनी की जाती, जिसमें हर प्रकार की खादी दिखाई और बेची जाती। जो प्रदर्शनी बडे पैमाने पर की जाती उसमें खादी बनाने की विधि भी दिखलाई जाती। काम करनेवाले कारीगर कपास लोढने से आरम्भ करके उटाई, धुनाई, कताई, बुनाई, रँगाई, छपाई इत्यादि की सभी प्रक्रियाएँ दिखलाते। इन कामो के लिए जो नये से-नये यन्त्र जिस-किसी सूबे में तैयार होते, दिखलाये जाते। साबरमती का आश्रम तो इस अनुसधान में लगा रहता कि कौन-सा यन्त्र उन्नत किया जाय—किस तरह सूत इतना बराबर और मजबूत बने कि आसानी से वह बुना जा सके। इन सबके लिए वह आश्रम प्रयोगशाला बन गया था। दूसरी जगहो में भी प्रान्तीय शाखाएँ अपने-अपने क्षेत्र में अनुसधान और प्रयोग का काम करती रहती। फलस्वरूप बहुत किस्म के नये चरखे निकले जिनका मुख्य उद्देश्य था खादी की प्रगति वढाना। इस प्रगति के साथ-साथ सूत की मजबूती, समानता और बारीकी पर भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

कपास की खेती के अलावा रेशमी खादी की भी काफी प्रगति हुई। जहाँ-जहाँ रेशम का काम पहले से कुछ होता था वहाँ वहुत वढ गया, क्योकि रेशमी कपडे की बिक्री का एक अच्छा साधन चरखा-सघ हो गया। विदेशी रेशमी कपडा वहुत प्रचलित था। अब रेशमी खादी, सुन्दरता और कीमत में, विदेशी रेशमी कपडे का वहुत हद तक मुकावला करने लगी। चरखा-सघ की नीति कपास की खादी को अधिक प्रोत्साहन देने की थी, क्योकि उसका

जितना प्रचार हो सकता था उतना रेशमी कपडे का नही । एक तो सब लोग रेशमी कपडा ले नही सकते थे—यदि लेना चाहे भी तो उतना वह पैदा नही हो सकता था कि सभी की जरूरतो को वह पूरा कर सके, दूसरे यह डर भी था कि उसी तरफ अगर अधिक ध्यान गया तो कपास की खादी उपेक्षित हो जायगी—उसमें जितनी प्रगति चाहिए, ध्यान बट जाने के कारण, नही हो सकेगी । तो भी, चूंकि रेशमी खादी से भी गरीबो की वैसी ही सहायता होती जैसी कपास की खादी से, बहुतेरी शाखाओं ने रेशमी खादी की तरफ भी ध्यान दिया । अत काफी और अच्छी रेशमी खादी भी तैयार होने लगी । इससे मोटी खादी की बिक्री में भी प्रोत्साहन मिला, क्योकि अक्सर ग्राहको को जब कुछ अच्छे सुन्दर रेशमी तथा कपास के महीन कपडे दिये जाते तो साथ-साथ कुछ मोटे कपडे भी दे दिये जाते ।

इसी प्रकार, ऊनी खादी भी बनने लगी । इसके लिए विशेष प्रबन्ध कश्मीर में किया गया, जहाँ अभी तक यह कला मिटी नही है । उत्तर-भारत मे, सर्दी के दिनो में, ऊनी कपडा आवश्यक हो जाता है । चरखा-सघ ने खादी पहनेवालो के लिए ऊनी खादी तैयार कराकर अपने भडारो में बेचना आरम्भ कर दिया । इस तरह की खादी में भी काफी प्रगति हुई और इसकी बिक्री बढ गई । और प्रकार की खादी के सिवा, मिल के बने ऊनी कपडे के साथ, अपनी खूबी तथा कीमत में, ऊनी खादी भी बहुत हद तक मुकाबला करती थी । इसलिए इसकी माँग हमेशा बनी रहती । जिस तरह कपास की खादी की बिक्री बढाने के लिए विशेष प्रयत्न करना पडता, उस तरह ऊनी खादी के लिए प्रयत्न की जरूरत नहीं पड़ती ।

खादी के अलावा महात्माजी अस्पृश्यता-निवारण पर भी बहुत जोर दे रहे थे । इस सम्बन्ध में भी काग्रेस के लोग प्रचार किया करते । हरिजन-बस्तियो में जाना, उनके काम में मदद देना, निजी तरीके से छुआछूत न मानना, इस बात का भी प्रयत्न करना कि उनके लिए जहाँ देव-मदिरो में जाना मना था वहाँ उनके लिए मन्दिर खुलवाना—इत्यादि बातें सभी जगह हो रही थी । पर अभी इस काम में उतना जोर नही आया था और न उतनी प्रगति ही हुई थी जितनी कुछ दिनो के बाद हुई । पर इसके लिए भी वायुमण्डल तैयार हो रहा था । महात्माजी जो काम स्वय नही करते थे वह किसी से करने को नही कहते थे । वह एक अछूत कन्या को अपनी कन्या मानकर अपने साथ साबर-मती आश्रम में रखते थे । वही वह पली और सयानी हुई । जबतक उसका विवाह नही हुआ, महात्माजी और 'बा' के साथ ही रही । महात्माजी के चार पुत्र थे, कन्या एक भी नही । इसलिए वह अछूत कन्या ही उनकी कन्या बन गई ।

यह अछूतपन न मालूम कब से हिन्दू-समाज में आ गया था। अलग-अलग स्थानो में इसका अलग-अलग रूप हो गया था। इसका एक रूप तो यह भी है जो बहुत कुछ आज भी वर्तमान है, पर अब आहिस्ता-आहिस्ता कमजोर पडता जा रहा है, या इसका सबसे कमजोर और ठढा रूप कहा जा सकता है। इसमें एक जाति के लोग दूसरी जाति के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार नही करते—अर्थात् उसके साथ बैठकर भोजन नही करते और आपस में विवाह भी नही करते। इसकी भी बहुत शाखा-प्रशाखाएँ हो गई है। केवल ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र—यही चार विभाग नही है, बल्कि इनमें से प्रत्येक के बहुतेरे विभाग बन गये है। कुछ तो देश के कारण, कुछ और कारणो से भी, इनमें एक विभाग का दूसरे विभाग के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं होता। एक विभाग के अन्दर भी बहुतेरे विभाग बन गये है। एक वर्ण का दूसरे वर्ण के साथ तो कोई सम्बन्ध होता ही नही। शूद्रो के साथ तो अन्य तीन वर्णों का कोई सम्बन्ध हो ही नही सकता। उसी तरह, शूद्रो के अन्दर भी बहुत जातियाँ हो गई है, जिनका एक दूसरे के साथ सम्बन्ध नही होता। कुछ जातियो के साथ खान-पान का सम्बन्ध तो नही हो सकता, पर उनके साथ शरीर का स्पर्श मना नही है। कुछ का छुआ हुआ जल ग्रहण किया जा सकता है, पर पकाया हुआ अन्न नही। पकाये हुए अन्न में भी कच्ची-पक्की रसोई का भेद माना जाता है। पर इन चार वर्णो के अलावा भी एक पचम वर्ण है, जिसका शरीर-स्पर्श यदि हो जाय तो शरीर को शुद्ध करने के लिए स्नान इत्यादि का विधान है। इस प्रकार की अस्पृश्यता इतनी दूर तक चल गई है कि अस्पृश्य के साथ किसी लकडी या रस्सी के द्वारा भी स्पर्श होना बुरा माना जाता है। कही-कही तो, विशेष-कर दक्षिण में, दृष्टि से भी स्पर्श हो जाता है। वहाँ अस्पृश्य लोगो का किसी-किसी रास्ते से चलना भी मना है। मदिरो के अन्दर तो उनका जाना मना है ही।

महात्माजी ने इस प्रकार की घोर अस्पृश्यता को ही दूर करने का प्रयत्न किया, क्योकि वह समझते थे कि यह यदि हो जाय तो वर्ण-वर्ण के बीच खान-पान और विवाह का जो बन्धन है वह स्वय आहिस्ता-आहिस्ता ढीला पड जायगा। वह विदेशो में बहुत रह आये थे। इसलिए खान-पान के सम्बन्ध में किसी प्रकार की छुआछूत का न मानना उनके लिए स्वाभाविक हो गया था। पर यह बात इस देश के लोगो—विशेषकर गावो—के लिए नई चीज थी। जैसा मै ऊपर बता आया हूँ, उनके सम्पर्क में रहनेवाले लोग इस बन्धन को भी ढीला कर ही देते थे। चम्पारन में हमलोग, जो उस दिन तक स्वजाति

के अन्दर ही खान-पान किया करते थे, इस बन्धन को हटाकर सब एक-दूसरे के साथ खान-पान करने लगे थे। यह खान-पान केवल ऊँची कही जानेवाली जातियो के लोगों के साथ ही नही बल्कि ऐसे लोगो के साथ भी आरभ हो गया जिनका छूआ हुआ पानी हम नहीं पी सकते थे। खूबी यह थी कि हमने यह काम कुछ लुक-छिपकर नही किया, बल्कि खुलेआम किया। हमलोग वहाँ चारो तरफ से, गाँवो से आये हुए किसानो से, घिरे रहते थे—उनके बीच में ही खाना-पीना कर लेते थे। उनमें से कुछ को हम सबका एक साथ खान-पान शायद पसद न पडता हो, पर किसी ने खुलकर इसका विरोध न किया, न इसकी टीका-टिप्पणी ही हमारे सुनने में आई। लोगो ने शायद मान लिया कि यह साधुओ की एक जमात है जिसमें सब लोग एक साथ बैठकर खा लेते है।

गया-कांग्रेस में जो स्वयसेवक काम करने के लिए आये उनमें से अधिकाश गाँव के ही लोग थे। वे अपने साथ खान-पान के सभी बन्धनों को लाये थे। वे ऐसा प्रबन्ध चाहते थे जिसमें उनको अपने जातीय नियमो का उल्लघन न करना पडे। इसलिए, आरम्भ में उनके लिए ब्राह्मण रसोइयों का प्रबन्ध करना पडा। उनकी सख्या बहुत थी। इतने लोगों के लिए रसोइये खाना बना तो सकते थे, पर सबको परस नही सकते थे। एक-दो बार के भोजन के बाद ही चन्द स्वयसेवको ने देख लिया कि इससे काम नहीं चलेगा। उन्होने आपस में ही रसोई परसना शुरू किया। एक-दो जून तो केवल ब्राह्मणों ने ही परसा। उससे भी काम न चला तो दूसरी जाति के लोग भी परसने लग गये। दो-तीन ही दिनो के अन्दर सब बन्धन उठ गये, सब-के-सब एक दूसरे का छूआ भात-दाल खाने लग गये। इसके बाद बिहार में, जहाँ कही कांग्रेसवालो की सभा हो, जाति-भेद करके खाने का प्रबन्ध नही होता था, सब एक साथ भोजन करते थे।

जब महात्माजी ने अस्पृश्यता दूर करने की बात उठाई, तो काग्रेस के जलसो में एक साथ सबका बैठना तो होता ही, एक साथ भोजन भी होने लगा। थोडे ही दिनो में काग्रेस के लोगो में खान-पान का भेद भी उठ गया। पर इससे यह नही समझना चाहिए कि अस्पृश्यता दूर हो गई। अभी तक वह पूरी तरह गई नही है। पर इसमें कोई सन्देह नही कि उन दिनों में ही इसका बन्धन ढीला पडने लग गया था। फिर आहिस्ता-आहिस्ता करके अधिकाधिक ढिलाव पडता गया।

महात्माजी ने एक जाति के लोगो के साथ दूसरी जाति के लोगो के विवाह-विधान में भी परिवर्त्तन कर दिया। स्वय तो वह जन्म से वैश्य थे,

पर उनके सुपुत्र श्रीदेवदास गाधी का विवाह उच्च कोटि के ब्राह्मण श्रीराजगोपालाचार्य की सुपुत्री लक्ष्मी के साथ हुआ। इस तरह की और भी बहुत-सी शादियाँ हुईं। कुछ दिनो के बाद तो उन्होने हरिजनो के साथ भी विवाह-सम्बन्ध करने पर जोर देना शुरू किया। अपने अन्तिम दिनो में तो उन्होने एक नियम-सा बना रखा था कि वह ऐसी ही शादी के उत्सव में शरीक हो सकेंगे जिसमें एक पक्ष सवर्ण और दूसरा पक्ष हरिजन हो। यों तो वह विवाहोत्सव में शायद ही कही आते-जाते थे, पर आश्रम में आश्रम-वासियो अथवा उनके सम्बन्धियो का जब विवाह हुआ करता तब उसमें वह शरीक हुआ करते थे। इन विवाहो में केवल जाति-बन्धन ही नही टूटता, बल्कि विवाह की पद्धति और रीति भी बहुत बदल जाती।

हमारे समाज में विवाह में बहुत धूम-धाम हुआ करता है। पैसे भी बहुत खर्च हुआ करते हैं। विवाह की पद्धति में बहुत करके सस्कृत के मत्र ही व्यवहार में लाये जाते है, जिनके अर्थ को वर-वधू नही समझते, बिना समझे ही पडित के कहने पर दुहरा दिया करते है। महात्माजी ने मत्रो का अर्थ मातृभाषा में बता देने की रीति चलाई, मत्रो के भी अनावश्यक भागो को छोडकर बहुत सक्षिप्त कर दिया। बरात, जुलूस, भोज इत्यादि सब उठा दिये गए। सारा काम चन्द मिनटो के अन्दर ही समाप्त करा दिया जाता, जिसमें खर्च नही के बराबर पडता। यद्यपि आज भी शादियो में पुरानी प्रथा बहुत जारी है तथापि इसमें सन्देह नही कि सभी जगहो में किसी-न-किसी रूप में सुधार होने लगा है। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था में भी महात्माजी ने उथल-पुथल मचा दी। इसका असर बहुत दूर तक गया है, पर अभी काफी दूर तक नही पहुँचा है।

महात्माजी का विचार विधवा-विवाह के सम्बन्ध में स्पष्ट नही था, क्योकि इसका मौका शायद कभी नही आया था। एक घटना बिहार-यात्रा में हुई, जहाँ उनके विचार स्पष्ट हो गए। आरा नगर के नजदीक जैनो का एक विधवा आश्रम है, जहाँ जैन विधवाएँ रहती है। वहाँ उनकी शिक्षा इत्यादि का भी प्रबन्ध किया जाता है। महात्माजी जहाँ-कही जाते थे, लोग सभी सार्वजनिक सस्थाओ में उनको ले जाने का प्रयत्न करते थे। सभी सस्थाओ को तो वे नही देख सकते थे, पर इस सस्था में वह गये। वहाँ दस-ग्यारह वर्ष की एक विधवा बच्ची प्रणाम करने आई। उसको देखकर उन्होने पूछा, क्या यह भी विधवा है? जब उनसे कहा गया कि यह भी विधवा है इसको इसी अवस्था में अपनी सारी जिन्दगी बितानी पडेगी, तो उनकी आँखो में आँसू आ गये। तब, उसके बाद, उन्होने साफ साफ लिखा

कि विधवाओ को जबरदस्ती विधवा रखना ठीक नही है—जो विवाह करना चाहें उनका विवाह होने देना चाहिए। कुछ दिनो के बाद तो उन्होंने और भी अधिक जोर दिया, कहा कि कोई विधुर अगर विवाह करना चाहे तो उसको विधवा के साथ ही करना चाहिए। यद्यपि आज भी बहुत करके विधवाओ के विवाह नहीं होते तथापि इसमें सन्देह नही कि अब विधवा-विवाह उतना बुरा नही माना जाता जितना पहले समाज इसे मानता था।

महात्माजी ने विहार में जाकर पर्दा-प्रथा को भयकर रूप में देखा। गुजरात और दक्षिण में पर्दा बहुत कम है। मेरा विचार है कि विहार में जितना कडा पर्दा है उतना शायद और किसी दूसरे प्रात में नही है। चम्पारन में 'बा' जब पहुँची, फिर कुछ दिनो के बाद पाठशालाओ के खुलने पर गुजरात और महाराष्ट्र की कुछ स्त्रियाँ भी पहुँची, जो घूम-घूमकर काम करने लगी—विशेषकर स्त्रियो के बीच में, तभी से लोगो की आँखे खुलने लगी। गया काग्रेस के समय स्त्रियो के लिए खास स्थान बनाया गया था, जहाँ पर्दे में रहकर वे सब लोगो को देख और सब भाषणो को सुन सकती थी। बहार से सभी प्रतिनिधियो के साथ बहुत स्त्रियाँ आई थीं। पहले दिन तो शहर की और बाहर की सब स्त्रियाँ पर्दे के अन्दर ही बैठी। उन स्त्रियो के लिए भी, जो पर्दे से बाहर बैठना चाहती थीं, एक खास स्थान रख दिया गया था। वहाँ बहुत थोडी स्त्रियाँ, खासकर जो दक्षिण के प्रान्तो से आई थी, पहले दिन बैठी। पर आहिस्ता-आहिस्ता कुछ पर्दावाली स्त्रियाँ भी हिम्मत करके वहाँ आ बैठी। दूसरे-तीसरे दिन तो यह हुआ कि पर्दावाला स्थान बिल्कुल खाली हो गया और खुला हुआ स्थान भर गया।

हमने देखा कि हमारे यहाँ (विहार) की स्त्रियाँ उनलोगो से ही पर्दा रखती है जिनको वे पहचानती है अथवा जो उनके घरवालो को जानते है अथवा जिनके सम्बन्ध में उनको यह शका रहती है कि ये शायद उन्हे भी न पहचान लें। इसी वजह से मेले में अथवा गगा-स्नान के समय प्राय सभी घरो की स्त्रियाँ जाती है, क्योकि वहाँ भीड में किसी को जानने-पहचानने का मौका कम रहता है। इसी नीति के कारण, पहले दिन गया में सब-के-सब पर्दे में बैठी। पर जब वे जान गईं कि भीड काफी है और पहचाने जाने का डर कम है, तो बेधडक आकर खुले स्थानो में बैठ गईं।

महात्माजी जहाँ-कही जाते, स्त्रियो की सभा अलग की जाती, क्योंकि सार्वजनिक सभा में वे नही आना चाहती अथवा अलग सभा में महात्माजी का दर्शन उनको अधिक सुविधा से मिल सकता था। उनके पास स्त्रियाँ पर्दा नही करती थी। इसलिए, चाहे वह कांग्रेस के काम से या चरखा-सघ

के लिए पैसे जमा करने जहा-कही जाते, स्त्रियो की सभा होती ही। स्त्रियाँ अपने गहने उतार-उतारकर उनको देती। इस तरह, बहुत गहने जमा हो जाते जो बेच दिये जाते।

बिहार में, कुछ दिनो के बाद, स्व० बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद के नतृत्व में, एक सभा हुई, जिसका उद्देश्य पर्दा-निवारण था। वह सस्था कुछ दिनो तक काम करती रही। अब तो कोई भी सभा हो, उसमें स्त्रियो की सख्या काफी होती है यद्यपि आज भी यह नही कहा जा सकता कि गुजरात, महाराष्ट्र अथवा दक्षिण के और प्रान्तो की तरह बिहार में भी पर्दा उठ गया है, तो भी बहुत करके यह ढीला पड़ गया है, अगर कोई स्त्री हिम्मत करके पर्दे के बाहर आ जाती है तो बुरा नही माना जाता।

साबरमती-आश्रम में जो स्त्रियाँ रहती थी उनको हर तरह की आजादी थी। वैसी ही आजादी थी जैसी पुरुषो को। आश्रम में किसी बात पर राय ली जाती तो स्त्रियाँ भी उसी तरह आजादी के साथ राय देती जिस तरह पुरुष। वे काम भी वैसे ही करती जैसे पुरुष। उन दिनो विशेषकर चरखे का ही काम होता था। उसमें वे पूरा भाग लेती। इस तरह, स्त्रियो में महात्माजी ने एक अद्भुत जागृति पैदा करा दी। बाद जब कहीं सत्याग्रह का मौका आया, स्त्रियो ने उसमें निर्भीकता-पूर्वक वैसा ही भाग लिया जैसा पुरुषो ने। बारडोली के सत्याग्रह में स्त्रियो ने बहुत बडा हिस्सा लिया। उन्होने अपनी सगठन-शक्ति का भी परिचय दिया। इस देश में सहनशीलता स्त्रियो का धर्म-सा बन गया है। अत सत्याग्रह के कष्टो को सह लेना उनके लिए पुरुषो से भी अधिक स्वाभाविक था। १९३० में महात्माजी ने जब देशव्यापी सत्याग्रह आरम्भ किया तब उन्होने विशेषकर शराबबन्दी का काम स्त्रियो के जिम्मे दिया। यह काम कठिन था, खतरे से खाली न था, क्योकि इसमें नशाखोरो से मुकाबला होता, जो बहुतेरा क्रूर स्वभाव के होते हैं—होश-हवास तो शायद ही किसी मे होता है, इसलिए वे कब क्या कर बैठते, कहना कठिन है। पर इस काम को बहुत ही निर्भीकता-पूर्वक बहुत स्त्रियो ने किया। इसका फल यह हुआ कि शराब की दूकानें बन्द हो गईं। ग्राहको के अभाव में बहुतो की बिक्री भी बहुत कम हो गई। कुछ शराबखोरो न तो शराबखोरी भी छोड दो। पर यह कहना कठिन है कि कितने लोग होगे जो इस तरह सुधर गये।

१९३० का जिक्र है। विदेशी कपडे के बहिष्कार में भी स्त्रियो को बहुत जगहो में सहायता देनी पडी। उस समय यह प्रयत्न था कि विदेशी कपड की बिक्री बन्द हो जाय, विदेशी कपडे का आना भी रुक जाय—जो कपडा देश

म था उसकी अगर बिक्री रुक जाय तो व्यापारी विदेश से कपड़ा नही मँगवावेंगे; पर उसकी बिक्री अगर जारी रहे तो विदेश से उसका आना भी नही रुकेगा। इसलिए यह सोचा गया कि जो भी विदेशी कपडा दूकानो पर हैं वह गाँठो में बँधवा कर रखवा दिया जाय। कुछ व्यापारी तो अपनी खुशी से राजी हो गये, उन्होने खुद अपने माल को गाँठो में बाँध कर उनपर कांग्रेस की मुहर लगवा दी। सोचा गया था कि जब यह काम पूरा हो जायगा और कपडे की बिक्री रुक जायगी तब इन गाँठो को किसी दूसरे देश में भेजकर कपड़ा बेच दिया जायगा जिसमें व्यापारियों का भी नुकसान न हो।

बिहार मे स्त्रियो ने विदेशी कपडे की दूकानो पर पहरा देने का काम किया। जिस दूकान पर विदेशी कपडा होता उसके सामने एक-दो स्त्री जाकर खडी हो जाती, अगर कोई ग्राहक आता तो उन्हे देखते ही वापस चला जाता। दूकानदार भी बहुत शरमा जाते, इन स्त्रियो को खातिरदारी के साथ बिठाते, हर तरह से इनके साथ अच्छा व्यवहार करते। चन्द दिनो के अन्दर ही बिहार की सभी कपडे की मडियो में विदेशी कपडो की गाँठें बँध गईं, उन पर कांग्रेस की मुहर भी लग गई। यह बहुत करके स्त्रियो के ही कारण हुआ। जो स्त्रियाँ दूकानो पर पहरा देती उनमें कुछ ऐसी भी होती जो पर्दे के बाहर कभी नहीं निकली थी—जिन्होने इस तरह का काम कभी नही किया था। उनसे कह दिया जाता कि कोई ग्राहक यदि आवे तो उसके सामने हाथ जोडकर खडी हो जाना, कहना कि आप विदेशी कपडे न खरीदें, आप स्वतन्त्रता के सग्राम में मदद करें, महात्मा गाँधी की आज्ञा मानें। जैसा पहले कहा गया है, बहुतेरे ग्राहक उनको देखकर ही चले जाते, कुछ लोग कहने पर जाते, ऐसे थोडे ही होते जो कहने के बाद भी जिद करते। दूकानदारो की भी तो सहायता थी ही, पर उन्होने यह भी देख लिया कि जबतक स्त्रियाँ खडी रहेगी, दूकान खुली रखने में कोई लाभ नही है; क्योकि बिक्री होती नही, केवल बदनामी ही मिलती है।

एक दिन का जिक्र है, एक स्त्री एक दूकान पर पहरा देने लगी। वह अपने घर से कभी बाहर नही निकली थी। उसको यह पता न था कि दूकान से उसका घर किधर और किस मुहल्ले में था। जो स्त्रियाँ पहरा देने में शरीक होना चाहती उनको कांग्रेस के कार्यकर्त्ता उनके घरो से पैदल या सवारी पर दूकान तक पहुँचा देते, फिर जब सन्ध्या के बाद काम खतम होता तो उनके घर वापस पहुँचा देते। उस दिन, गलती से, उस लडकी को घर पहुँचाना कार्यकर्त्ता भूल गया। लडकी बेचारी वही खडी रही। इत्तिफाक से एक सज्जन अपनी स्त्री को वापस ले जाने के लिए अपनी मोटर पर

जा रहे थे। उनलोगों को आश्चर्य हुआ कि लड़की अबतक क्यो खडी है ? उन्होंने उससे पूछा, तो उसने कहा कि उसे घर पहुँचाने के लिये अभी तक कोई नही आया है। उन्होने समझ लिया कि यह गलती हो गई है। उसे उन्होने अपनी गाडी पर बिठा लिया। पर यह कठिनाई हुई कि वह अपने घर का पता नहीं बता सकती थी! उसे पहुँचावें तो कहाँ पहुँचावें! जिस सड़क पर ले जायँ, वह कहे कि इसी पर उसका घर है! पर जिस मकान के सामने वह रुक जायँ, वह कह दे कि यह मकान मेरा नही है! बिहार में यह प्रचलित है कि स्त्रियाँ पति का नाम नही लेती, इसलिए वह पति का नाम भी नही बता सकती थी। बहुत मुश्किल के बाद उसने पति का नाम कागज पर लिखकर दिया। तब कही तलाश करके लोगो ने उसे उसके घर पहुँचाया।

इस तरह, बडे-से-बडे घरो की स्त्रियाँ इस काम में लगी। इसलिए यह काम बहुत तेजी के साथ पूरा हुआ। बिक्री रुक जाते ही विदेशो से कपडे की आमदनी रुक गई। उस वर्ष, कपडे की आमद के लिए, हिन्दुस्तान और विदेश के व्यापारियो में, जो सट्टे या मुआहिदा हुआ करते वे नही हुए। इसका असर हिन्दुस्तान में ही नही, विदेशो में भी—जिनमें मुख्य इगलैंड था—काफी हुआ।

१९२५ से १९२८ तक के साल एक प्रकार से बडे महत्त्व के थे, क्योकि इस बीच में महात्माजी ने अपनी शक्ति रचनात्मक कार्यक्रम के चलाने में लगाई। वह राजनीतिक क्षेत्र से एक प्रकार से अलग रहे। स्वराज्य-पार्टी ही काग्रेस की तरफ से राजनीति का काम करती रही। महात्माजी काग्रेस के अधिवेशनो में तथा अखिल-भारतीय कमिटी की बैठको में जाते थे। जहाँ मुनासिब समझते थे वहाँ अपनी राय दे दिया करते थे। किन्तु अन्तिम फैसला स्वराज्य-पार्टी पर ही छोड दिया करते थे। प० मोतीलालजी सभी महत्त्व के प्रश्नो पर महात्माजी की राय जरूर लिया करते थे। इस तरह, जो कटुता कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में पैदा हो गई थी वह दूर हो गई, क्योकि दोनो पक्ष सच्चे दिल से काम कर रहे थे।

१९२६ में असेम्बली का चुनाव हुआ। उसके बाद स्वराज्य-पार्टी, चुनाव में अधिक सफलता होने के कारण, कुछ और ज्यादा काम कर सकी। पर आपस में फूट भी पैदा हो गई थी। १९२० के विधान में एक धारा थी जिसमें यह कहा गया था कि दस वर्षों तक विधान के अनुसार काम होने के बाद पार्लियामेंट एक कमीशन मुकर्रर करेगा, जो इस बात की जाँच करेगा कि विधान किस तरह से काम मे लाया गया है और आगे के लिए

वैधानिक सुधार क्या किया जा सकता है। केन्द्रीय असेम्बली में स्वराज्य-पार्टी का एक मुख्य प्रस्ताव यह था कि दस वर्षों तक न टालकर, और एक कमीशन न मुकर्रर कर, ब्रिटिश गवर्नमेंट को अपने प्रतिनिधियो और भारत के प्रतिनिधियो की एक गोलमेज कान्फरेंस करनी चाहिए, जो वैधानिक सुधार के सम्बन्ध में समझौते के रूप में फैसला करे। १९२७ में जब मद्रास में डाक्टर अन्सारी के सभापतित्व में काग्रेस हुई तो उसने एक कमिटी बनाई, जिसके जिम्मे यह काम सुपुर्द किया कि वह दूसरे विचारों और दलो के लोगों के साथ मिलकर एक विधान बनावे। उसी कमिटी ने आगे चलकर प० मोतीलालजी के सभापतित्व में, और-और दलों के लोगो के साथ मिल कर, एक विधान का खाका तैयार किया। वही नेहरू-कमिटी-रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उधर ब्रिटिश गवर्नमेंट ने भी घोषणा कर दी कि उसने १९२० के विधान के अनुसार एक कमीशन, जिसके सभापति सर जौन साइमन नियुक्त किये गये, मुकर्रर कर दिया है। इस कमीशन में एक भी हिन्दुस्तानी नही था। इसलिए, हिन्दुस्तान के लोगो के दिल में, चाहे वे किसी भी दल के थे, बहुत रज और क्षोभ पैदा हुआ। सबने ब्रिटिश गवर्नमेंट की इस कार्यवाही की केवल निन्दा ही नही की, वल्कि सब यह भी सोचने लगे कि इसके प्रतिकार में कुछ करना चाहिए। नरमदल-लिबरलपार्टी के लोगो ने काग्रेस से अलग होकर, १९२० के विधान के अनुसार, मन्त्रिमडलो में भाग लिया था। चुनाव में काग्रेस के भाग न लेने से उनके लिए १९२० के चुनाव में रास्ता साफ था। १९२३ में भी एक प्रकार से उन्हे खुला ही मैदान मिला था। उनमें से प्रमुख लोग—जैसे बगालमें श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, युक्तप्रान्त में श्री चिन्तामणि आदि—मन्त्रिमडल में शरीक हुए थे, पर इनका भी अनुभव अन्त में कुछ बहुत अच्छा नहीं हुआ था।

शुरू में जब असहयोग का जोर था तब नरमदल के लोगो की काफी खातिरदारी हुई थी। पर जब असहयोग कमजोर हो गया तब फिर उनकी भी पूछ कम हो गई—यहाँ तक कि श्री चिन्तामणि को इस्तीफा देकर हट जाना पडा। इसलिए, उस दल के लोग भी पहले से ही कुछ असन्तुष्ट थे। जब साइमन-कमीशन के मेम्बरो के नाम घोषित किये गये और उनमें एक भी भारतवासी का नाम नही पाया गया, तब वह असन्तोष और भी बढ गया। इसलिए, १९२८ में, एक तरफ तो नेहरू-कमिटी विधान बनाने में लग गई और इस काम में उसको सभी दल के लोगो से सहायता मिली, तथा दूसरी ओर यह सोचा जाने लगा कि भारत के प्रति यह जो अन्याय और अपमान का व्यवहार साइमन कमीशन की नियुक्ति के रूप में किया गया है

उसका किस प्रकार से प्रतिकार किया जाय। अनेकानेक स्थानो में सभाएँ हुई जिनमें कांग्रेस, लिबरल-दल, खिलाफत कमिटी तथा दूसरे विचार के सभी लोग शरीक हुए। सबने मिलकर कमीशन की नियुक्ति की निन्दा की। मुझे याद है कि जब पटना में सभा हुई तो उसमें बहुत दिनो के बाद कांग्रेस के लोग और सर अली इमाम-जैसे दूसरे दल के भी लोग शरीक हुए थे। उसमें सर्वसम्मति से निन्दा के प्रस्ताव पास किये गये थे। हम लोगों को इस बात से बडी प्रसन्नता हुई थी कि अबतक जो लोग हम से अलग थे वे फिर एक साथ मिलकर ब्रिटिश गवर्नमेंट का मुकाबला करेंगे। हम यह जानते थे कि असहयोग और सत्याग्रह के कार्यक्रम को वे लोग नही मानेंगे, पर यह जाहिर था कि हम अगर उनसे आगे बढकर कुछ अपनी ओर से करेंगे तो उसका वे विरोध नही करेंगे। इस तरह एक नया वातावरण पैदा हो गया।

महात्मा गाधीजी जिस चीज की प्रतीक्षा कर रहे थे वह नजदीक आती दीखी। १९२८ का वर्ष प्रतीक्षा और तैयारी का वर्ष रहा। प्रतीक्षा इस बात की कि देखें हम सब मिलकर इस मुकाबले के लिए क्या कार्यक्रम निकाल सकते है, और तैयारी इस बात की कि हम सब मिलकर अपनी ओर से एक विधान तैयार कर लें जिसको मजूर करने के लिए कमीशन को बाध्य किया जा सके। विधान की तैयारी में सबसे बडी कठिनाई यह थी कि हिन्दू-मुसलिम झगडो और दूसरी अल्प-सख्यक जातियो में विश्वास तथा भरोसा पैदा करने के लिए विधान में क्या-क्या रखा जाय जिससे वे सतुष्ट हो जायें। नेहरू-कमिटी ने इस प्रयत्न में बहुत-कुछ सफलता पाई। कुछ बातें ऐसी कही गई थी, जिनपर समझौता नही हो सका, पर तो भी आशा की जाती थी कि जब कमिटी की रिपोर्ट सब दलों के प्रतिनिधियो के सम्मेलन में पेश की जायगी तो उन विषयो पर कोई-न-कोई समझौता हो जायगा।

देश में नई जागृति हो गई थी। इसका एक बडा ही महत्त्वपूर्ण चिह्न बारडोली के सत्याग्रह के रूप में प्रगट हुआ। ऊपर कहा जा चुका है कि १९२१ के अन्त तथा १९२२ के आरम्भ में महात्माजी ने बारडोली को ही स्वराज्य के लिए सत्याग्रह करने की इजाजत दी थी और स्वय उस सत्याग्रह का नेतृत्व करने को तैयार थे, यहाँ तक कि वायसराय को पत्र भी लिख चुके थे, पर चौरीचौरा काड के कारण उसे रोक देना पडा था। १९२८ में गवर्नमेंट से, फसल मारी जाने के कारण और माल में माफी न मिलने की वजह से, बारडोली तालुका के लोगो का मतभेद हो गया। जब गवर्नमेंट ने उनकी माँग पूरी नही की तब वहाँ के लोगो ने निश्चय किया कि सत्याग्रह किया जाय और माल न दिया जाय। सरदार वल्लभ भाई ने बडी दृढता

और चातुरी के साथ इस सत्याग्रह का नेतृत्व किया। गवर्नमेंट की ओर से जितना जोर लगया जा सकता था, लगाया गया, पर वह कुछ न कर सकी; अन्त में उसे समझौता करना पडा। इस सफलता के कारण सारे देश में उत्साह की लहरें उमड आई। अब, सबलोगो के दिल में यह विचार उठने लगा कि पूरा प्रयत्न अगर किया जाय तो सारे देश में बारडोली-जैसा ही सत्याग्रह चल सकता है और इसी तरह सफलता भी प्राप्त हो सकती है।

अबतक सत्याग्रह केवल विचार में ही रहा करता था। इतने बड़े पैमाने पर उसका कोई प्रयोग नही हुआ था। यों तो खेडा में, बोरसद में, नागपुर में छोटे-मोटे सत्याग्रह सफलता-पूर्वक हो चुके थे, पर वहाँ उद्देश्य परिमित था—जिन लोगों को उनमें भाग लेना पडा था उनकी सख्या भी सीमित थी। पर बारडोली में एक पूरा तालुका के लोगों ने उसमें भाग लिया और सबको अनेक कष्ट सहने पडे। आसपास के लोग भी, जिनमें बडोदा-राज्य के गाँव थे, उन लोगो की सहायता करते रहे, यों तो सारे देश की टकटकी बारडोली की ओर लगी थी। उनकी सफलता ने यह प्रमाणित कर दिया कि जनता यदि अपनी ओर से डटी रहे, कहीं की बलवा-फसाद न करे, तो ब्रिटिश गवर्नमेंट को हार माननी ही पड़ेगी। किसी विदेशी ने कहा था कि महात्मा गाधी ने अपने लोगो के हाथो से हथियार छीनकर ब्रिटिश का हथियार भी छीन लिया—अर्थात् अपने लोगों को अहिंसात्मक बनाकर ब्रिटिश गवर्नमेंट के हिंसक हथियार को भी बेकार बना दिया। बात भी सच थी। अगर हम इस चीज को पूरी तरह समझ जाते तो केवल स्वराज्य ही हमको और जल्द न मिल गया होता, बल्कि हममें और भी इतनी शक्ति आ गई होती कि हम सारे ससार का मुकाबला करने के लिए हमेशा तैयार रहते। पर वह कुछ अधूरा रह गया! इसलिए, हमने स्वराज्य तो हासिल कर लिया, पर उसकी रक्षा के लिए हमें आज अपनी फौज पर भरोसा करना पड रहा है।

सोलहवाँ अध्याय

१९२८ में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। प० मोतीलाल नेहरू सभापति थे। काग्रेस के साथ-ही-साथ एक सर्वदल-सम्मेलन भी हुआ। उसके सामने नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट पेश की गई। इसकी आवश्यकता उस समय इसलिए और अधिक हो गई थी कि साइमन-कमीशन हिन्दुस्तान में पहुँच गया था। अत यह जरूरी था कि हम दिखा सकें कि हिन्दुस्तान के सभी लोग एकमत हो गये है—उनकी मांगो को ब्रिटिश गवर्नमेंट को मजूर करना ही चाहिए। दो बातो पर मत-भेद था। एक तो यह कि ब्रिटिश गवर्नमेंट को अविलम्ब भारत को डोमिनियन-स्टेटस (औपनिवेशिक स्वराज्य) दे देना चाहिए। इस सबध में काग्रेस के अन्दर ही दो मत थे। कुछ लोगो का—जिनमें श्री श्रीनिवास आयगर, प० जवाहरलाल नेहरू, श्रीसुभाषचन्द्र वोस आदि थे—विचार था कि हमको पूर्ण स्वतत्रता की बात करनी चाहिए, ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर डोमिनियन-स्टेटस की बात नही करनी चाहिए। दूसरे लोग डोमिनियन-स्टेटस से भी सतुष्ट हो जाते यदि ब्रिटिश गवर्नमेंट उसे तुरन्त मान लेती। दूसरी बात ऐसी थी जिसके सम्बन्ध में मतभेद दूसरे सम्प्रदायो के साथ था, विशेष करके हिन्दू और मुसल्मानो का मतभेद। उस सम्मेलन में अछूत वर्गों का कोई विशेष स्थान देखने में नही आया और न उनकी ओर से कोई खास मांग ही पेश की गई थी। काग्रेस-जनो और दूसरे सभी हिन्दुओ का खयाल था कि वे (अछूत) हिन्दुओ में ही है, उनके लिए किसी विशेष अधिकार की बात नही है। हाँ, सिक्ख अपनी ओर से जरूर विशेष अधिकारो के दावादार थे।

सम्मेलन में डोमिनियन-स्टेटस के सम्बन्ध में कोई जबरदस्त मतभेद नही हुआ—यद्यपि वहाँ भी पूर्ण स्वतत्रता के हामियो ने बात उठाई तथापि यह बात साम्प्रदायिक झगडो के मुकाबले में सम्मेलन की तह में पड गई।

बहुत करके साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण ही सम्मेलन असफल हो गया। अब अधिकाश लोग काग्रेस से झगडा तय करने के पक्ष में थे। मुसलमानो की माँगें भी कुछ ऐसी न थी कि अगर वे मान ली जाती तो देश का कोई बहुत बडा नुकसान होता। यह किसी ने शायद उस समय नही समझा कि उनके न मानने का नतीजा देश का बँटवारा होगा। यह मानना ही पडेगा, यदि उस समय महात्माजी की बातें लोग मान लिये होते तो भारत का इतिहास शायद दूसरा होता। पर हमारे लोगो ने यह नही समझा कि ब्रिटिश की कूटनीति, अपनी सत्ता कायम रखने के लिए, हममें फूट डालकर लड़ाती रहेगी। हम तो यह माने बैठे थे कि हम जो कहते हैं वह अगर न्यायोचित है तो ब्रिटिश गवर्नमेंट को उसे मानना ही पडेगा—अर्थात् हमारे लोगो का विश्वास ब्रिटिश पर अधिक था, वे आशा करते थे कि हिन्दू और मुसलमान के दरम्यान वह इंसाफ करेंगे।

मुसलमान एक प्रकार से सम्मेलन के बाद ही, बहुत करके काग्रेस से अलग होकर, अपना अलग सगठन करने लगे। उनमें से कुछ तो, जिनमें मि० जिन्ना भी थे, कुछ देर तक इस प्रयत्न में रहे कि कोई भी रास्ता निकाला जाय। पर कुछ दिनो के बाद सब लोगो ने एकमत होकर सर्वदल मुस्लिम-कान्फ्रेंस की स्थापना कर दी।

काग्रेस के अन्दर डोमिनियन-स्टेटस के लिए जो मतभेद उठ खडा हुआ था उसके बारे में भी महात्माजी ने बहुत प्रयत्न किया कि कोई समझौता हो जाय। पर अन्त में यह तय पाया कि एक वर्ष के भीतर यदि ब्रिटिश गवर्नमेंट डोमिनियन-स्टेटस दे देगी तो हम उसे मजूर कर लेंगे, पर यदि उसने इस माँग को ३१ दिसम्बर १९२९ तक मजूर न किया तो काग्रेस अपना ध्येय—जो उस समय तक स्वराज्य-प्राप्ति था—बदल देगी। 'स्वराज्य' शब्द ऐसा था कि जिसके दोनो अर्थ लग सकते थे—डोमिनियन-स्टेटस तथा पूर्ण स्वतत्रता, क्योकि डोमिनियन-स्टेटस में भी अपने कारबार में प्रत्येक डोमिनियन (उपनिवेश) स्वतत्र ही समझा जाता था और उसका अर्थ पूर्ण स्वतत्रता भी हो सकता था। इसलिए इस निश्चय का अर्थ यह होता था कि १९२९ में यदि हिन्दुस्तान डोमिनियन न बना तो काग्रेस अपना ध्येय 'पूर्ण स्वतत्रता' घोषित कर देगी, फिर उसके बाद डोमिनियन स्टेटस मिले भी तो उसे वह मजूर नही करेगी।

महात्माजी का यह एक सिद्धात था कि वह कभी किसी बात को बढा-कर नहीं कहते थे। जो कुछ कहते थे, उसका प्रत्येक शब्द तुला हुआ होता और गभीर अर्थ रखता था। विशेष करके प्रस्तावो में वह एक शब्द का

उधर ही स्वागत करने वाले रहेगे और दूसरी तरफ वहिष्कार करनेवाले। हम तो जानते थे कि स्वागत करनेवाले बहुत कम होगे और बहिष्कार करनेवाले बहुत ज्यादा। ऐसा ही हुआ भी। एक तरफ सौ-दो-सौ आदमी और दूसरी तरफ तीस-चालीस हजार! फिर वही पर मेरी मुलाकात इन्सपेक्टर-जेनरल से हुई। सब बातें शान्तिपूर्वक निभाये जाने पर उसने मुझे बधाई दी, कहा कि मैने जो उससे बीस हजार आदमियो का वादा किया था वह मैने पूरा किया, क्योकि उससे कही अधिक लोग वहाँ पहुँचे थे।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, १९२९ का साल तैयारी का साल था। ब्रिटिश गवर्नमेंट भी बिल्कुल चुप नही रही। लार्ड इरविन, जो वायसराय थे, इगलैड गये। वहाँ से लौटकर उन्होने घोषणा की कि वैधानिक सुधार के सम्बन्ध में ब्रिटिश गवर्नमेंट की जो नीति रही है उसमें डोमिनियन-स्टेटस निहित है। पर यह बात साफ नही थी कि उसी वर्ष के अन्दर भारतवर्ष को डोमिनियन की हैसियत मिल जायगी। घोषणा का अर्थ लोग कई तरह से, अपनी-अपनी रुचि के अनुसार, लगाने लगे। महात्माजी ने सोचा कि इस तरह अपना अर्थ लगाने से कोई लाभ नही है, लार्ड इरविन से ही पूछ लेना चाहिए कि वह घोषणा कहाँ तक हमको ले जाती है। उधर काग्रेस की तिथि भी नजदीक आने लग गई। महात्माजी, पडित मोतीलाल नेहरू और मि० जिन्ना के साथ, लार्ड इरविन से मिले। इनके साथ वायसराय की जो बातें हुई उनसे स्पष्ट हो गया कि डोमिनियन स्टेटस तुरत देने की बात नही है, वह आहिस्ता-आहिस्ता ही हो सकेगा। इस बीच में कान्फरेंस इत्यादि के जरिये लोग बझाये रखे जायँगे! महात्माजी ने निश्चय कर लिया कि कलकत्ता के निश्चय के अनुसार पूर्ण स्वतत्रता को अपना ध्येय बनाने के सिवा काग्रेस के लिए दूसरा रास्ता नही रह गया है।

———

सत्रहवाँ अध्याय

मै उस साल के नवम्बर में वर्मा गया। प्राय· दस-वारह दिनो तक वहाँ रहा। मेरे जाने के दो कारण थे। एक कारण तो यह कि मेरे मित्र—जिनके मुकदमे में मै इगलैंड गया था और जिनकी बहुत वडी जमीदारी वर्मा में थी जिसके लिए वह मुकदमा हुआ था—उन दिनो वर्मा में ही थे, उनका आग्रह था कि मै एक वार वहाँ जाऊँ। दूसरा कारण यह कि वहाँ दो-तीन जगहो में, जिनमें यह जमीदारी भी एक थी, विहारी किसान वडी सख्या में बस गये है जिनमें से कुछ ने अपनी शिकायतें मेरे पास पहुँचाई और मुझसे आग्रह किया कि मैं स्वय वहाँ जाकर सब वातो को देख-सुन लेने पर अगर हो सके तो उनकी मदद करूँ।

वहाँ विहारी किसानो के जाने का एक विशेष कारण हुआ था। जब ब्रिटिशो ने, उत्तर-वर्मा को उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में जीतकर, अपना राज्य कायम किया तो उन्होने इस वात की जरूरत समझी कि वहाँ जो वहुत गैर-आवाद पडी जमीन थी वह हिंदुस्तान से किसानो को ले जाकर आवाद कराई जाय। जमीन वहुत थी। शायद यह भी खयाल था कि वर्मा के लोगो के बीच एक अच्छी तादाद में हिन्दुस्तानी जो वसेंगे तो वर्मा पर कावू रखना शायद कुछ आसान हो जाय। इसलिए, उन्होने हिंदुस्तान में इस वात की घोषणा की कि हिन्दुस्तान में जमीन की कमी महसूस हो रही है और वहाँ वर्मा में वहुत जमीन यो ही पडी हुई है, अगर यहाँ के जमींदार अथवा दूसरे धनी लोग वहाँ जमीन लेकर यहाँ से हिंदुस्तानियो को ले जाकर जमीन आवाद करावें तो उनको काफी मुनाफा होगा, और जो जाकर वहाँ वसेंगे उनको भी वहुत अच्छी काफी जमीन मिल सकेगी, इसमें गवर्नमेंट भी हर तरह से मदद करेगी। इसी घोषणा पर हिन्दुस्तान के कुछ लोग वहाँ गये। उनलोगो को गवर्नमेंट से वहाँ जमीन मिली। कुछ तो वहाँ

नही टिक सके, वापस चले आये, मगर कुछ लोग टिक गये। उनमें एक अग्रेज नीलवर 'मिलन' था। उसने वहाँ २०-२५ हजार एकड जमीन ली। विहार के शाहाबाद जिले की तरफ से किसानो को ले जाकर उसी ने वहाँ बसाया था। कई लाख की सालाना आमदनी उस जमीदारी से उसको हो गई थी। उसी तरह मेरे मित्र राय बहादुर हरिहर प्रसाद के पिता रायबहादुर जयप्रकाश लाल ने भी १५ हजार एकड जमीन ली, जिसको उनकी मृत्यु के बाद रायबहादुर हरिहर प्रसाद ने आबाद कराया था। जिस वक्त जमीन ली गई थी उस वक्त वहाँ घना जगल था जिसमें हाथी, बाघ इत्यादि जगली जानवर रहा करते थे। बडी मुश्किल और हिम्मत से आहिस्ता-आहिस्ता जमीन आबाद हो पाई थी। जिस समय मै गया हुआ था उस वक्त तक तो वहाँ आस-पास में भी कही जगल का नाम-निशान तक न था। वहाँ के रहने वाले, घर-बार, रहन-सहन और बोली भी, सब कुछ शाहाबाद की ही हो गई थी। वहाँ जाने पर, उन गाँवो को देखने पर तथा वहाँ के लोगो से मिलने पर यह नही मालूम होता था कि हम बर्मा में है।

मिस्टर मिलन की जमीदारी में रैयतो की कुछ शिकायतें थी। उन्होंने मुझे बुलाया था कि मै तय करा दूँ। मैं इन दोनो कारणो से वहाँ गया। पहले-पहल बर्मा को देखने का सुअवसर भी मिला। किसानो की तरफ से मैने मिस्टर मिलन के मैनेजर से बातें की। सब शिकायतें तो नही दूर हुई, पर उनको कुछ सहूलियत जरूर मिली।

बर्मा के लोग बहुत धर्मावलम्बी है। वहाँ बौद्ध भिक्षुओ का, जिनको 'फूगी' कहते हैं, बडा मान है। उनकी एक बडी टोली, गया कांग्रेस के समय ऊ उत्तमा के नेतृत्व में, भारत आई थी। बर्मा में जो राष्ट्रीय जागृति हुई थी, उसमें फुंगियो का बडा हाथ था। वहाँ उस समय एक प्रमुख फूगी, ब्रिटिश गवर्नमेंट के विरुद्ध अनशन करके, मर गया था। उसका मृत शरीर वहाँ की परिपाटी के अनुसार, लोगो के दर्शनो के लिए सुरक्षित रखा गया था। मैने भी दर्शन किया था।

मेरे ऊपर दो बातो की छाप पडी थी। एक तो यह कि बर्मा के साथ हमारा बहुत पुराना और घनिष्ठ सम्बन्ध है। मै ठीक नही कह सकता कि बर्मा में बौद्धधर्म का प्रचार कब और कैसे हुआ तथा किसने किया। पर आज भी वह धर्म वहाँ के लोगों में बहुत जोरो से प्रचलित है—जीवित तथा जाग्रत है, जिसके चिह्न केवल बडे-बडे सुनहले बौद्ध मदिरो में ही नही, बल्कि फुगियो के जीवन, आचरण और बर्मा-निवासियो के रहन-सहन में पद-पद पर मिलते हैं। छोटे-छोटे बच्चो की शिक्षा बहुत करके इन फुगियो के

हाथो में ही है। यह एक वहुत मामूली दृश्य है कि अल्पवयस्क युवको की एक बडी जमात जुलूस की तरह प्रतिदिन देखी जा सकती है। ये फूगियो के नये चेले होते है, जो समय पाकर फूगी होगे और जो बचपन से ही उस जीवन के लिए तैयारी कर रहे है। दूसरी छाप यह पडी कि मैने देखा, भारतवर्ष ने यद्यपि कभी किसी दूसरे देश पर अपना राजनीतिक आधिपत्य जमाने के लिए आक्रमण नही किया तथापि उसका धार्मिक और नैतिक आधिपत्य ससार के वहुत वडे हिस्से पर कायम हो गया, जो आज भी कायम है। वह आधिपत्य तलवार और शस्त्र द्वारा कायम नही किया गया था, वल्कि धर्म, सदाचार, सद्व्यवहार, प्रेम और शील की नीव पर स्थापित हुआ था। यही कारण है कि जव दूसरे प्रकार के साम्राज्य न जाने कितने हुए और टूट-फूट गये, तब भी यह साम्राज्य आज तक कायम है, वर्मा के लोग आज भी भारतवर्ष के उन स्थानो को—जिनका वुद्धदेव के जीवन से सम्वन्ध है—तीर्थ-स्थान मानते है। ऐसे स्थानो में वोधगया, सारनाथ, कसैया, लुम्बनी इत्यादि मुख्य है। इन स्थानो के प्रति श्रद्धा-भक्ति के भाव केवल वर्मा में ही नही, उन सभी देशो में—जहाँ वौद्धधर्म आजतक प्रचलित है—आज भी वर्तमान है।

जव मै मद्रास-काग्रेस के वाद, १९२७ के दिसम्वर और १९२८ की जनवरी में, चन्द दिनो के लिए लका गया था, तो यही विचार वहाँ भी मेरे मन में उठे थे, इन्ही भावनाओ से वहाँ प्रेरणा मिली थी। हमारा यह कर्तव्य है कि वोध-गया तथा वौद्धो के दूसरे तीर्थस्थानो का प्रवध हम ऐसा कर दें कि सारी दुनिया के वौद्ध सतुष्ट हो और प्रवन्ध भी उन स्थानो के गौरव के योग्य हो। यह इतिहास के अद्भुत चमत्कारो का एक विचित्र नमूना है कि आज अपने उद्गम-स्थान में वौद्धधर्म नहीं पाया जाता। विहार तथा सयुक्तप्रदेश में—जहाँ वुद्धदेव का जन्म, तपस्या, ज्ञान-प्राप्ति और निर्वाण हुए—शायद ही उँगलियो पर गिन लेने योग्य चन्द वौद्ध मिल सकेंगे। पर वौद्धधर्म के अनुयायी आज करोडो की सख्या में दूसरे देशो में मिलते है। एक तरफ तिव्वत, तुर्किस्तान, मगोलिया, चीन, कोरिया, जापान और दूसरी तरफ सीलोन, वर्मा, स्याम, हिन्दचीन और हिन्देशिया के टापुओ में आज भी वौद्ध धर्म वहाँ के निवासियो के जीवन का सहारा वना हुआ है। मै नही कह सकता कि यह क्यों और कैसे हुआ। इस दिशा में इतिहास-वेत्ताओ का यह काम है कि वे इस वात की खोज करें कि वौद्धधर्म हिन्दुस्तान में कैसे लुप्त हो गया।

यह माना नही जा सकता कि हिन्दुओ ने वौद्ध धर्म को पशुवल से दवा दिया है। इसका अकाट्य प्रमाण यह है कि हिन्दू धर्म ने वराव सहिष्णुता

का केवल परिचय ही नही दिया है, वल्कि अपने सिद्धान्तो में उसे बहुत ऊँचा स्थान भी दिया है। हिन्दूधर्म ने बुद्धदेव को भी अपने अवतारो में मान लिया है। इससे यह जाहिर है कि बौद्धधर्म को हिन्दुओ ने जवरदस्ती नही दवाया और न नष्ट ही किया। बौद्धधर्म के सिद्धान्त बहुत अशो में प्राचीन प्रचलित सनातन धम के ही सिद्धान्त है। उनमें जो कुछ नवीनता थी, अथवा जीवन में और रहन-सहन में उनके द्वारा जो भी परिवर्तन हुए थे, उन सबको हिन्दुओ ने अपना लिया। समय पाकर हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्म का अन्तर दूर हो गया। अन्त में जाकर हिन्दू-धर्म ही रह गया। इसकी पुष्टि हाल के कुछ धार्मिक आन्दोलनो के इतिहास से भी होती है।

ब्रह्मसमाज हिन्दू-धर्म की ही एक शाखा समझा जाता है। पर प्रचलित हिन्दू-धर्म में और उसमें काफी अन्तर था। समय पाकर वह अन्तर भी कम होता गया। अब, कुछ दिनो में ही वह अन्तर एकबारगी लुप्त हो जायगा। इसी तरह, और भी कितनी ही शाखाएँ सनातन धर्म के मूल से निकली और लुप्त हो गई। बौद्ध-धर्म विदेशो में पहुँच गया इसलिए वहाँ वह रह गया। इसीलिए वह विदेशो में तो पाया जाता है, पर अपने जन्मस्थान में नही। लका, तिब्बत, चीन इत्यादि में कब और किस तरह तथा किसके द्वारा इस धर्म का प्रचार हुआ, इसका वहुत-कुछ पता इतिहास-वेत्ताओ को लग चुका है। वह एक अद्भुत कहानी है, जिसे हमारे देश के लोगो को जानना चाहिए। यह काम विद्वानो का है कि उसे हमारे इतिहास के ग्रथो में उचित और योग्य स्नान दें जिसमें सभी लोग उससे परिचित हो जायें।

जैन-धर्म का प्रचार भी प्राय उसी समय हुआ जिस समय बौद्ध-धर्म का। जहाँ तक मै जानता हूँ, आधुनिक जैन-धर्म के प्रवर्त्तक महावीर का जन्म बुद्ध के जन्म से कुछ पहले ही हुआ था, पर दोनो समकालीन थे। दोनो ने अहिंसा को धर्म का मुख्य अग बताया था। दोनो ने अपने जीवनकाल में घूम-घूम कर अपने धर्म का प्रचार किया था। दोनो का केवल समय ही एक नही था, कार्यक्षेत्र भी एक ही था—भारतवर्ष का वही हिस्सा जिसे आज 'बिहार' कहते है तथा युक्तप्रदेश का पूर्वी भाग। बौद्ध-धर्म समय पाकर विदेशो में भी गया। सम्राट् अशोक के समय वह भारतवर्ष के भी बहुत अशो में फैल गया। किन्तु जैन-धर्म विहार से निकल कर हिन्दुस्तान के अन्दर ही फैला। वह विहार से पूर्व-दक्षिण का रास्ता लेकर सुदूर दक्षिण तक गया, तब फिर वहाँ से उत्तर की ओर वढकर पश्चिम तक चला गया। यह एक आश्चर्यजनक घटना है कि अपने जन्मस्थान में दोनो धर्म लुप्तप्राय हो गये। वौद्ध तो एक-वारगी, पर जैन भी जितने आज दूसरे सूबो में पाये जाते है उतने विहार में

नहीं है, जो आज है भी वे उन दिनों के नही है जब जैन धर्म की स्थापना हुई थी, वे आदिम जैनो के वशज शायद ही है—दूसरी जगहो से आकर हाल में बिहार में बसे है। पर जिस तरह बौद्धो के तीर्थस्थान आदि बिहार में है उसी तरह जैनियों के भी, जिनमें पावापुरी, राजगृह, पार्श्वनाथ इत्यादि मुख्य है।

एक और अद्भुत बात यह है कि दोनों धर्मों के प्रवर्त्तको ने अहिंसा को यद्यपि परम धर्म माना तथापि अहिंसा का अर्थ अलग-अलग हो गया। आज शायद ही कोई बौद्धधर्मावलम्बी हो जो मास न खाता हो। उन्होंने किसी जानवर को खुद मारना तो निषिद्ध माना, पर अगर कही दूसरा कोई मार दे तो उसका मास खा लेना बुरा नही माना। इसके विपरीत, जैनियो ने इस अहिंसा को इतनी दूर तक पहुँचाया कि मच्छर और हिंसक जन्तुओ तक को मारने में भी वे पाप समझने लगे। उनके मुनि लोग हिंसा से बचने के लिए बहुत प्रकार के कष्ट सहते है। मामूली गृहस्थ भी खान-पान के बहुत कडे नियम मानते है जिसमें किसी भी जीवधारी की जान अनजाने भी न जाय। पर चाहे जिस कारण से हो, दोनो धर्मों में इस मौलिक सिद्धान्त के अमली रूप में इतना फर्क जरूर पड गया है। आज अहिंसा-सिद्धान्त को तो दोनो ही मानते है, पर आज के ससार को तो उस अहिंसा की जरूरत है जिसको महात्माजी ने सब प्रकार से अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न किया है। वही आज के सकटो से उबारने का एकमात्र उपाय है।

अठारहवाँ अध्याय

लाहौर-कांग्रेस ने कांग्रेस के ध्येय को बदलकर पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति को अपना ध्येय बना लिया। यह भी निश्चय किया कि इसके लिए सत्याग्रह किया जाय। मै उस समय बहुत सख्त बीमार था। अत कांग्रेस में नही जा सका था। कांग्रेस के बाद मै अच्छा हो गया। थोडी-बहुत शक्ति भी आ गई। तब, २६ जनवरी को पहले-पहल मनाये जानेवाले पूर्ण स्वतन्त्रता-दिवस के समारोह में अपने गाँव जीरादेई से आकर, जहाँ मै आराम कर रहा था, शरीक हुआ। उसके बाद से ही सत्याग्रह की तैयारी और भी जोरो से होने लगी। साबरमती में वर्किङ्ग-कमिटी की मीटिंग हुई। उसमें मै शरीक हुआ। वहाँ महात्माजी ने बताया कि नमक-कानून तोडकर सत्याग्रह किया जाय। नमक पर 'कर' लगता था, जिससे भारत-सरकार को करोडो रुपये की सालाना आमदनी होती थी। कोई आदमी गवर्नमेंट की आज्ञा और 'कर' दिये बिना न नमक बना सकता था और न बेच सकता था। यह एक ऐसा 'कर' था जिससे कोई भी नही बच सकता था। गरीब-से-गरीब आदमी को भी, चाहे वह दोनो जून के बाद भी कुछ खाये, प्रत्येक कौर पर कुछ-न-कुछ 'कर' देना ही पड़ता था, क्योकि बिना नोन के वह एक कौर भी नही खा सकता था।

समुद्र से हिन्दुस्तान तीन तरफ घिरा हुआ है। समुद्र के किनारे, बिना कुछ किये ही, बटोर लेने से मुफ्त में ही नमक मिल सकता था। पर गरीब-से-गरीब आदमी भी बिना 'कर' दिये उस नमक को भी, जिसे प्रकृति मुफ्त में देती थी, नही उठा सकता या और न खा सकता था। इसका नतीजा यह होता था कि और-और देशो के मुकाबले हिन्दुस्तान में लोग नमक भी कम खाते थे। इसका असर यहाँ के लोगो के स्वास्थ्य पर जरूर बुरा पड़ता होगा, क्योकि नमक एक अत्यत आवश्यक खाद्य-वस्तु है। महात्माजी ने सोचा था

कि इस सत्याग्रह से हम गरीब-से-गरीब आदमियों को भी दिखला देंगे कि यह जुल्मी 'कर' उठा देने का प्रयत्न उन लोगो के लिए ही किया जा रहा है। साथ ही, इसमें दूसरे किसी का भी कुछ भी नुकसान नही था, केवल गवर्नमेंट को ही 'कर' का घाटा होता। जब महात्माजी ने यह सुझाव वर्किङ्ग-कमिटी के सामने उपस्थित किया तो हम में से बहुतेरो के दिल में यह शक था कि यह कहाँ तक लोगों में उत्साह पैदा कर सकेगा—विशेषकर ऐसे स्थानो के लोगो में जो समुद्र के किनारे से दूर हैं और जहाँ के लोगो को दूकानो से ही नमक खरीद कर खाना पडता है। उन बेचारो को इसका पता भी नही कि जो नमक वे खरीद रहे हैं उसके दाम में 'कर' का अंश भी है और वह भी नोन के असली दाम से कहीं ज्यादा है! वे अगर नमक-कानून तोडना चाहें भी तो कैसे तोड़ें; क्योकि उनके यहाँ न तो समुद्र-तट का नमक ही है जिसे वे उठा लें और न समुद्र का जल ही है जिसको उबालकर नमक बना लें। इसलिए, कानून के तोडने में भी बडी कठिनाई दीख पडी। पर महात्माजी इस पर अडे रहे। अन्त में निश्चय हुआ कि नमक-कानून ही तोडा जाय।

बिहार के कई जिलो में मिट्टी से सोरा और नमक पहले बनाया जाता था। मैंने अपने गाँव में ही देखा था कि एक जाति के लोग, जो अपने पेशे के कारण 'नोनिया' कहलाते हैं, मिट्टी से 'सोरा' बनाया करते थे। इसी तरह और भी बहुत-सी जगहे ऐसी हैं जहाँ मिट्टी से नमक बन सकता है। कहीं-कहीं तो इस तरह की झील भी है जिसमें नमकीन पानी है—जिससे नमक बन सकता है। सोचा गया कि समुद्र के किनारे के लोग तो नमक बटोरकर ही नमक-कानून तोड सकेंगे, पर दूसरी जगहो में कुछ लोग मिट्टी से ही नमक बनाकर कानून तोडेंगे और कुछ लोग गैर-कानूनी नमक बेच तथा खरीदकर। लेखो और परचो में मिट्टी से नमक बनाने का तरीका भी लोगो को बताया गया। मुझे इस सम्बन्ध में बहुत सन्देह था कि बिहार के लोगो में हम नमक-कानून तोडने का बहुत उत्साह पैदा कर सकेंगे। महात्माजी से यह बात मैंने कही, उनको बताया भी कि एक दूसरा कानून है जो सभी गाँवो मे लागू है और जिसके कारण लोगो में बडा असन्तोष भी है।

बिहार के हर गाँव में एक या दो इससे भी अधिक चौकीदार रखे जाते हैं, जिनका काम होता है कि गाँव पर चौकी रखें, ताकि चोरी डकैती न हो; अगर किसी किस्म की दुर्घटना हो जाय तो वे पुलिस-अफसरो को उसकी खबर दे दें, जनम-मरन की रिपोर्ट थाने में पहुँचावें, हरएक तरह की खबर गवर्नमेंट को देते रहें और गवर्नमेंट का हुक्म भी गाँव के लोगो तक पहुँचाते रहें। गवर्नमेंट का दूसरा कोई नौकर बिहार के गाँवो में नहीं रहता है; क्योंकि

वहाँ दवामी बन्दोवस्त (परमानेण्ट-सटलमेंट) के कारण गवर्नमेंट को जनता से जमीन की मालगुजरी नही वसूल करनी पडती, जमीदार खुद वसूल करके नियत रकम गवर्नमेंट को पहुँचा दिया करता है। इसलिए, एक प्रकार से, गवर्नमेंट का प्रतिनिधि गाँव में चौकीदार ही होता है। उसको जो मुशहरा दिया जाता है वह गाँव के लोगो से ही एक विशेष 'कर' द्वारा, जिसे 'चौकीदारी टैक्स' कहते हैं, वसूला जाता है। यह टैक्स गाँव के प्राय सभी लोगो को देना पडता है। औकात के मुताबिक यह छ आने से लेकर बारह रुपये तक सालाना होता है। गाँव के लोगो में इससे बडा असन्तोष है, क्योकि बडी कडाई से यह वसूला जाता है। इतना ही नही, 'कर' लगाने में भी बडी धाँधली हुआ करती है। गरीबो पर अधिक लाद दिया जाता है! मुखिया लोग धनी होने पर भी कम देते है!

मैंने महात्माजी से कहा, यह 'कर' सीधे हर आदमी को देना पडता है, इसलिए वह इसे जानता है और इससे वह असतुष्ट भी है, पर यह लोगो को पता ही नही लगता कि नमक-कर कब उनसे लिया गया, क्योकि 'कर' तो नमक बनानेवाले ही दे देते है, नमक के खरीदार को अलग से 'कर' नही देना पडता, उसको तो पता भी नही लगता कि दाम में से कितना 'कर' के रूप में दिया है और कितना नमक का असली दाम, इसीलिए नमक-कानून से उतना असतोष देखने में नही आता, लोगो को उसके तोडने में इतना उत्साह नही होगा। मैंने महात्माजी से इसलिए आज्ञा माँगी थी कि बिहार में चौकीदारी-टैक्स न देने की आज्ञा दे दीजिए ताकि वहाँ हमलोग सत्याग्रह को यही रूप दें। उन्होने हम से कहा कि ऐसा मत करो। तुम ऐसा करोगे तो जल्द हार जाओगे, गवर्नमेंट दवा देगी। पर उस समय यह बात पूरी तरह मेरी समझ में नही आई। फिर भी मैं ऐसी बातो में उनके अनुभव का कायल था। मैंने मान लिया कि नमक-कानून के विरुद्ध ही हम यथासाध्य सत्याग्रह का प्रयत्न करेंगे। पर मेरे मन में डर था कि इसमें हम वहुत सफल नही होगे। फिर भी इतना तो मैं जानता था कि विहार के वहुतेरे जिलो में नमक-कानून तोडने में कोई विशेष दिक्कत नही आयेगी, क्योकि वहाँ मिट्टी से नमक वनानेवाले प्राय सभी गाँवो में थे और वह काम आसानी से दूसरे लोग भी कर सकते थे। हमने विहार लौटकर नमक वनाने का ही काम शुरू कराया। दूसरी जगहो की तरह इसमें अद्भुत सफलता मिली।

महात्माजी ने निश्चय किया कि वह खुद भी नमक-कानून तोडेंगे, इसके लिए अहमदाबाद के सावरमती-आश्रम से 'डाडी'—समुद्र के किनारे—तक

पैदल ही जायेंगे। उनके जाने की तिथि मुकर्रर हो गई। डाडी पहुँचकर ६ अप्रैल को नमक बटोरने का निश्चय हो गया। साबरमती-आश्रम से डाडी काफी दूर है। वहाँ पैदल पहुँचने में तीन सप्ताह से ज्यादा लगनेवाले थे। बीच के पडाव मुकर्रर हो गये थे। महात्माजी अस्सी आदमियो के साथ आश्रम से डाडी के लिए रवाना हो गये। चलते समय उन्होने घोषणा कर दी कि अब स्वराज्य लेकर ही वह आश्रम में लौटेंगे, नही तो उनका मृत शरीर लोग समुद्र में बहता पायेंगे। उन्होने यह भी घोषणा कर दी कि सभी जगह लोग तैयारियाँ करें, पर जबतक वह स्वय सत्याग्रह न कर लें और दूसरो को सत्याग्रह करने की आज्ञा न दे दें तबतक कोई सत्याग्रह न करे।

महात्माजी की यात्रा जैसे ही आरम्भ हुई, सारे देश में बडा उत्साह पैदा हो गया। उनके साथ अस्सी सत्याग्रही थे, पर उनके पीछे-पीछे हजारों-हजार की भीड चलती थी। भीड कुछ दूर तक जाती, जब दूसरे गाँव के लोग आ जाते तो पिछले गाँव के लोग वापस होते। इस तरह, प्रति दिन भीड साथ में रहती। सारे देश में दिन-दिन उत्साह बढता ही गया। यह उत्साह केवल वही न था जहाँ महात्माजी यात्रा कर रहे थे, यह सारे देश में देखने में आया। सभी जगहो में लोग सत्याग्रह की तैयारी करने लगे, उत्सुकता से महात्माजी की आज्ञा की अपेक्षा करने लगे। मैंने जवाहरलालजी को, जो उस वर्ष में कांग्रेस के सभापति हुए थे, आमन्त्रित किया। उनके साथ विहार के कई जिलो का दौरा किया।

उन्नीसवाँ अध्याय

यहाँ पर इस सत्याग्रह का इतिहास नही दिया जा सकता, पर इसकी कुछ ऐसी बातें, जो विशेष महत्व रखती है, दी जा सकती है । ऊपर कहा जा चुका है कि महात्माजी ने डाडी-यात्रा के लिए निकलते समय कहा था कि या तो मै स्वराज्य लेकर ही आश्रम में लौटूंगा या मेरा शरीरात हो जायगा । उन्होने अपने इस वचन को पूरा किया, क्योकि वह फिर साबरमती-आश्रम में नही लौटे । इस सत्याग्रह के समाप्त होने के बाद वह वर्धा चले गये । वहाँ कुछ दिनो तक रहने के बाद वहाँ से थोडी ही दूर एक गाँव में रहने लगे, जिसका नाम 'सेवाग्राम' है । वह कभी कोई बात ऐसी नही करते थे जिसमें हर शब्द का अर्थ न होता हो और जिसके अनुसार खुद चलने के लिए वह तैयार न होते हो । इतना बडा आश्रम—जिसके बनाने में उन्होने प्राय पन्द्रह वर्ष लगाये थे, जिसकी इमारतो में लाखो रुपये खर्च किये थे जो अनेक प्रकार के रचनात्मक कामो का केन्द्र बना हुआ था, जहाँ सच्चे सत्याग्रही तैयार हो रहे थे, जहाँ का जीवन और रहन-सहन सारे देश के सेवको के लिए उदाहरण आदर्श बन रहा था जिसको उन्होने माता जिस लाड-प्यार से बच्चो को पालती है, उसी स्नेह से पाला-पोसा था—हमेशा के लिए उन्होने छोड दिया । इसका अर्थ यह नही है कि आश्रम टूट गया अथवा जो काम वहाँ हो रहा था वह खतम हो गया । इसका अर्थ केवल इतना ही है कि महात्माजी वहाँ स्वय नही गये, बस जो लोग वहाँ रह गये वे ही वहाँ के कामो को चलाते रहे । पीछे, वह हरिजन-सेवा के काम में लगा दिया गया, आज भी वह इसी काम में सलग्न है । महात्माजी श्रीतुलसी दास की उस चौपाई को याद रखते थे और उसके अनुसार काम भी किया करते थे—

रघुकुलरीति सदा चलि आई ।
प्रान जाइ बरु वचन न जाई ।।

इसका दूसरा ज्वलत उदाहरण कुछ दिनो के बाद देखने में आया, जब १९३२ में उन्होने यरवदा-जेल में हरिजनो के लिए अलग चुनाव-क्षेत्र होने का विरोध किया था। जब वह १९३१ में गोलमेज-कान्फरेंस में गये थे, वहाँ हिन्दू-मुसलमान समस्या हल नहीं कर सके। उन्होने वही देख लिया कि हरिजनो की तरफ से भी अलग चुनाव-क्षेत्र की माँग है, तब उन्होने एक भाषण में एक वाक्य कह दिया था कि अलग चुनावक्षेत्र देकर यदि हरिजन दूसरे हिन्दुओ से हमेशा के लिए अलग अछूत रखे गये तो वह इसका विरोध अपनी जान देकर भी करेंगे, प्रधान मन्त्री मैकडोलन ने हरिजनो के लिए अलग चुनावक्षेत्र अपने फैसले में मजूर कर लिया। उस समय महात्माजी जेल में थे। उन्होने जेल से ही गवर्नमेंट के साथ लिखा-पढ़ी की, अपनी उस बात का स्मरण भी दिलाया और कहा कि गवर्नमेंट इस फैसले को रद्द नही करेगी तो उनको अपने वाक्य के अनुसार अपने प्राणो की ही बाजी लगा देनी पडेगी। जब गवर्नमेंट ने उनकी बात उस समय न सुनी तो उन्होंने अनशन किया और घोषित किया कि जबतक वह फैसला बदला नही जायगा तबतक वह अन्न-ग्रहण नही करेंगे। सौभाग्य से फैसले में यह शर्त थी कि अगर सब पक्ष, जिनका किसी विशेष विषय मे सम्बन्ध था, मिलकर एक राय से उसमें अदल-बदल कराना चाहें तो वह किया जा सकेगा। इसका नतीजा यह हुआ कि हरिजनो और दूसरे हिन्दुओ के बीच यह समझौता हो गया कि अलग चुनाव-क्षेत्र नही होगे, पर हरिजनों के लिए धारा-सभाओ में, उनकी सख्या के अनुपात में, उनकी जगहे सुरक्षित कर दी जायँगी। श्री मैकडोनल के फैसले में जितनी जगहें मिली थीं, उनसे कही ज्यादा जगहे हरिजनो को मिल गईं। पर चुनाव का तरीका दूसरा कर दिया गया। अलग चुनावक्षेत्र हटा दिये गये। समझौता होते ही ब्रिटिश गवर्नमेंट ने उसे मान लिया और अपने फैसले को समझौते के अनुसार बदल दिया। जिस समय महात्माजी ने वह वाक्य राउण्ड-टेबुल कान्फरेंस में कहा था उस समय किसी ने इसका अर्थ यह नही लगाया था कि इसको वह अक्षरश पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। जब गवर्नमेंट ने उनके लिखे हुए पत्र प्रकाशित कर दिये जिनमें उन्होने इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए अनशन द्वारा इसको पूरा करने का अपना इरादा घोषित किया था, तो सारे देश में एक बडी खलबली मच गई, जिसका नतीजा उपरोक्त समझौता और ब्रिटिश गवर्नमेंट के फैसले में सशोधन हुआ।

जब महात्माजी डाडी-यात्रा के लिए तैयार हो रहे थे तो कुछ लोगो का विचार हुआ कि यात्रा आरम्भ करने के समय सारे देश के लिए एक सन्देश

दे जायँ, जो ग्रामोफोन के लिए रिकार्ड कर लिया जाय और वही सारे देश में लोगो को सुनाया जाय। आशा की जाती थी कि इस प्रकार यह ऐतिहासिक सन्देश महात्माजी के शब्दो मे ही नही, वल्कि उनकी अपनी आवाज में भी गाँव-गाँव में पहुँचा दिया जायगा। यह भी नही मालूम था कि महात्माजी को गवर्नमेंट कबतक स्वतन्त्र छोडेगी। सोचा गया था कि ऐसी अवस्था म यदि उनका सन्देश उनकी अपनी ही आवाज में उनके जेल चले जाने के बाद भी जन-साधारण को मिलता रहेगा, तो सत्याग्रह के लिए आवश्यक और उत्साह-वर्द्धक साबित होगा। उस वक्त मै भी साबरमती में था। लोगो ने कहा, मै ही इस प्रस्ताव को महात्माजी के पास उपस्थित करूँ। इसका उत्तर महात्माजी ने जो दिया उससे उनके अटल विश्वास और उनकी सत्यनिष्ठा का परिचय मिलता है। उन्होने कहा—"यदि मेरे सन्देश में सत्य है तो मै जेल के अन्दर रहूँ या बाहर, उसे लोग सुन ही लेंगे। पर यदि उसमें सत्य नही है तो तुम हजार कोशिशें करो, ग्रामोफन द्वारा वह जन-मन तक पहुँच नही सकेगा। इसी प्रकार, जो सत्याग्रह आरम्भ किया जा रहा है, वह यदि सचमुच सत्याग्रह है, हम उसे ठीक सत्य और अहिंसा पर चलकर पूरा करते है, तो वह सफल होगा ही, चाहे मेरा शब्द लोग सुनें या न सुनें, मेरी अपनी आवाज उनके कानो तक पहुँचे या न पहुँचे। इसीलिए, इस तरह के रिकार्ड की न तो कोई जरूरत है और न उससे कोई लाभ ही होगा।" इसके बाद फिर किसी की भी हिम्मत न हुई कि वह और कुछ आग्रह करे।

जब सत्याग्रह आरम्भ हुआ और अच्छे-अच्छे लोग जेलखाने जाने लगे तो केवल जनता पर ही इसका असर नही पडा, बल्कि गवर्नमेंट-कर्मचारियो पर भी असर पडता हुआ नजर आया—विशेषकर उन लोगो पर जिनको इस आन्दोलन के दबाने का भार सौंपा गया था। ऐसा सभी जगहो मे देखा गया था। मै यहाँ पर विहार की कुछ घटनाएँ दे देना चाहता हूँ, जिनको मैने खुद अपनी आँखो देखा। चम्पारण का जिक्र है। वहाँ तय किया गया था कि प्रमुख कार्यकर्त्ताओ में से एक विपिनविहारी वर्मा प्राय आधे जिले का भ्रमण करके सत्याग्रह करेंगे, जैसा महात्माजी ने साबरमती से डाडी तक यात्रा करने के बाद नमक-कानून को तोडा था। विपिन बाबू पैदल ही कुछ स्वयसेवको के साथ निकले। बीच में चार-पाँच मील के बाद ठहर जाते थे। इस तरह, जहाँ सत्याग्रह करने का निश्चय था वहाँ कई दिनो में पहुँचे। रास्ते में जनता ने बडा स्वागत किया। जहाँ ठहरना होता, वहाँ पहले से ही लोग बडी तैयारियाँ करके रखते। इससे बडी जागृति हुई और उत्साह बढा। सत्याग्रह के स्थान पर नमक बनाने के लिए मिट्टी पानी लोगो ने पहले से ही

रखा था। पुलिस भी पहले से ही गिरफ्तार करने के लिए तैयार थी। थोडी ही दूर पर एक वगीचे में मजिस्ट्रेट का खेमा भी लगा हुआ था, जहाँ वह पहले से ही मुकदमा सुनने तथा सजा देने के लिए तैयार वैठा था। यह पहला ही दिन था जब सूबे में वाजाब्ता सत्याग्रह होनेवाला था। और-और जगहो में भी लोगो ने इसी तरह सत्याग्रह करने का प्रवन्ध किया था।

मैं चम्पारण में स्वय चला गया, क्योकि महात्माजी का इस स्थान से काफी सम्वन्ध रह चुका था। मैं जब वहाँ पहुँचा तो देखा, नमक वनाने की विधि समाप्त हो चुकी थी, कानून तोडनेवाले गिरफ्तार करके मजिस्ट्रेट के पास पहुँचाये जा चुके थे। मजिस्ट्रेट भी मुकदमा सुनने ही जा रहा था। मजिस्ट्रेट का चेहरा उतरा हुआ और उदास! सिर नीचे लटकाये, टेवुल पर ही उसकी आँखें जमी हुई थी। जवतक हमलोग वहाँ रहे, उसने एक वार भी सिर नही उठाया। जो कुछ लिखता-पढता था, नीचे सिर किये हुए ही। उसी दशा में उसने सव काम पूरा किया, छ. महीने की सजा का हुक्म सुना दिया। देखने से सवको ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके दिल में वडी चोट लग रही है, पर उसे कोई दूसरा चारा नजर नही आता, इसलिए मजवूरी कुछ अपना काम करता जा रहा है। मजिस्ट्रेट की ऐसी दशा होने का एक विशेष कारण भी था।

सन् १९२१ में असहयोग जोरो पर चल रहा था। विद्यार्थियो को कालेज छोडकर निकल आने को कहा गया था। उस समय आज के मजिस्ट्रेट पटना-कालेज के एक विद्यार्थी थे। पढने में वहुत तेज थे। छात्रवृत्ति पाये हुए थे। वी० ए० में पढ रहे थे। परीक्षा दो-तीन महीनो के वाद ही होनेवाली थी। जव कालेज के और विद्यार्थी कालेज छोडकर निकले तो वह भी उनके साथ निकल आये थे। जो राष्ट्रीय महाविद्यालय हमने खोला था उसमें आकर वह दाखिल हो गये थे। पर यह खवर पाते ही उनके घर के लोग आकर जवरदस्ती उन्हे पकड ले गये। राष्ट्रीय महाविद्यालय छोड़कर जाते समय भी मैंने उनके विद्यार्थी-मुखडे पर वही मुद्रा और उदासी देखी थी जो नौ वर्षो के वाद आज फिर एक वार उनके मजिस्ट्रेटी चेहरे पर देखने में आई। हाँ, महाविद्यालय से चले जाने के वाद वह परीक्षा पास करके मजिस्ट्रेट हो गये। आज उनकी आँखें इसलिए और भी ऊपर नही उठती थीं कि मैं वहाँ हाजिर था।

सजा होने पर विपिन वावू मोतीहारी-जेल में पहुँचाये गये। वहाँ जेल पर भी वडी भीड जुट गई। जेल के कर्मचारी कुछ घवरा रहे थे कि कही वलवा-फसाद न हो जाय, पर कुछ हुआ नही। जव मैं वहाँ से पटना लौटा

दे जायँ, जो ग्रामोफोन के लिए रिकार्ड कर लिया जाय और वही सारे देश में लोगो को सुनाया जाय। आशा की जाती थी कि इस प्रकार यह ऐतिहासिक सन्देश महात्माजी के शब्दो मे ही नही, बल्कि उनकी अपनी आवाज में भी गाँव-गाँव में पहुँचा दिया जायगा। यह भी नही मालूम था कि महात्माजी को गवर्नमेंट कबतक स्वतत्र छोडेगी। सोचा गया था कि ऐसी अवस्था म यदि उनका सन्देश उनकी अपनी ही आवाज में उनके जेल चले जाने के बाद भी जन साधारण को मिलता रहेगा, तो सत्याग्रह के लिए आवश्यक और उत्साह-वर्द्धक सावित होगा। उस वक्त मै भी साबरमती में था। लोगो ने कहा, मै ही इस प्रस्ताव को महात्माजी के पास उपस्थित करूँ। इसका उत्तर महात्माजी ने जो दिया उससे उनके अटल विश्वास और उनकी सत्यनिष्ठा का परिचय मिलता है। उन्होंने कहा—"यदि मेरे सन्देश में सत्य है तो मै जेल के अन्दर रहूँ या बाहर, उसे लोग सुन ही लेंगे। पर यदि उसमें सत्य नही है तो तुम हजार कोशिशें करो, ग्रामोफन द्वारा वह जन-मन तक पहुँच नही सकेगा। इसी प्रकार, जो सत्याग्रह आरम्भ किया जा रहा है, वह यदि सचमुच सत्याग्रह है, हम उसे ठीक सत्य और अहिसा पर चलकर पूरा करते है, तो वह सफल होगा ही, चाहे मेरा शब्द लोग सुनें या न सुनें, मेरी अपनी आवाज उनके कानो तक पहुँचे या न पहुँचे। इसीलिए, इस तरह के रिकार्ड की न तो कोई जरूरत है और न उससे कोई लाभ ही होगा।" इसके वाद फिर किसी की भी हिम्मत न हुई कि वह और कुछ आग्रह करे।

जब सत्याग्रह आरम्भ हुआ और अच्छे-अच्छे लोग जेलखाने जाने लगे तो केवल जनता पर ही इसका असर नही पडा, बलिक गवर्नमेंट-कर्मचारियो पर भी असर पडता हुआ नजर आया—विशेषकर उन लोगो पर जिनको इस आन्दोलन के दबाने का भार सौंपा गया था। ऐसा सभी जगहो में देखा गया था। मै यहाँ पर विहार की कुछ घटनाएँ दे देना चाहता हूँ, जिनको मैने खुद अपनी आँखो देखा। चम्पारण का जिक्र है। वहाँ तय किया गया था कि प्रमुख कार्यकर्त्ताओ में से एक विपिनविहारी वर्मा प्राय आधे जिले का भ्रमण करके सत्याग्रह करेंगे, जैसा महात्माजी ने साबरमती से डाडी तक यात्रा करने के वाद नमक-कानून को तोडा था। विपिन वाबू पैदल ही कुछ स्वयसेवको के साथ निकले। बीच में चार-पाँच मील के वाद ठहर जाते थे। इस तरह, जहाँ सत्याग्रह करने का निश्चय था वहाँ कई दिनो में पहुँचे। रास्ते में जनता ने वडा स्वागत किया। जहाँ ठहरना होता, वहाँ पहले से ही लोग वडी तैयारियाँ करके रखते। इससे वडी जागृति हुई और उत्साह वढा। सत्याग्रह के स्थान पर नमक वनाने के लिए मिट्टी-पानी लोगो ने पहले से ही

रखा था। पुलिस भी पहले से ही गिरफ्तार करने के लिए तैयार थी। थोडी ही दूर पर एक वगीचे में मजिस्ट्रेट का खेमा भी लगा हुआ था, जहाँ वह पहले से ही मुकदमा सुनने तथा सजा देने के लिए तैयार वैठा था। यह पहला ही दिन था जव सूवे में वाजाब्ता सत्याग्रह होनेवाला था। और-और जगहो में भी लोगो ने इसी तरह सत्याग्रह करने का प्रवव किया था।

मै चम्पारण में स्वय चला गया, क्योकि महात्माजी का इस स्थान से काफी सम्वन्ध रह चुका था। मै जव वहाँ पहुँचा तो देखा, नमक वनाने की विधि समाप्त हो चुकी थी, कानून तोडनेवाले गिरफ्तार करके मजिस्ट्रेट के पास पहुँचाये जा चुके थे। मजिस्ट्रेट भी मुकदमा सुनने ही जा रहा था। मजिस्ट्रेट का चेहरा उतरा हुआ और उदास! सिर नीचे लटकाये, टेवुल पर ही उसकी आँखें जमी हुई थी। जवतक हमलोग वहाँ रहे, उसने एक वार भी सिर नही उठाया। जो कुछ लिखता-पढ़ता था, नीचे सिर किये हुए ही। उसी दशा में उसने सव काम पूरा किया, छ महीने की सजा का हुक्म सुना दिया। देखने से सवको ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके दिल में वडी चोट लग रही है, पर उसे कोई दूसरा चारा नजर नही आता, इसलिए मजवूरी कुछ अपना काम करता जा रहा है। मजिस्ट्रेट की ऐसी दशा होने का एक विशेष कारण भी था।

सन् १९२१ में असहयोग जोरो पर चल रहा था। विद्यार्थियो को कालेज छोडकर निकल आने को कहा गया था। उस समय आज के मजिस्टेट पटना-कालेज के एक विद्यार्थी थे। पढने में वहुत तेज थे। छात्रवृत्ति पाये हुए थे। वी० ए० में पढ रहे थे। परीक्षा दो-तीन महीनो के वाद ही होनेवाली थी। जव कालेज के और विद्यार्थी कालेज छोडकर निकले तो वह भी उनके साथ निकल आये थे। जो राष्ट्रीय महाविद्यालय हमने खोला था उसमें आकर वह दाखिल हो गये थे। पर यह खवर पाते ही उनके घर के लोग आकर जवरदस्ती उन्हे पकड ले गये। राष्ट्रीय महाविद्यालय छोडकर जाते समय भी मैंने उनके विद्यार्थी-मुखडे पर वही मुद्रा और उदासी देखी थी जो नौ वर्षो के वाद आज फिर एक वार उनके मजिस्ट्रेटी चेहरे पर देखने में आई। हाँ, महाविद्यालय से चले जाने के वाद वह परीक्षा पास करके मजिस्ट्रेट हो गये। आज उनकी आँखें इसलिए और भी ऊपर नही उठती थी कि मै वहाँ हाजिर था।

सजा होने पर विपिन वावू मोतीहारी-जेल में पहुँचाये गये। वहाँ जेल पर भी वडी भीड जुट गई। जेल के कर्मचारी कुछ घवरा रहे थे कि कही बलवा-फसाद न हो जाय, पर कुछ हुआ नही। जव मै वहाँ से पटना लौटा

तो सुना कि कुछ युवक, नमक बनाने की घोषणा करके, बाँकीपुर से पटना-सिटी के लिए, जुलूस बनाकर रवाना हुए थे, पर रास्ते में एक जगह पुलिस ने उनको रोक दिया। लडको ने वापस जाने से इनकार कर दिया। पर पुलिस ने गिरफ्तार नही किया। लडके सडक पर तब से पडे थे। मैं रात को स्टीमर से उतर कर सीधे सुलतानगज-थाने पर गया, जहाँ लडको के पडे रहने की खबर थी। मैने जाकर देखा कि बीच सडक पर लडके सोये हुए है, पुलिस के सिपाही सडक रोके खडे है। मुहल्ले के लोगो ने लडको को भोजन करा दिया था, उनके लिए सडक पर बिस्तर भी बिछा दिया था। वे सब गहरी नीद ले रहे थे। मैने देख लिया कि अब रात में कुछ होनेवाला नही है। इसलिए, सुबह फिर आने के खयाल से सदाकत-आश्रम चला गया।

दूसरे दिन खूब सबेरे जब पहुँचा तो देखा, लडके तो वहाँ खडे ही हैं, पुलिस भी उनके मुकाबले में खडी है, एक तरफ लोगो की भीड बढती जा रही है, दूसरी तरफ पुलिस-सिपाहियो की सख्या भी बहुत बढ गई है, जिनमें घुडसवार तथा बन्दूकधारी भी थे। हमलोग यही सोच रहे थे कि देखें, अब क्या होता है। इतने में ही अग्रेज डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट तथा पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट भी पहुँच गये। जब उनको मालूम हुआ कि मै भी पहुँच गया और भीड सँभालने में लगा हूँ, तो उन्होने मुझे थाने के अन्दर बुलाया, कहा कि इन लडको को वापस जाने कह दीजिए, नही तो हमको सख्त कार्यवाही करनी पडेगी। मैने कहा कि इन लडको ने कोई कसूर किया हो तो आप उनको गिरफ्तार कर सकते है, सजा देना चाहे तो दे सकते है, पर उन्हें वापस जाने को मै नही कह सकता। इस पर उन्होने यह कहा कि इतनी बडी भीड यहाँ जुट गई है, अगर कुछ गडबड हुआ तो इसकी जवाबदेही आपके सिर आयेगी। मैने उत्तर दिया, जवाबदेही तो मै लेता हूँ, पर यह भी कह देना चाहता हूँ कि लोगो की तरफ से कोई गडबडी नही होगी, अगर आप इन लडको को रास्ता दे देते है तो सारी भीड खुद ही छँट जायगी। पर वे ऐसा कब कर सकते थे? मैने सोचा कि कही अगर गोली चल जाय तो कोई सगीन घटना हो सकती है, इसलिए बेहतर है कि मै काग्रेस के और साथियो तथा नेताओ से सलाह कर लूँ। फिर जब मैने कहा कि मै अपने और साथियो से इस विषय में सलाह कर लेना मुनासिब समझता हूँ तब उन्होने देखा कि मै कुछ नरम पड रहा हूँ, इस पर वे कुछ और तेज होकर बोले कि आपको आधे घटे का समय देता हूँ, अपनी घडी हमारी घडी से मिला लीजिए। मुझको यह बुरा लगा और वही कह दिया कि अगर आध घटे के अन्दर इसका जवाब न दे दूँ तो आप समझें कि मै इनको हटाने से

इनकार कर रहा हूँ, फिर आप जो करना चाहे, कीजिएगा। यह कहकर मै वहाँ से आश्रम के लिए रवाना हो गया।

सदाकत-आश्रम जाकर, आपस में सलाह करके, हम सबने निश्चिय किया कि उन सत्याग्रहियो को वहाँ से नही हटाना चाहिए। यह सब आध घटे का समय पूरा होने के बहुत पहले ही तय हो गया। हमने टेलीफोन से कह दिया कि हम सत्याग्रहियो को वापस नही करेंगे आप जो करना चाहे, करें। मै भी यह कहकर तुरत आश्रम से सुलतानगज के लिए रवाना हुआ। मै यह सोचता जा रहा था कि हो सकता है, वहाँ कोई सगीन घटना घट गई हो, या गोली वगैरह भी चल गई हो तो कोई आश्चर्य नही। मै जा ही रहा था कि रास्ते में उसी मजिस्ट्रेट को अपनी मोटर पर आते देखा। उसने भी मुझे देख लिया। देखकर मुस्कराता हुआ चला गया। मैंने समझ लिया कि कोई सगीन घटना नहीं हुई है। जब मै वहाँ पहुँचा तो सुना कि पहले उसने लडको पर घुडसवारो को घोडा दौडाने का हुक्म दिया था। घोडे जब दौडते नजर आये तो लड़के निर्भीक होकर सारी सडक को घेर लेट गये। घोडे नजदीक आकर रुके और फिर वापस चले गये। जब एक-दो बार ऐसा किया और लडके डरे नही, बल्कि घोडे को आते देख सडक पर लेट जाते तो अन्त में उन्होंने लडकों को जमीन से उठवाकर मोटर-लारी में रखवा जेलखाने भेज दिया। बस उनके हटते ही सारी भीड भी हट गई। लोग जहाँ-तहाँ चले जा रहे थे कि मै वहाँ पहुँच गया। मुझसे यह सब बातें कही गई। हम लोग भी यही चाहते थे कि सत्याग्रही गिरफ्तार कर जेलखाने भेज दिये जायँ, या और जो कुछ गवर्नमेंट करना चाहे सो करे, पर हमको जो करना था वह सत्याग्रही न छोडें। हमलोग फिर इकट्ठे होकर, आगे का कार्यक्रम बनाने के लिए, आश्रम में बैठे।

इसके बाद से सत्याग्रही नियमपूर्वक चार बार जुलूस निकालकर प्रतिदिन जाने लगे। समय की सूचना डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को दे दी गई कि जिसमें पुलिस को चौबीस घण्टे सत्याग्रहियो का इन्तजार न करना पडे, वह ठीक समय पर अपने स्थान पर आये, जहाँ चाहे वहाँ सत्याग्रही को गिरफ्तार करे या जो कुछ करना चाहे करे। ठीक समय पर सत्याग्रही जब जाते, जनता की बडी भीड हो जाती। हमलोगो के दिल में भी यही डर रहता कि शायद कही कुछ फसाद न हो जाय, क्योकि जो भीड़ जमा होती उसीको तितर-बितर करने के लिए पुलिस के अफसर डडे दिखा चाबुको से पीटते। हमलोग भी उस समय तक वहाँ पहुँच जाया करते जिसमें शाति कायम रहे। घुडसवार बिलोची मुसलमान थे, जो बहुत पहले से ही बिहार-सरकार द्वारा बिहार में

लाकर रक्खे गये थे। दो अंग्रेज अफसर उनके साथ घोडो पर वहाँ मौजूद रहते। घोडे दौडाकर डडे और चाबुक मारने का काम अधिकतर दोनो अंग्रेज ही करते। अगर किसी को गिरफ्तार करना होता तो दूसरे सवार उसे गिरफ्तार करके साधारण पुलिस के हवाले कर देते, जो उसे वहाँ से थाने पर या जेल में ले जाती। प्रोफेसर अब्दुलबारी और मै, दूसरे कांग्रेसियो के साथ, पहुँच जाया करते।

एक दिन प्रो० बारी को खूब डडे लगे। मेरे नजदीक होकर घोडे दौडाये गये। पर मेरे ऊपर डडे का प्रहार नही हुआ। मालूम नही कि यह महज इत्तिफाक था या जान-बूझकर मुझे उन्होने छोड दिया। प्रो० बारी को चोट लगी, पर वह गिरे नही, क्योंकि वह शरीर से काफी मजबूत थे। दाढी भी थी और शक्ल से ही मालूम होता था कि मुसलमान है। उनकी बगल होकर एक बिलोची सवार चल रहा था। उसने उनसे आहिस्ता से पूछा, मौलवी! तुम यहाँ कैसे आ गये? प्रो० बारी ने जवाब दिया, अल्लाह ने तुम्हारे ही लिए मुझे भेज दिया है! इस पर वह सहम गया, फिर और कुछ न करके आहिस्ता-आहिस्ता उनको एक तरफ—जहाँ दूसरे लोग खडे थे—पहुचाकर अपना घोडा दौडाने लगा।

यह सिलसिला रोजाना चलता रहा। सत्याग्रही गिरफ्तार होते या न होते, पर जो भीड जमती उस पर वार जरूर होता, कुछ लोग तो जरूर घायल होते। भीड दिन-पर-दिन बढती ही जाती। मि० हसन इमाम नामी बैरिस्टर और प्रसिद्ध नेता थे, कलकत्ता-हाइकोर्ट की जजी कर चुके थे, कांग्रेस के प्रेसिडेंट भी रह चुके थे, पर वह सत्याग्रह में शरीक नही हुए थे। इसलिए जन-साधारण उनसे कुछ नाराज भी थे। जहाँ यह रोजाना मार-पीट हुआ करती थी वहाँ से उनका मकान बहुत दूर था, इसलिए उनको इसकी कोई खबर भी नही थी। एक दिन सबेरे उनकी स्त्री शहर की तरफ से लौट रही थी। उन्होने देखा कि लोगो पर किस तरह डडे बरसाये जा रहे है। कई युवको के सिर से खून बहते उन्होने अपनी आँखो देख लिया। उन्होने जाकर सब किस्सा मि० हसन इमाम से कहा कि किस तरह बेदर्दी से निहत्थे लोग पीटे जाते है, तो भी लोग शात रहते है और मार खाकर चले जाते है। इसका असर मि० हसन इमाम के दिल पर बहुत पडा। उन्होने मेरे पास टेलीफोन करके मुझे बुलाया, सब हाल भी मुझसे सुना। वह बहुत ही भावुक थे, इसलिए वह बहुत आवेश में आ गये। मुझसे उन्होने साफ-साफ कहा कि वह मदद करेंगे। मै बहुत खुश हुआ, उनको विश्वास दिलाया कि जहाँ तक हो सकेगा, जनता की ओर से कोई अशाति नही होने पावेगी।

यह सिलसिला कई दिनो तक चलता रहता। तबतक गुड फ्राइडे और ईस्टर आ गया। न मालूम कैसे मेरे मन में विचार आ गया कि हमारा सत्याग्रह धार्मिक आन्दोलन है, इसके कारण किसी के अपने धर्म-पालन में बाधा नही पडनी चाहिए। चूंकि जितने अफसर थे, सभी अग्रेज और क्रिश्चियन थे तथा सवार सबके-सब मुसलमान, इसलिए मैंने सोचा कि शुक्रवार को मुसलमानो का जुमा-नमाज होता है और गुड फ्राइडे तथा ईस्टरमण्डे को क्रिस्तान गिरजा जाते है, अतएव इन दोनो का समय बचा देना चाहिए। मैंने एक पत्र डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को लिख दिया कि शुक्रवार दोपहर को, जिस वक्त मुसलमान नमाज पढते है सत्याग्रहियो का जत्था नही जायगा, ताकि मुसलमान सवार अगर चाहे तो नमाज पढ सके, और क्रिस्तान अफसरो के लिए भी जो समय गिरजा जाने का हो, उस समय जत्था नही भेजा जायगा ताकि वे भी अपना धार्मिक कृत्य कर सकें, इन समयो को छोडकर और समयो पर जत्था बराबर जाया करेगा।

यह पत्र जब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को मिला तो उसने मुझसे टेलीफोन पर कहा कि वह मुझसे मिलना चाहता है, इसके लिए उसने समय भी बताया। मैं उसके घर पर गया। जाते ही मुझसे उसने पूछा कि जो बात आपने लिखी है वह क्या सच्चे दिल से लिखी है। मैंने कहा, हाँ, मैंने तो सच्चे दिल से ही लिखी है। इस पर उसने कहा, मै अग्रेज और क्रिश्चियन हूँ, पर मैं उन अँग्रेजो में नहीं हूँ जो बराबर तलवार चमकाया करते है, मै चाहता हूँ कि कोई ऐसा रास्ता निकले जिसमें गवर्नमेंट का हुक्म कायम रहे और यह झगडा भी समाप्त हो जाय। इतना कहकर उसने यह कहा कि जिस सडक से जत्थे जाया करते है उस बडे रास्ते को छोडकर अगर दूसरे रास्ते से, जिसको निचली सडक कहते हैं, जत्था जाय तो हम उसे जाने देंगे। मैंने कहा कि ऐसा नहीं हो सकेगा, जत्थे को तो जाना ही है और उसी रास्ते जाना है, जबतक उसे रोका जायगा वह जाया ही करेगा, पर वह अगर रोका न जाय तो ऐसी बात नही है कि हमेशा वह जाया ही करेगा और अगर जाया ही करेगा तो भी जो भीड जमा होती है वह नही होगी, क्योकि वह भीड़ जत्थे के लिए नही, पुलिस की कार्यवाही देखने के लिए ही जमा होती है।

इसी तरह की बातें हुईं। अन्त में, बिना कुछ तय हुए, मै चला आया। दूसरे दिन जब जत्था गया तो भीड पर जो मारपीट हुआ करती थी वह न हुई, केवल सत्याग्रही गिरफ्तार कर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किये गये। इसके बाद भीड खुद-ब-खुद हट गई। मै यह देखने के लिए कि इन सत्याग्रहियो को क्या सजा मिलती है, कचहरी में गया। मै अभी वही था कि

लाकर रक्खे गये थे । दो अग्रेज अफसर उनके साथ घोडो पर वहाँ मौजूद रहते । घोडे दौडाकर डडे और चाबुक मारने का काम अधिकतर दोनो अंग्रेज ही करते । अगर किसी को गिरफ्तार करना होता तो दूसरे सवार उसे गिरफ्तार करके साधारण पुलिस के हवाले कर देते, जो उसे वहाँ से थाने पर या जेल में ले जाती । प्रोफेसर अब्दुलबारी और म, दूसरे काग्रेसियो के साथ, पहुँच जाया करते ।

एक दिन प्रो० वारी को खूब डडे लगे । मेरे नजदीक होकर घोडे दौडाये गये । पर मेरे ऊपर डडे का प्रहार नही हुआ । मालूम नही कि यह महज इत्तिफाक था या जान-बूझकर मुझे उन्होने छोड दिया । प्रो० वारी को चोट लगी, पर वह गिरे नही, क्योकि वह शरीर से काफी मजबूत थे । दाढ़ी भी थी और शक्ल से ही मालूम होता था कि मुसलमान है । उनकी बगल होकर एक बिलोची सवार चल रहा था । उसने उनसे आहिस्ता से पूछा, मौलवी ! तुम यहाँ कैसे आ गये ? प्रो० वारी ने जवाब दिया, अल्लाह ने तुम्हारे ही लिए मुझे भेज दिया है ! इस पर वह सहम गया, फिर और कुछ न करके आहिस्ता-आहिस्ता उनको एक तरफ—जहाँ दूसरे लोग खडे थे—पहुचाकर अपना घोडा दौडाने लगा ।

यह सिलसिला रोजाना चलता रहा । सत्याग्रही गिरफ्तार होते या न होते, पर जो भीड जमती उस पर वार जरूर होता, कुछ लोग तो जरूर घायल होते । भीड दिन-पर-दिन वढती ही जाती । मि० हसन इमाम नामी वैरिस्टर और प्रसिद्ध नेता थे, कलकत्ता-हाइकोर्ट की जजी कर चुके थे, काग्रेस के प्रेसिडेंट भी रह चुके थे, पर वह सत्याग्रह में शरीक नही हुए थे । इस-लिए जन-साधारण उनसे कुछ नाराज भी थे । जहाँ यह रोजाना मार-पीट हुआ करती थी वहाँ से उनका मकान वहुत दूर था, इसलिए उनको इसकी कोई खवर भी नही थी । एक दिन सवेरे उनकी स्त्री शहर की तरफ से लौट रही थी । उन्होने देखा कि लोगो पर किस तरह डडे वरसाये जा रहे है । कई युवको के सिर से खून वहते उन्होने अपनी आँखो देख लिया । उन्होने जाकर सव किस्सा मि० हसन इमाम से कहा कि किस तरह वेदर्दी से निहत्थे लोग पीटे जाते है, तो भी लोग शात रहते है और मार खाकर चले जाते है । इसका असर मि० हसन इमाम के दिल पर बहुत पडा । उन्होने मेरे पास टेलीफोन करके मुझे वुलाया, सव हाल भी मुझसे सुना । वह वहुत ही भावुक थे, इसलिए वह वहुत आवेश में आ गये । मुझसे उन्होने साफ-साफ कहा कि वह मदद करेंगे । मै वहुत खुश हुआ, उनको विश्वास दिलाया कि जहाँ तक हो सकेगा, जनता की ओर से कोई अशाति नही होने पावेगी ।

बीसवाँ अध्याय

महात्माजी के वचन को लोग कितनी दृढता से मानते और पालते थे, इसका एक वहुत ज्वलत उदाहरण विहपुर (भागलपुर) में मिला। विहपुर का इलाका गगा के दियारे में पडता है। गगा की धारा इधर-उधर वदलती रहती है, जैसा सभी दियारो में हुआ करता है। इसके कारण जमीन के निशान हट जाया करते हैं। कौन जमीन किसकी है, यह लेकर लोग आपस में अक्सर लडा करते हैं। विहपुर के इलाके में एक अग्रेज ने वहुत जमीन ले रक्खी थी। वहाँ के लोगो से जमीन के लिए उसका वहुत झगड़ा चल रहा था। जमीन की हिफाजत के लिए उसने गोरखो को तैनात किया था। लोगो से यह वात वर्दाश्त नही हुई। एकदिन सव-के-सव जमा होकर, वहाँ तैनात किये गये गोरखों को लोगो ने मार डाला। उनकी लाशो को गंगा में वहा दिया अथवा इस तरह गायव कर दिया कि कुछ पता ही न लगा। उसी विहपुर में सत्याग्रह छिड गया।

१९२९ में जव मै उस इलाके में दौरा करने गया था तव लोगो में वडा उत्साह पाया था। मै समझता था कि जव सत्याग्रह छिडेगा तो वहाँ के लोग उत्साह-पूर्वक उसमें शरीक होगे। यह छाप मेरे दिल पर एक विशेष कारण से पडी थी। जव मै उस इलाके में दौरा कर रहा था तो एक जगह सभा के लिए समय कोई एक वजे या दो वजे दिन दिया गया था। मै कुछ दूर दूसरे गाँव में चला गया था। आशा की थी कि वहाँ ठीक समय पर वापस आ जाऊँगा। जव मै लौट रहा था तो अचानक वडे जोरो से वर्षा आ गई। हवा भी चलने लगी। मेरे पहुँचने में दो-तीन घटे की देर हो गई। मै भीगता-भागता जव वहाँ पहुँचा तो देखा कि एक वहुत वडी भीड वहाँ खडी है, सुना कि घटो से वह वर्षा में मेरा इन्तजार कर रही है। अभी तक पानी वरस ही रहा था। मैंने वर्षा में ही खडा होकर भाषण किया। जो कुछ कहना था, कहा। इसी से मैंने समझ लिया कि इस इलाके के लोगों में साहस और दृढता दोनों है।

दूसरे जत्थे के जाने का समय हो गया। वही पर खबर मिली कि पुलिस यद्यपि सडक पर खडी थी तथापि जब जत्था वहाँ पहुँचा तो उसे रोका नही, निकल जाने दिया। मजिस्ट्रेट ने मुकदमे में उनको उस वक्त तक के लिए कैद की सजा दी जबतक वह खुद अपना काम खत्म करके इजलास से न उठे। यह हुक्म सुनाकर वह तुरत उठ गया। उसके साथ ही सत्याग्रही भी वहाँ से उठकर उसके साथ ही बाहर चले आये। इसके बाद एक बार और जत्था गया। पर पुलिस ने उसे रोका नही। दूसरे दिन से पुलिस रोकने के लिए आई भी नही। सत्याग्रह का वह रूप यही समाप्त हो गया। मैंने देखा शाति-पूर्ण सत्याग्रह का असर एक तरफ जनता पर पडता है, दूसरी तरफ गवर्नमेंट की ओर से जितनी अधिक मारपीट होती है उतना ही लोगो का उत्साह बढता है, जिससे मारपीट का डर कम होता जाता है। शुरू मे जब भीड पर डडे चलाना आरम्भ होता तो लोग इधर-उधर भागते। पर आहिस्ता-आहिस्ता यह भागना बन्द हो गया। लोग डडे खा लेते, पर अपनी जगह से हटते नही, उधर पुलिस पर भी असर पडे बिना न रहता। मै समझता हूँ कि जो पत्र मैने डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट को लिखा उसका असर उसपर इतना पडा कि उसने इस बात को मुँह से बिना कहे सत्याग्रह की जीत मान ली और जुलूस जाने दिया।

इस तरह की घटनाओ की खबर चारो तरफ से आती कि जहाँ-जहाँ नमक बनता है वहाँ पुलिस के लोग पहुँचते है, नमक बनाने के लिए जो हाँडी बासन इकट्ठे किये जाते है उनको तोड-फोड देते है, कही-कही जमा हुए लोगो को पीटते भी है, पर नमक बनाने-वालो को गिरफ्तार बहुत कम करते है। न मालूम क्यो, मै गिरफ्तार नही किया गया। मै सभी जिलो का चक्कर खूब तेजी से लगा रहा था। किसी जिले में जब मै पहुँचता तो वहाँ एक मोटर लेकर एक कोने से दूसरे कोने तक, दो दिन या हद-से-हद तीन दिन में, दौड जाता। रास्ते में जहाँ-जहाँ नमक बनता होता था वहाँ पहुँचकर उन जगहो का मुलाहजा कर लेता, उन लोगो को उत्साहित कर देता और दिन-भर में छोटी-मोटी दस-बारह सभाएँ भी कर लेता। उत्साह इतना था कि सभी लोग अपने-अपने गाँव में मुझे ले जाना चाहते ताकि मै देख सकूँ कि उनके यहाँ भी नमक बनाया जाता है। सभा में जो नमक बना रहता उसे मैं खुलेआम नीलाम करता। इस तरह आन्दोलन के खर्च लिए कुछ रुपये भी जमा कर लेता, क्योकि एक-एक पुडिया नमक दस-दस बीस-बीस रुपये में लोग ले लेते। यह सब होते हुए भी, सारे सूबे में, जहाँ तक मुझे स्मरण है, कही भी, जनता की ओर से, कोई फसाद या बलवा नही हुआ।

वीसवाँ अध्याय

महात्माजी के वचन को लोग कितनी दृढता से मानते और पालते थे, इसका एक बहुत ज्वलत उदाहरण विहपुर (भागलपुर) में मिला। विहपुर का इलाका गगा के दियारे में पड़ता है। गगा की धारा इधर-उधर बदलती रहती है, जैसा सभी दियारो में हुआ करता है। इसके कारण जमीन के निशान हट जाया करते हैं। कौन जमीन किसकी है, यह लेकर लोग आपस में अक्सर लडा करते है। विहपुर के इलाके में एक अग्रेज ने बहुत जमीन ले रक्खी थी। वहाँ के लोगों से जमीन के लिए उसका बहुत झगडा चल रहा था। जमीन की हिफाजत के लिए उसने गोरखो को तैनात किया था। लोगो से यह बात बर्दाश्त नही हुई। एकदिन सब-के-सब जमा होकर, वहाँ तैनात किये गये गोरखो को लोगों ने मार डाला! उनकी लाशो को गगा में बहा दिया अथवा इस तरह गायब कर दिया कि कुछ पता ही न लगा। उसी विहपुर में सत्याग्रह छिड गया।

१९२९ में जब मैं उस इलाके में दौरा करने गया था तब लोगो में बडा उत्साह पाया था। मैं समझता था कि जब सत्याग्रह छिडेगा तो वहाँ के लोग उत्साह-पूर्वक उसमें शरीक होगे। यह छाप मेरे दिल पर एक विशेष कारण से पडी थी। जब मैं उस इलाके में दौरा कर रहा था तो एक जगह सभा के लिए समय कोई एक बजे या दो बजे दिन दिया गया था। मैं कुछ दूर दूसरे गाँव में चला गया था। आशा की थी कि वहाँ ठीक समय पर वापस आ जाऊँगा। जब मैं लौट रहा था तो अचानक बडे जोरो से वर्षा आ गई। हवा भी चलने लगी। मेरे पहुँचने में दो-तीन घटे की देर हो गई। मैं भीगता-भागता जब वहाँ पहुँचा तो देखा कि एक बहुत बडी भीड वहाँ खड़ी है, सुना कि घटो से वह वर्षा में मेरा इन्तजार कर रही है! अभी तक पानी बरस ही रहा था। मैंने वर्षा में ही खडा होकर भाषण किया। जो कुछ कहना था, कहा। इसी से मैंने समझ लिया कि इस इलाके के लोगो में साहस और दृढ़ता दोनो है।

जब कुछ महीनो के बाद सत्याग्रह आरम्भ हुआ तब वहाँ भी लोगो ने सत्याग्रह शुरू कर दिया। नमक-कानून तोड़ने के साथ-साथ शराब-बन्दी तथा नशीली चीजों के बहिष्कार का काम भी हो रहा था। वहाँ गाँजे की एक दूकान थी। थोडी ही दूर पर हमलोगो का आश्रम था। एक तरफ रेलवे-स्टेशन। एक छोटा-सा बाजार जिसमें पाँच-सात दूकानें। नजदीक ही एक डाक-बँगला भी। कुछ दूर पर थाना। स्वयसेवको ने गाँजे की दूकान पर पहरा लगाया। पुलिस को खबर लगी। आकर पहरा देनेवालो को मारा-पीटा। उत्साह बढ गया। और भी जोरो से पहरा पडने लगा। जिले के अफसरो को खबर हुई। वहाँ से कुछ और ज्यादा पुलिस के आदमी आये। एक दिन उन्होंने जाकर आश्रम के स्वय-सेवको तथा कार्यकर्त्ताओ को जबर्दस्ती निकाल दिया। जो खादी तथा सरजाम वहाँ था, सबको लूट-पाट कर तितर-बितर कर दिया। गाँजा बेचनेवाला, हगामा देखकर, वहाँ से भाग गया। इस तरह गाँजे की दूकान बन्द हो गई।

पुलिस ने आश्रम दखल करके वहाँ अड्डा जमा लिया। सत्याग्रही अब आश्रम को वापस लेने के लिए सत्याग्रह करने लगे। सत्याग्रह का रूप यह हो गया कि कुछ लोग हाथ में केवल झडा लेकर आश्रम की तरफ जाते। पुलिस उनको वहाँ जाने से रोकती। प्रति दिन एक जत्या जाता। पुलिस या तो उसे मारती-पीटती या सबको गिरफ्तार कर लेती। जब गाँव में खबर पहुँची तो भीड वहाँ भी सत्याग्रह के समय पर जमा हो जाती। जब यह भीड बढ़ने लगी तब पुलिस भीड को लाठियो से मार-पीटकर तितर-बितर कर देती। कभी तो सत्याग्रहियो को भी पीटती। कभी उनको गिरफ्तार कर आश्रम में ही रख लेती, फिर जब भीड चली जाती तो वहाँ से उन्हे निकाल कर थाने पर या जेलखाने में भेज देती। यह सिलसिला चलता रहा। भीड दिन-दिन बढती गई। यहाँ तक कि बीस-बीस पचीस-पचीस हजार आदमी दूर-दूर से जमा होते, लाठी खाते और चले जाते। पुलिस की तादाद कुछ ज्यादा नही थी। जैसे जबरदस्त लट्ठधर और लडाकू उस इलाके के लोग होते है वैसे लोग अगर चाहते तो बातो-ही-बातो में उनका सफाया कर डालते। पर किसी ने कभी मुंह से भी उनको चोट नही पहुँचाई, लाठी की तो बात ही क्या थी।

मैं एक दिन वहाँ गया। स्थान, गगा के उत्तर, भागलपुर से थोडी ही दूर पर है। उस (बिहपुर) स्टेशन से एक ब्राच-लाइन गगा के किनारे तक जाती है, जहाँ से स्टीमर पर गगा-पार करके आदमी उस पार भागलपुर पहुँच जाता है। मैं भागलपुर से ही वहाँ गया था। इसलिए भागलपुर के

कुछ ऐसे लोग भी साथ हो गये थे जो सत्याग्रह में शरीक होनेवाले तो नही थे, पर वहाँ का हाल सुनकर प्रभावित वहुत हुए थे। पटना से भी कुछ लोग साथ गये थे।

वहाँ हम लोगो के जाने की खवर पहले पहुँच गई थी। इसलिए वहाँ उस दिन भीड अधिक जुट गई थी। पुलिस का सुपरिण्टेण्डेण्ट सिपाहियो के साथ मौजूद था। समय पर सत्याग्रहियो का एक छोटा-सा जत्था निकला। भीड सडक के दोनो ओर लगी थी। कुछ दूर पर एक सभा हुई, जहाँ मैंने छोटा-सा भाषण किया। पुलिस वहाँ भी मौजूद थी। मगर सभा में किसी किस्म की छेड-छाड नही हुई। जब सत्याग्रही आश्रम के फाटक के पास पहुँचे तो वे गिरफ्तार कर आश्रम के भीतर ही ले जाये गये। हम लोगो ने समझा कि अब और कुछ आज विशेष नही होगा। पर तुरत ही पुलिस का सुपरिण्टे-ण्डेण्ट पन्द्रह लट्ठधारी सिपाहियो के साथ निकला। हुक्म दिया कि मारो। सिपाही वेधडक भीड पर लाठियाँ वरसाने लगे, क्योकि भीड सडक के दोनो तरफ वहुत दूर तक फैली हुई थी। वे लोग दोनो तरफ लाठियाँ वरसाते आगे वढते गये। भीड में से न किसी ने हाथ ही उठाया और न कोई भगदड ही मची। हम लोग कुछ दूर पर थे। कई जगहो में कई आदमी फैले हुए थे। सुपरिण्टेण्डेण्ट सिपाहियो के साथ पीटता-पिटवाता वहाँ भी पहुँचा जहाँ मैं था। लाठियाँ तो वेधडक चल ही रही थी, मुझ पर भी कई लाठियाँ पडी। कुछ चोट भी आई, पर एक दूसरे स्वयसेवक ने मेरे ऊपर लाठियों को न आने दिया, मुझे छोप लिया, इसलिए अधिक चोट उसी को आई। प्रोफेसर अब्दुल वारी थोडी ही दूर पर थे। उनको ज्यादा चोट आई। वह चोट खाकर गिर पडे। खून वहने लगा। यह सारा मामला थोडी देर में खतम हो गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट और सिपाही, सारी भीड में लोगो पर लाठियाँ वरसाते, एक तरफ से निकले, फिर आश्रम में चले गये।

भीड ने समझ लिया कि आज का काम खतम हुआ, क्योकि ऐसा ही प्रतिदिन हुआ करता था। लोग जहाँ-तहाँ के लिए रवाना हो गये। हमलोग जो भागलपुर से आये थे, वही ठहरे रहे; क्योकि गाडी में कुछ देर थी। एक डाक्टर वहाँ रहते थे। जब भीड हट गई तो वह हमलोगो में से घायलो की मरहम-पट्टी करने लगे। हमलोग घास पर वैठे थे और घाव धोये जा रहे थे कि इतने में पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट और इन्सपेक्टर कुछ सिपाहियों के साथ उसी तरफ आये। हमने समझा कि शायद फिर एक वार हमला होगा, पर वे लोग कुछ ही दूर पर ठहर गये। फिर हमलगो में से एक आदमी को गिरफ्तार कर ले गये। हमलोग गाडी का इन्तजार कर रहे थे।

इसी समय कुछ लोग, जो अभी गये नही थे, हमारे पास आये। वे गाँव के रहनेवाले थे, बहुत ही दुखी थे; मुझे घेर कर बैठ गये, बहुत आवेश में कहने लगे—"यहाँ हमारे बीच आप आये। आप और दूसरे नेता इस तरह हमलोगो के जीते-जी हमारी आँखो के सामने पीटे गये। हमलोग कुछ कर नही सके। इतनी पुलिस की क्या मजाल थी कि हमलोगो पर हाथ उठाती, आपकी तो बात ही कौन कहे। पर हम क्या करें, गाधीजी ने हमलोगों के हाथो को बाँध दिया है, हम कुछ नही कर सकते। नहीं तो इतनी पुलिस को हम चटनी कर डालते, चाहे इसका नतीजा जो कुछ होता।" यह कहकर सब फूट-फूट रोने लगे। मैंने उनको बहुत समझाया कि आप लोगों की बहादुरी तो शाति रखने में ही है, इसी से अन्त में हमारी जीत होगी।

हम लोग जिस ट्रेन से रवाना हुए उसी से कुछ पुलिस-सिपाही भी भागलपुर चले। इसका अर्थ हमको उस वक्त नही मालूम हुआ। दूसरे दिन हम सबेरे गगास्नान करने गये। वहाँ पुलिस के कुछ हिन्दू सिपाही भी स्नान करने आये थे। उन्होने पहले दिन का हाल सुनाते हुए कहा—"सिपाहियो में दो दल हो गया था। जब सुपरिण्टेण्डेण्ट ने सब लोगो पर लाठी चलाने का हुक्म दिया—खासकर आप-जैसे लोगों पर तो हमलोगो को यह बात पसद नही आई, इसलिए हममें से कुछ ने सिर्फ लाठी भाँजा और ऐसा दिखलाया कि हम लाठियाँ चला रहे हैं, पर किसी को हमलोगो की लाठियाँ लगी नही। किन्तु कुछ सिपाही ऐसे थे जिन्होंने खूब पीटा। आपलोगो को जब लाठी लग गई और अब्दुल बारी साहब बहुत जोरो की चोट खाकर बेहोश हो गिर पड़े, तो हमलोगों से यह बात बर्दास्त नही हुई। हमलोगो ने उन सिपाहियो से कह दिया कि तुम लोगों ने फिर अगर लाठियाँ चलाई तो ठीक न होगा। पर वे भला क्यो मानें, फिर गिरे हुए बारी साहब पर लाठियाँ चला ही दीं। तब हमलोगों ने उस लाठी को ऊपर-ही-ऊपर अपनी लाठी पर ओड लिया। उन सिपाहियों को भी अपनी लाठी से मारा। सुपरिण्टेण्डेण्ट तो आगे-आगे चलता था। हमलोग उसके पीछे-पीछे इसी तरह लाठी भाँजते चलते थे। इसलिए वह खुद तो देख नही सकता था कि किसको लाठी लगी और किसको मारा। हम लोगो ने इस तरह बारी साहब की जान बचा ली और उन सिपाहियो को भी पीटा। इसलिए हमलोगो को डर हो गया कि वे सिपाही हमलोगो के खिलाफ शिकायत करेंगे। इसलिए मार-पीट खतम होते ही हमने पहले ही जाकर साहब से नालिश कर दी कि इन सिपाहियो को लाठी चलाना नही आता है, ये लोग इस तरह लाठी घुमाते हैं कि भीड छोडकर आपस में ही

चोट खा जाते है। इस पर उन सिपाहियो ने भी कहा कि यह सब गलत बात है; इन लोगो ने हमको ही पीटा है, हमको लाठी चलाने से भी रोका है और खुद तो इन्होने कुछ किया ही नही है। साहब ने यह सब सुनकर और तो कुछ नही किया, पर हम लोगो को रात ही भागलपुर वापस कर दिया। हम लोग उसी गाडी से आये जिससे आप लोग रात आये।"

हमने देखा कि पुलिस के सिपाहियो में भी सत्याग्रहियो के साथ बहुत सहानुभूति है; वे जहाँ तक सख्ती करने में अपने को मजबूर समझते थे वहाँ तक ही सख्ती करते थे, नौकरी छोडने के लिए तैयार नही थे, पर सत्याग्रहियो के साथ ज्यादती नही करना चाहते थे। यह सब बात अफसरो के साथ नही थी, यद्यपि उनमें भी कुछ अच्छे थे। इसी प्रकार, वही मुझे एक और सुखद अनुभव हुआ।

मैंने ऊपर जिक्र किया है कि अब हम लोग बैठकर मरहम पट्टी करा रहे थे, एक पुलिस के इन्स्पेक्टर भी सुपरिण्टेण्डेण्ट और सिपाहियों के साथ आये थे तथा हम लोगो में से एक को गिरफ्तार कर ले गये थे। मैंने उसको पहिचाना नही था। पीछे पूछने पर उनका नाम मालूम हुआ। मुझे याद आ गया कि मेरे स्कूल में इसी नाम के एक सहपाठी थे जो पुलिस में काम करते है। मैंने भागलपुर से एक आदमी को बिहपुर इसलिए भेजा कि वह जाकर जो खादी-सूत वगैरह पुलिस ने ले लिया था उसे वापस ले ले, क्योकि चरखा-सघ के विरुद्ध कोई हुक्म नहीं था। वह जाकर उनसे मिला। बातें करते-करते उसने यह जिक्र छेड दिया कि मैंने बातचीत में कहा था कि आपके ही नाम के एक आदमी स्कूल में मेरे साथी थे जो पुलिस में है; पर आपको वह कल सध्या समय वहाँ पहचान न सके। यह सुनते ही पुलिस-इन्स्पेक्टर घबरा गया। उसकी आँखो में आँसू आ गये। उसने बात बदलना चाहा, कहा कि आप यह सब बात मत कहिए, खादी की बात कीजिए। पर चरखा-सघ का वह आदमी बहुत ही होशियार बोलने वाला था। उसने फिर खादी की बात करके मेरा नाम कह दिया। तब देखा कि इन्स्पेक्टर फिर विह्वल हो गया।

यह सब बातें उसने आकर मुझसे कही। मैंने समझ लिया कि नौकरी के कारण बहुतेरे लोग देखने में हमारे विरोधी मालूम पड़ते है, पर उनमें से बहुतेरो के हृदय में सत्याग्रहियो के प्रति श्रद्धा और प्रेम है। हमने देखा कि महात्माजी की अहिंसा किस तरह प्रतिपक्षियो के हृदय में भी असर डालती है।

वहाँ के जिला-मजिस्ट्रेट एक हिन्दुस्तानी सज्जन थे। उनके बडे भाई असहयोग में पहले हम लोगो के साथ बहुत काम कर चुके थे। वह जेल भी

गये थे। वहाँ वह सख्त बीमार पड़े। जब हालत बहुत खराब हुई तो गवर्नमेंट ने उनको छोड़ दिया। पर जेल से निकलते ही उनका स्वर्गवास हो गया। इस कारण उनके सारे परिवार के साथ मेरा खूब घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। पर डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट तो नौकरी में थे। उनसे कोई सम्पर्क नही होता था। जब मै बिहपुर से भागलपुर लौटा तो उन्होने एक मित्र द्वारा मेरे पास सन्देश भेजा कि मुझसे मिलने के लिए वह बहुत उत्सुक है, पर नौकरी के कारण उनकी जो अवस्था है उसमें सीधे मिलना सम्भव नहीं है, यदि उस मित्र के साथ मै उनके घर आ आऊँ तो वह बहुत अनुगृहीत होगे। मै सुन चुका था कि वह यद्यपि जिला-मजिस्ट्रेट थे तथापि उनका कुछ चलता नही था। भागलपुर-डिवीजन का कमिश्नर भागलपुर में ही रहा करता था। वह और पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट मिलकर जिले में सत्याग्रह की लहर को रोक रहे थे।

मै उस मित्र के साथ रात को मजिस्ट्रेट के घर गया। ज्योही मै वहाँ पहुँचा, वह मेरा पैर पकड़ फूट-फूटकर रोने लगे। कहने लगे "आप मेरे बड़े भाई के समान है; क्योकि आप मेरे बड़े भाई के साथी है, आप दोनो का घनिष्ठ सम्बन्ध था, यह मै जानता हूँ। मै यहाँ जिला-मजिस्ट्रेट हूँ। और समझा जाता है कि यहाँ जो कुछ हुआ है वह मेरे ही हुक्म से हुआ है। यहाँ मेरे मजिस्ट्रेट रहते हुए आप और दूसरे नेता इस तरह लाठियों से पीटे गये, पर यह सब मेरे हुक्म के खिलाफ हुआ है। मेरा इसमें कोई हाथ नही है।"

मै उनको कुछ सान्त्वना देकर वापस चला आया।

भागलपुर कपड़े के व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र है। उन दिनों बिहार-भर में विदेशी कपड़े की सबसे बड़ी मडी वहीं थी। बिहपुर की उपरोक्त घटना का एक नतीजा यह हुआ कि सारे शहर और व्यापारियो में बहुत जोश फैला। एक-दो दिन के अन्दर ही सबने विदेशी कपड़े की बिक्री बन्द कर देने का वादा किया। जो कपड़ा उनके पास था, सबको बन्द कर काग्रेस की मुहर लगवा दी। कहा भी कि जबतक काग्रेस का फिर हुक्म न होगा, हम ये कपड़े नही बेचेंगे। वहाँ भी कुछ स्त्रियाँ तैयार हुई थी कि विदेशी कपड़े की दूकानो पर हम पहरा देंगी, पर इसकी ज्यादा जरूरत नही पड़ी। सब गाँठें उक्त घटना के कारण ही अनायास बँध गई। उनपर मुहरें भी लग गई।

बिहपुर के लोगो का उत्साह क्षणिक नही था। जबतक सत्याग्रह जारी रहा और गाधी-इरविन-समझौता के मुताबिक सत्याग्रह बन्द नही हुआ तब

तक सत्याग्रहियों का जत्था प्रतिदिन जाता ही रहा। कुछ दिनों के बाद पुलिस ने भीड़ पर लाठी चलाना बन्द कर दिया। इसलिए भीड़ जुटना भी कम हो गया। पर जो सत्याग्रही जाते उनके साथ बहुत सख्ती होती। मार-पीट के अलावा तरह-तरह की यातनाएँ उनको दी जाती। एक लड़के के कान में साइकिल का पम्प लगाकर इतने जोर से हवा की गई कि उसके कान का परदा फट गया। वह आज तक इसका फल भोग रहा है। पर लोग और सत्याग्रही बराबर निडर रहकर अपना काम करते ही रहे।

इक्कीसवाँ अध्याय

सत्याग्रह आरम्भ हुए दो महीने से अधिक बीत चुके थे। पर अभी तक न तो मै और न पडित मोतीलालजी नेहरू गिरफ्तार हुए थे—यद्यपि हम दोनों ही सत्याग्रह का सब काम जोरों से चला रहे थे। पडितजी प्रयाग में बैठकर सारे देश का सचालन कर रहे थे। वर्किङ्ग-कमिटी की बैठक भी जब-तब हुआ करती थी। मै वहाँ जाया करता था। पर अधिक समय अपने सूबे के जिलो में दौरा करने में ही लगाता था। आश्चर्य होता था कि मै क्यो नहीं गिरफ्तार किया जाता। कुछ दिनो तक तो प्रान्तीय सरकार का हुक्म था कि मै गिरफ्तार न किया जाऊँ, इसलिए जिले के अधिकारी मुझे गिरफ्तार नही करते थे। मै अकेला चक्कर लगाया करता था। कुछ दिनो के बाद मुझे खबर मिली कि जो रोक मेरी गिरफ्तारी के बारे में लगाई गई थी वह उठा ली गई; अगर कोई जिला-मजिस्ट्रेट मुनासिब या जरूरी समझे तो मुझे गिरफ्तार कर सकता है। सरकारी हुक्मो की खबर मुझे पुलिस के अफसर ही दे दिया करते थे। जिसने रोक उठा देने की खबर दी उसने यह भी कहा कि मै अकेला सफर न करूँ, एक आदमी साथ में जरूर रक्खूँ, ताकि गिरफ्तार हो जाने पर वह खबर सबको दे सके। मै लापरवाही से अपना काम करता ही गया। उसके बाद खबर मिली कि प्रान्तीय सरकार का हुक्म जिला-मजिस्ट्रेटो तक पहुँच गया कि मै गिरफ्तार कर लिया जाऊँ। यह खबर तो मिली, पर मै कई जिलो में घूम आया, कही गिरफ्तार नही किया गया। मैने इसका यह कारण सुना कि जिले के अधिकारी समझते थे, मेरी गिरफ्तारी से बहुत हल्ला मचेगा। यह बला कोई जिला-मजिस्ट्रेट अपने सिर लेना नही चाहता था। ऐसा कहने का पूरा मौका भी उनको मिल जाता था, क्योकि मै इतनी तेजी से एक जिले से दूसरे जिले में निकल जाता कि वह सोचते-विचारते ही रहते, मै दूसरे जिले में चला जाता।

अन्त में, मैं अपने जन्म-स्थान के जिले (सारन) में पहुँचा। वहाँ सख्त हुक्म गया, मुझे जरूर पकड़ लिया जाय; क्योंकि मैं उसी जिले का रहनेवाला हूँ, इसलिए यह उसी जिले के मजिस्ट्रेट की खास जिम्मेदारी है। वहाँ की पुलिस तो इस ताक में रही, पर दो दिनों तक मुझे पकड़ न सकी। मैं कुछ लुक-छिपकर नहीं जाता था, न कहीं अपने को बचाने का प्रयत्न करता था। पर मेरा कोई कार्यक्रम निश्चित नहीं होता था, न यही घोषित किया जाता था कि मैं कहाँ जाऊँगा। दो दिन के सफर के बाद मुझे छपरा में रात को ठहरना था। वहाँ मेरे भाई साहब के साथ घर के सब लोग रहते थे। रात को प्रायः दस-ग्यारह बजे तक पुलिसवाले इन्तजार करते रहे। पर जब मैं नहीं पहुँचा तो उन लोगों ने समझा कि मैं कहीं दूसरी जगह चला गया। इसका पता लगाने वे दूसरी-दूसरी जगह चले गये। कई गाँवों में घूमते-घूमते मुझे देर हो गई थी। इस वजह से मैं ग्यारह बजे के बाद रात को पहुँचा था। दूसरे दिन जिधर मुझे जाना था उधर ही पुलिसवाले जाकर इन्तजार करने लगे। मैं रात-भर छपरा में रहकर सवेरे जहाँ जाना था वहाँ के लिए रवाना हो गया। अभी शहर के भीतर ही था कि रास्ते में पुलिसवाले मिल गये। मैं गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने इतनी भद्रता दिखलाई कि मुझे मेरे घर पर ले गये। वहाँ सबसे मिला-जुलाकर छपरा-जेल में पहुँचा दिया।

यह मेरा जेलखाने का पहला ही अनुभव था। जब मेरी गिरफ्तारी की खबर शहर में फैली, लोगों ने एक जुलूस निकाल कर सारे शहर में प्रदर्शन किया। जेल में उस समय तीन-चार सौ सत्याग्रही थे। जैसे ही मैं जेल के अन्दर पहुँचाया गया, सत्याग्रहियों को इसका पता लग गया। वे वहाँ शोर-गुल मचाने लगे। नारा लगाते हुए जेल के फाटक के नजदीक आ गये। मैं वहीं जेलर के कमरे में बैठा था कि इधर शहर का जुलूस भी जेल के नजदीक चला आया। जेल के अन्दर से लोग नारा लगाते थे और चाहते थे कि जेलर जल्द उन्हें मौका दे कि वे मेरा स्वागत करें। पर इधर बाहर की भीड़ और अन्दर की धूम से घबरा कर जेलर ने अपने सिपाहियों को हुक्म दे दिया कि बन्दूकों से झूठा फायर करो। बाहर का जुलूस जेल के अहाते के बाहर-ही-बाहर सड़क होकर जा रहा था। जेलर ने अपनी घबराहट में वह हुक्म दे दिया था। जब अन्दर के लोगों ने बन्दूक की आवाज सुनी तो उन्होंने समझ लिया कि बाहर के लोगों पर गोली चल गई। वे अब तो इनपर और भी आवेश में आ गये। मैंने जेलर से कहा कि मुझे एक बार अन्दर जाने दो तो सब शान्त हो जायेंगे। पर जब तक बाहर हल्ला था, वह फाटक खोलने से डरता था। जब अन्त में उसने देखा कि बगैर इसके काम नहीं चलता है

बाईसवाँ अध्याय

मुझे अफसोस है कि आहिस्ता-आहिस्ता जेल के बहुतेरे अधिकारियो का रुख बदल गया। कुछ तो आरम्भ से ही दूसरे विचार के थे। पर कुछ ऐसे भी थे जो सत्याग्रहियो को पहले बडी श्रद्धा की निगाह से देखते थे, वे भी एक प्रकार से तटस्थ हो गये। इसका कारण कुछ सत्याग्रहियो की गलतियाँ थी। महात्माजी ने बार-बार चिताया था कि वही कानून तोडने का सच्चा अधिकारी हो सकता है जो कानून की पाबन्दी अच्छी तरह कर सकता है। इसका अर्थ यह था कि जो यो ही कानून तोडा करता है वह सत्याग्रह की भावनाओ से कानून नही तोड सकता, क्योकि वह तो यो ही मामूली तौर से भी तोडा करता है—सत्याग्रह की भावना न उसके हृदय में उठेगी और न दूसरों पर ही वैसा असर होगा। इसलिए उन्होने बताया था कि जेल के अन्दर सभी कायदो को मानना चाहिए—सिवा ऐसे कायदो के जिनसे स्वाभिमान पर ठेस लगती हो। इस तरह का एक नियम था जिसके सम्बन्ध में १९२१ से ही काग्रेसी लोग लडते आये थे। १९३० में भी वह जेल की किताबो में भले ही हो, पर सत्याग्रहियो के साथ वह व्यवहार में नही लाया जाता था। वह नियम यह था कि जब कोई बडा अधिकारी आता था तब सब कैदियो को कतार में खडा होना पडता था। फिर एक सिपाही के 'सरकार सलाम' कहने पर सबको अपना एक हाथ पजा खोलकर दिखाना पडता था और दूसरे हाथ से ओठ बिदोरकर दाँत दिखलाना पडता था। इसमें एक तो ब्रिटिश गवर्नमेंट की सत्ता को सलामी देनी पडती थी और दूसरे एक हीन-दीन व्यक्ति की तरह दाँत बिदोरना पडता था। इस तरह के नियम बनाने का कारण चाहे जो हो, यह बहुत बुरा अपमान-जनक मालूम होता था। इसलिए इसका क्रियात्मक रूप से विरोध १९२१ से ही आरम्भ हो गया था। इसको न मानने के कारण सत्याग्रहियो को बहुत प्रकार के कष्ट

उठाने पडे थे। अन्त में ऐसा हो गया था कि जबतक जेल के अधिकारी, कैदी सत्याग्रहियों के साथ झगडा त्रिसाहने की ठान नहीं लेते 'सरकार सलाम' नही कहते, क्योंकि ऐसा कहने से ही सघर्ष पैदा हो जाता। दूसरे नियम भी, जो कुछ अपमानजनक मालूम होते, कुछ ऐसे ढीले हो गये थे कि सत्याग्रहियों को उनसे बहुत जेलो में छुटकारा मिल गया था, जहाँ नहीं मिला था वहाँ कुछ सघर्ष होता ही था। पर सत्याग्रही केवल ऐसे ही नियम का उल्लघन नही करते थे जिनका उल्लघन करना महात्माजी ने जायज बताया था; बल्कि वे दूसरे नियमों की भी अवहेलना कर देते थे जिनसे हमारा अपना चरित्र गिरता और कमजोर होता।

एक मामूली नियम था चिट्ठियों के सम्बन्ध में अथवा अखबार या पुस्तकें मँगाने के सम्बन्ध में। नियम के विरुद्ध भी हममें से अक्सर लोग ये सब चीजें किसी-न-किसी तरह से मँगाते थे। वे लोग अपनी ओर से भी खबर और चिट्ठियाँ भेज देते। इसके लिए बहुत ऐसे काम करने पडते जो अनुचित थे। जेल के सिपाही और दूसरे अधिकारी भी सत्याग्रहियों को इसमें सहायता या प्रोत्साहन देते, क्योंकि उनमें जो अच्छे थे वे तो यह मानते थे कि ऐसा करके हम एक प्रकार की सेवा ही कर रहे हैं और जो बुरे थे वे शायद इन कमजोरियो की खबर दूसरे अधिकारियो तक पहुँचा देते थे। इसका एक फल यह देखने में आया कि कुछ लोग इस तरह की छोटी-मोटी मेहरबानियो के लिए अधिकारियों की खुशामद भी करते। अगर किसी सत्याग्रही के साथ अधिकारियों का अधिक सम्पर्क हो गया तो इस कारण से सत्याग्रहियो में भी आपस का मनमुटाव हो जाता। जो होशियार अधिकारी थे वे चाहे इस तरह की जितनी भी सेवा क्यों न कर दें, ऐसी सेवा चाहनेवाले सत्याग्रहियो के प्रति उनके दिल में उतनी इज्जत नहीं रह जाती। इस तरह, बहुतेरो के प्रति उनकी श्रद्धा, जो शुरू में होती थी, कम हो जाती।

हमारी कमजोरी दूसरे प्रकार से भी जाहिर होती। जेल के अधिकारियो के साथ खान-पान की चीजो के लिए भी कभी-कभी सघर्ष होता। मगर इससे भी खराब तो यह था कि आपस में भी इस तुच्छ बात के लिए कभी-कभी झगडे हो जाते। उसी साल जेलो में एक नया नियम लागू हुआ, जिसके अनुसार तीन विभागो में कैदी बाँट दिये गये। जो सबसे ऊँचे दर्जे के—'ए'-वर्ग के—थे उनके लिये खान-पान, मुलाकात और चिट्ठियो की अधिक सुविधा थी। उनको अपने कपडे पहनने का हक था। वे काम करने से बरी थे। जो दूसरे अर्थात् 'बी'-वर्ग के थे उनको खान-पान की तो वही सुविधा थी जो 'ए'-वर्ग वालो को, पर चिट्ठियो तथा मुलाकातों की सुविधा 'ए'-वर्ग के मुका-

वले कम थी—जेल के कपडे उन्हें पहनने पडते और जिनको सख्त सजा मिली होती, ये काम करने को बाध्य थे। तीसरे दर्जे अर्थात् 'सी'-वर्ग के लिए, पहले के दो वर्गों के मुकाबले खानपान की और दूसरी सब सुविधाएं बहुत ही कम थीं। यह वर्गीकरण कसूर के आधार पर नही किया गया था, बल्कि कैदी की, जेल जाने के पहले की, रहन-सहन और मान-प्रतिष्ठा तथा हैसियत के आधार पर किया गया था। इसमें राजनीतिक कैदी और दूसरे कैदियो के बीच कोई भेद नही था। ऐसे कैदी भी, जो फरेब-जालसाजी और खून तक के लिए सजा पाये हुए थे, पर जिनको 'बी'-वर्ग मिल गया था, उन सभी सुविधाओ को पाये हुए थे जो 'बी'-वर्ग के राजनीतिक कैदियो को मिली हुई थी।

महात्माजी ने कहा था कि राजनीतिक कैदियो का अलग वर्गीकरण होना मुनासिब नही है, क्योकि हम जब जेलखाने जाते है तब हमको और कैदियो की तरह ही अपने को समझना चाहिए और जो सुख-दुख दूसरे भोगते है वही हमको भी भोगना चाहिए, इससे जो दूसरे कैदी होगे उनके साथ हमारी सहानुभूति होगी और उनकी सहानुभूति हमारे साथ, हो सकता है कि जेल के अधिकारियो का जो बर्ताव मामूली कैदियों के साथ बहुत कडा हुआ करता है वह हम लोगो के कारण कुछ बदल जाय और जो सुविधाएं हम लोगो को मिलें वे ही मामूली कैदियो को भी मिलने लग जायें, यदि हमारा चरित्र ठीक रहा तो कुछ अच्छा असर मामूली कैदियो पर भी पड सकता है। महात्माजी को आशा थी कि इस प्रकार जेल के अन्दर भी हम अपनी सुनीति और शुद्ध आचरण से मामूली कैदियो की कुछ सेवा कर सकेंगे, मुमकिन है कि जेल में हमारी वजह से बहुत सुधार हो जाय, इस प्रकार से हमलोगो पर भी अच्छा ही असर पडेगा, क्योकि हम अपने को जन-साधारण में ही समझते रहेगे, देशसेवा का गर्व हमको कलुषित नहीं करेगा, जेल के अधिकारियो पर भी इसका अच्छा असर पडेगा।

पर ये बातें हमारे लोगो को नही जँची। उनमें तो हमेशा इस बात की चर्चा होती रही कि राजनीतिक कैदी दूसरे मामूली कैदियों से अलग समझे जायें, उनका वर्गीकरण अलग किया जाय। उस वक्त ब्रिटिश गवर्नमेंट ने इसको सिद्धात-रूप से नही माना, पर व्यवहार में राजनीतिक कैदी अलग ही समझे जाने लगे। इसका एक कारण यह भी था कि जेल के अधिकारी डरते थे कि सत्याग्रही मामूली कैदियो को भी बिगाड देंगे, जेलो में उनसे भी विद्रोह करा देंगे, तब उनके लिये मामूली कैदियो को अनुशासन में रखना कठिन हो जायगा। इसी विचार से सत्याग्रहियो के साथ मामूली कैदियो का, जहाँ तक हो सकता, कम सम्पर्क होने दिया जाता। जब राजनीतिक कैदियो की

सख्या बढ़ी तो उनके लिए अलग जेलखाने ही कायम हो गये—कुछ नए और कुछ पुराने, जिनमें केवल राजनीतिक कैदी ही रखे जाते। यदि किसी जेल में दोनो प्रकार के कैदी होते, तो वे अलग-अलग आँगनो में रखे जाते जिसमें उनके एक दूसरे से मिलने-जुलने का कम-से-कम मौका आवे। इस तरह, दूसरे कैदियो से सत्याग्रही अक्सर अलग ही रखे जाते रहे। कही-कही तो सत्याग्रहियो में और दूसरे कैदियो में सघर्ष भी हुआ, पर बहुत कम। इतना जरूर हुआ कि जितना असर हम अपने सम्पर्क और सदाचरण से मामूली कैदियो पर डाल सकते थे उतना नही डाल सके। इसमें हमारी अपनी कमजोरियां तो थी ही, कुछ जेल की ऐसी नीति भी थी।

वर्गीकरण का एक दूसरा असर सत्याग्रहियो पर पडा जो बहुत बुरा था, क्योकि इससे आपस में वैमनस्य भी पैदा हो जाता था। कुछ सत्याग्रहियो की इच्छा थी कि वे 'ए' या 'बी' वर्ग में रखे जायँ। इसके लिए वे स्वय, या उनकी तरफ से दूसरे लोग, जेल के अन्दर या बाहर, अधिकारियो के पास पहुँच कर कोशिश करते। यदि किसी को 'ए' वर्ग मिल जाता तो कुछ लोग ऐसे भी होते जो उसे बुरा मानते और डाह करते! और जिनको ऊपर का वर्ग मिल जाता उनमें से कुछ ऐसे भी होते जो अपने को 'सी'-वर्ग वालो के मुकाबले बडा मानकर कुछ घमड करते। यह आपस का वैमनस्य कुछ अधिक बढ जाता अगर 'सी'-वर्ग के साथ ही 'ए'-वर्ग और 'बी'-वर्ग के राजनीतिक साथी रखे जाते। पर अधिकारियो ने दोनो को, अपनी सुविधा के खयाल से, अलग-अलग रखा। अत· झगडा उस हद तक नही बढा जहाँ तक बढ़ सकता था। तो भी इन सब कारणो का यह फल तो अवश्य हुआ कि हम जितना नैतिक प्रभाव जेल के अधिकारियो पर डाल सकते थे, नही डाल सके।

सत्याग्रहियों को जेल का अनुभव काफी मिला है। जब हमारे हाथो में अधिकार आया तो हमको जेलो में सुधार करने का मौका है और हम अपने अनुभवो से लाभ उठा सकते हैं। मैंने देखा कि जेल के जितने नियम बने है, सब अनुभव से बने है। छोटी-छोटी बातें भी, जिनका अर्थ पहले समझ में नही आता था, कुछ अर्थ रखती है, जो अनुभव पर ही अवलम्बित है। मैंने देखा कि जेल का एक सिपाही प्रतिदिन, तीन-चार बजे के करीब सेपहर को, लोहे की एक छोटी-सी छड लेकर, दरवाजो और जँगलों में लगी हुई छडो पर हल्की चोट देते हुए, एक तरह से जलतरग-सा बजाता हुआ, चला जाता था। मैंने कई दिनो तक इस तरह देखा। पहले तो यह समझ में नही आया कि ऐसा क्यो करता है; पर पीछे मालूम हुआ कि वह प्रत्येक छड को जाच लेने का एक तरीका था, अगर कहीं कोई छड कटी या टूटी हो तो उसकी आवाज भिन्न प्रकार

ही होगी। कैदियो के पास कोई रस्सी या सूत का डोडा (पैसे रखने की लम्बी जालीदार थैली) तक और लम्बा कपडा भी रहने देने का कायदा नही है। पहनने के लिए तो जांघिया और आधी बांह का कुर्ता तथा ओढने के लिए कम्बल मामूली तरह से मिलते हैं। इनके आलावा एक-डेढ फुट लम्बा-चौडा रूमाल। लम्बा कपडा तथा रस्सी इसलिए नही दी जाती कि कैदी कही गलफांसी न डाल ले। डोडा भी इसलिए नही दिया जाता कि ऐसा देखा गया है कि डोंडे से घिस-घिसकर लोहे की छड काट कैदी भाग गये है। जेल के सारे अहाते के अन्दर कोई चीज भी, जो एक जगह से दूसरी जगह हटाई जा सके, रात को बाहर नही छोडी जाती, क्योंकि उसके सहारे दीवार पर चढकर कैदी भाग सकता है। इसलिए कोई रस्सी भी बाहर नही छोडते। कपडे सुखाने के लिए बहुत दिनो तक हमलोगो को भी रस्सी मिलने में दिक्कत रही। पीछे मिली भी तो सिपाही उसे सबेरे लाता और फिर शाम के पहले वापस ले जाता।

जेल के अहाते के अन्दर पपीता अथवा केला-जैसे हल्के लम्बे झाड भी रहने देने का हुक्म नही है, क्योंकि वे आसानी से तोडे या काटे जा सकते हैं, उनको दीवार से लगाकर कैदी निकल-भाग सकता है। ऊँची दीवार के नजदीक कोई दरख्त भीतर या बाहर नही रहने दिया जाता। जो दरख्त देखने में आते हैं वे इतनी दूरी पर रहते हैं कि उन तक कोई छलांग मारकर भी नही पहुँच सकता। रात में एक कैदी बारी-बारी से हर कमरे में जागता रहता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर सिपाही को बताता रहता है कि उस कमरे में जितने कैदी बन्द हुए थे सब गिनती के मुताबिक मौजूद हैं। हर बैरक में एक रोशनी जलती है। पर वह इतनी ऊँची रखी जाती है कि वहाँ तक कोई पहुँच नही सकता। जब रात को सिपाही बदलता है तो गिन लेता है कि जितने कैदी बन्द हुए थे वे सब मौजूद हैं या नही। दिन को भी कई बार कैदियो की गिनती की जाती है। शाम को जब सब बैरक बन्द हो जाते हैं तो गिनकर देख लिया जाता है कि जितने नये आये और छूटे उन सबका हिसाब मिलाकर जेलखाने के अन्दर जितने मौजूद होने चाहिए उतने हैं या नही। अगर कही हिसाब में गलती हो गयी है तो अधिकारियो को बहुत परेशानी होती है। जबतक हिसाब ठीक नही मिल जाता, वे दिन-भर का काम समाप्त नही समझते। उसी तरह, सवेरे भी, जबतक गिनती मिल नही जाती, परेशान रहते हैं, कैदियो को बैरक से बाहर निकलने नही देते। इतनी सावधानी के बावजूद भी कैदी भाग ही जाते हैं—कभी दीवार टप कर, कभी लोहे का सीखचा तोडकर, कभी और किसी प्रकार से। इसमें शक

नहीं कि सभी नियमो की अगर ठीक पावन्दी की जाय तो निकल भागना बहुत मुश्किल है ।

इन नियमो की उपयोगिता कैदियो को भागने से रोकने में है, पर कुछ नियम ऐसे भी है जो उनके दिल पर यह छाप डालते रहते है कि आखिर वे कैदी ही है, वहाँ कष्ट सहने के लिए ही वे भेजे गये है और दूसरे मनुष्यो से हीन-दीन तथा भिन्न है। अपमान तो उनको कदम-कदम पर सहना पडता है। शरीर की रक्षा के लिए प्रवन्ध अच्छा रहता है—अगर उन्हे खाने के लिए नियम के अनुसार जो कुछ मुकर्रर है वह ठीक तरह से दिया जाय, उसमें चोरी न हो, तो वह स्वास्थ्य के लिए काफी है। जेल के अन्दर वीमारियो के लिए भी इन्तजाम ठीक रहता है, पर कर्मचारी हमेशा अपना कर्तव्य पूरा नही करते, इसलिए खाना और दवा दोनो से वहुत कैदी वचित रह जाते है, जितना उनको मिलना चाहिए उतना नही मिलता। मुझे सव चीजो को देखकर ऐसा मालूम हुआ कि सारे प्रवन्ध की नीति यह है कि कैदी के दिल में डर पैदा किया जाय, उसकी आत्मा दवा दी जाय, हिम्मत तोड दी जाय, जिससे वह जब कभी वाहर निकले तो एक पस्त-हिम्मत और निराश तथा दुःखी आदमी होकर ही निकले। कैदियो मे कुछ काम भी लिया जाता है। पहले कुछ काम ऐसे भी होते थे जो उनके शरीर और मन दोनो को तोड डालते थे। जैसे, कोल्हू का काम, पर वह अव विहार में उठा दिया गया है। दूसरे जो काम है वे ऐसे है जिन्हे लोग वाहर भी किया करते है, उनके करने में कोई दिक्कत नही मालूम होती। कुछ ऐसे काम भी कराये जाते है जिनको अगर कैदी सीख ले और वाहर आकर करना चाहे, तो उनको एक रोजगार मिल जाय, वह अपने को आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र वना ले; पर मै नहीं जानता कि इससे कितने कैदी लाभ उठाते है। हाँ, मैंने एक ऐसे कैदी को देखा है जो कई वार जेल जाकर दरी-गलीचा वनाने के काम में इतना दक्ष हो गया कि वह अच्छी-से-अच्छी चीजें तैयार कर सकता है। अन्त में, छूटने पर जेल में ही दूसरे कैदियो को काम सिखाने के लिए वह नौकर रख लिया गया। वह कई वर्षों से यह काम कर रहा है। अव वह सुखी भलामानस वन गया है। इसी तरह, एक दूसरे कैदी को भी मैंने देखा। वह वडा नामी डकैत था। वहुत दिनो तक पुलिस उसे पकडने में असमर्थ रही। आजीवन जेल की सजा पाकर वह जेल गया। वह भी वहुत होशियार हो गया था। कपडा वुनने इत्यादि का काम खूव अच्छी तरह जान गया था। इसका जीवन भी सुधर गया। उसने मुझसे कहा था कि जेल से वाहर निकलने पर मै उसको खादी के काम में नौकर रखवा दूँ।

मैंने वादा भी किया था। किन्तु जेल से छूटकर वह फिर मेरे पास नही आया। एक कुष्ठ-आश्रम मे वह सेवाकार्य कर रहा है। जब मै इत्तिफाक से उस कुष्ठ-आश्रम में गया तो उससे मुलाकात हुई। मालूम हुआ कि वह वहाँ के काम से सन्तुष्ट है, आश्रम के लोग भी उससे बहुत सन्तुष्ट है। इस तरह सुधरे और सुलझे हुए कैदी बहुत कम ही निकलते है।

एक जो बचपन में गिरहकट बन गया, जितनी बार जेल गया, अधिक दक्ष गिरहकट बनता गया। मैंने देखा कि एक बार बैलगाडियो पर चावल जेल में लाया गया। वे गाडीवान बाहर के देहाती आदमी थे। वे विचारे सीधे सादे और नि शक थे। जेल के कैदियो ने चावल के बोरे उनकी गाडियो से उतारे। न मालूम कब और कैसे, बोरे के साथ ही, गाडीवान की जेब में जो पैसे थे वे भी निकाल लिये। इसका पता उस बिचारे को चलने के समय लगा। किसने निकाला, इसका पता तो जेल के अधिकारी भी न लगा सके। जब बहुतेरे चोर, गिरहकट, डकैत इकट्ठे होते है तो एक दूसरे से बातें करते रहते हैं, एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठाते रहते है, नित नये ढग भी सीखते रहते हैं। जेल के एक सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझसे कहा था कि जेल के अफसर भी ऐसे लोगो के साथ रहते-रहते कुछ वैसे ही हो जाते है। उनमें से थोडे ही ऐसे होते है जो अपने को इस असर से बचा सकते है। बात भी सही है। वे अगर अच्छे हो तो कैदियो को सुधार भी सकते है। पर जेल के सारे नियम ऐसे बने है कि उनमें सुधार की गुजाइश नही के बराबर है। उनमें हर तरह से डर पैदा करके दिल तोडने की कोशिश रहती है। इस-लिए, अगर कोई सुधर जाता है तो वह अपने पूर्वजन्म के भाग्य से ही, जेल के नियमो की वजह से नही।

जेल में अधिक ऐसे ही लोग जाते है जो हृष्ट-पुष्ट होते है, जो कैद होने के पहले काम करके कुछ पैदा करते रहते है। उनसे ठीक तरह से काम लिया जाय तो कोई कारण नही कि वे कम-से-कम इतना क्यो न कमा लें जो उनके खाने-पीने के लिए काफी हो। मामूली तौर से एक जवान आदमी जेल के बाहर इतना पैदा करता है कि वह अपने और अपनी स्त्री तथा बालबच्चो को खिला सकता है। वह आदमी जेल में जाकर गवर्नमेंट पर भार बन रहता है। केवल उसकी रक्षा के लिए ही खर्च नहीं करना पडता, बल्कि उसको जो खाना-कपडा दिया जाता है वह भी गवर्नमेंट को—अर्थात् समाज से 'कर' वसूल करके—देना पड़ता है। यह समाज के लिए तिगुना नुकसानदेह साबित होता है। एक तो उसने समाज के विरूद्ध कुछ काम किया जिसके लिए उसको सजा मिली, दूसरे वह जो कुछ पैदा कर सकता था और दूसरो को तथा अपने

को पाल सकता था वह बन्द हो गया, तीसरे उसके खाने-कपडे के लिए समाज को खर्च करना पडा। यदि जेल की नीति सुधर जाय तो यह सब नुकसान रुक सकता है—जेल के खर्च का बहुत बडा हिस्सा, कैदियो से उनके योग्य काम लेकर, निकाला जा सकता है। इसके लिए जेल के ध्येय को बदलना आवश्यक है। जेल अगर डराने और सजा देने की जगह न रहकर सुधार की जगह बन जाय, जहाँ बिगडे हुए लोग जाकर अच्छे हो जायँ, तो इससे बढकर समाज की दूसरी सेवा नही हो सकती। तब अगर कोई आदमी इत्तिफाक से जेल चला भी जाय तो वह बेहतर होकर वहाँ से निकले और बाहर भी समाज का बेहतर आदमी होकर रहे—वह जेल के अन्दर भी काम करके इतना पैदा कर ले कि जेल का महकमा खर्च का महकमा न रहकर आमदनी का महकमा बन जाय। इसके लिए उस प्रकार के अधिकारी होने चाहिए, जो उस नीति को खूब समझे, जो कैदियो के साथ केवल कडाई का ही नहीं—सहानुभूति का भी बर्ताव करे, उनको सिर्फ डरावे ही नही बल्कि उनकी आत्मा को भी जाग्रत करे, उनकी रहन-सहन को भी सुधारे।

यह एक ऐसा विषय है जिसपर बहुत-कुछ कहा जा सकता है। इसके सम्बन्ध में बहुत साहित्य भी बन गया है। कई देशो में सुधार की नीति से काम भी लिया जा रहा है। हमलोग अपने अनुभव से काम लें और जेल का सुधार करना चाहे, तो बहुत-कुछ कर सकते है। पर जहाँ तक मुझे मालूम है, जो कुछ थोडा-बहुत सुधार का प्रयत्न किया गया है वह अधिकतर राजनीतिक कैदियो को ज्यादा सुविधा देने के लिए ही किया गया है। पर सच पूछा जाय तो अधिक ध्यान देने योग्य मामूली कैदी ही है, क्योकि राजनीतिक कैदी तो कुछ दबग और होशियार होते है, अपना काम कई तरह से—कुछ दबाकर, कुछ तिकडमबाजी से, कुछ अपने अच्छे प्रभाव से—निकाल लेते है। पर गरीब मामूली कैदी, जो बहुत अनुभवी और बदमाश कैदी नही हो जाते, बिचारे ज्यों-के-त्यो रह जाते है।

मेरा विचार है कि जेल के सुधार में तीन-चार बातो पर ध्यान देना जरूरी है। उसके नियम, जहांतक हो सके, इस दृष्टि से बदले जायँ कि कैदियो के कितने ऐसे विभाग हो सकते है जिनके कारण, अकस्मात् किसी गलती से जेल गये हुए आदमी का ऐसे कैदियो से सम्पर्क न हो जो सचमुच छँटे बदमाश है। अक्सर गाँव के लोग आपस में लडझगड जाते है। उनको जेल की सजा हो जाती है। पर वे दिल के बुरे नही होते, सिर्फ गुस्से में आकर या और किसी आगन्तुक कारण से कोई गलती कर देते है। ऐसों को बदमाश

कैदियो की सगति से अलग रखना चाहिए। जो कैदी कम उम्र के होते है वे आज भी अलग रखे जाते है, पर उनके सुधारने का कोई समुचित प्रबन्ध नही होता है—वह होना चाहिए। उनमें भी यह देखना चाहिए कि कौन बार-बार जेल आया-गया है और कौन अकस्मात् किसी गलती के कारण आया है। इन दोनो प्रकार के युवको को भी अलग-अलग रखना चाहिए। यह नियम आज भी है, पर इसका ठीक व्यवहार नही होता। ऐसे युवको को पुराने बदमाश कैदियो के साथ कभी न रहने देना चाहिए। मैंनें देखा है कि जेल के अन्दर ये सुधरने के बदले और भी अधिक चोरी-गिरहकटी आदि दुर्गुणो में निष्णात बन जाते है, क्योकि जो बडे और पुराने होते हैं वे छोटो और नयो में अपने दुर्गुणो को अधिक दे देते है। शिक्षा, अच्छे लोगो की सगति, मन को काम में बहलाये रखना, किसी प्रकार का प्रलोभन न मिलना—सुधार के ये ही उपाय है। मनोविज्ञान जाननेवाले यह बता सकते है कि किन किन तरीको से वे युवक सुधारे जा सकते है। अभी जो प्रयत्न है वह नही के बराबर है। बडो में भी कसूर के खयाल से कई विभाग किये जा सकते है। पर यह सब तभी चल सकता है जब जेल के अधिकारी स्वय इस नीति को समझ लें, वे भी इस सम्बन्ध का कुछ ज्ञान प्राप्त कर लें।

फौज के अफसरो और सिपाहियो को बहुत दिनो तक विशेष शिक्षा दी जाती है। पुलिस के अफसरो और सिपाहियो की शिक्षा का भी प्रबन्ध है। जो मुन्सिफ और मजिस्ट्रेट होते है वे भी स्कूल-कालेज में शिक्षा पाये होते है तो भी कुछ दिनो के लिए उनको विशेष शिक्षा अपने खास कानूनी काम के लिए लेनी पडती है। पर, जहाँतक मै जानता हूँ, जेल के अधिकारियो के लिए किसी विशेष प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं है। वे नियुक्ति के बाद ही किसी जेल में रख दिये जाते है। जो काम वहाँ होता रहता है उसीको देखकर जो कुछ सीख सकते है, सीखते है—अर्थात् पुरानी रीति को ही सीखते और काम में लाते है। इसका एक प्रमाण यह है कि जो जेल के सबसे बडे अफसर होते है वे या तो फौज या पुलिस से या डाक्टरो में से या किसी दूसरे विभाग से ले लिये जाते है। उनको जेल-सम्बन्धी कोई विशेष ज्ञान नही होता, पर शासन का काम ठीक जानते है। जेलर वगैरह तो नीचे से तरक्की पाते-पाते ही नियुक्त होते है। इस तरह, यह सारा महकमा ऐसे लोगो के हाथो में है जो मनोविज्ञान का कोई ज्ञान नही रखते—आज ससार के देशो में जेल-सम्बन्धी जो सुधार हो रहे है उनसे भी परिचय नही रखते और जिनके सामने सुधार का कोई आदर्श भी नही होता। वे जानते है केवल एक

धाग—किस तरह कैदी से जेल के नियम मनवाये जायँ और किसी तरह कोई कैदी निकल-भागने न पावे ! कैदी के सुधारने का तो कोई सवाल ही उनके सामने नहीं होता। जो नियम कैदियों के खानपान के लिए बनाये गये हैं वे ऐसे हैं कि मेरे एक मित्र कहा करते थे कि कैदी को इतना खाना मिल जाता है कि वह न मरे न मुटाये, और जेल के अधिकारियों का तो यही प्रयत्न रहता है कि जेल से जो निकले वह भयभीत होकर निकले, सुधर कर नहीं ! पर इसका नतीजा अक्सर यही होता है कि जो भला आदमी इत्तिफाक से जेल चला गया है, जिसको अधिक भयभीत करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि वह फिर कोई कसूर नहीं करनेवाला है, वह तो भयभीत होकर निकलता है; पर जो छँटा बदमाश रहता है वह तो बाहर केवल मन-बहलाव के लिए जाता है, वह जेल के अन्दर जो कुछ सीखता है उसको बाहर जाने पर भी उपयोग में लाकर फिर जेल जाता ही रहता है, क्योंकि उसको जेल में कोई विशेष तकलीफ नहीं होती।

जेल में कैदियों से उत्पादन के लिए काम कराना चाहिए, न कि सजा देने के लिए। यदि इस दृष्टि से काम लिया जाय, उनके लिए काम में रस पैदा कराया जाय, केवल सजा के भय से ही काम न कराया जाय, तो उनकी आदत बदल सकती है और जेल की आमदनी भी बहुत बढ़ाई जा सकती है। यही एक तरीका है जिससे जेलखाने स्वावलंबी बनाये जा सकते हैं। और कोई कारण नहीं कि सारा विभाग स्वावलंबी न हो जाय। इसके अलावा, कुछ धार्मिक और नैतिक शिक्षा का भी ठीक प्रबन्ध होना चाहिए। आजकल भी, नाम के लिए, कुछ प्रबंध है। वह सचमुच नाम-मात्र के लिए ही है।। उसका नतीजा कुछ भी नहीं होता। जेल से छूटने के बाद बहुतेरे नौसिख चोर इत्यादि इस तरह पुलिस के चक्कर में पड़ जाते हैं कि उनको खामखाह चोरी करनी पड़ती है। पुलिस कभी-कभी उनको इतनी तकलीफ पहुँचाती है कि वे फिर जेल में जाना ही ज्यादा सुखकर मानते हैं। अतएव, जेल से निकले हुए लोगों की देखभाल के लिए भी कोई प्रबंध होना चाहिए। पुलिस के द्वारा जो प्रबंध होता है वह तो जेल के जीवन को ही बाहर भी कुछ ढीला करके कायम रखने के लिए होता है। कैदी को कभी स्वतन्त्र होकर निर्भीक भाव से सुधरा हुआ जीवन बिताने का मौका ही नहीं मिलता। इसलिए यह काम पुलिस के द्वारा नहीं हो सकता। इसके लिए गैरसरकारी संस्था होनी चाहिए, जो छूटे हुए कैदियों की इस तरह सहायता करे कि वे मामूली सामाजिक जीवन में घुलमिल जायँ। जब जेल के भीतर सुधार हो और बाहर भी उनके लिए अनुकूल वातावरण मिल जाय, तब वह

वह कैदी न रहकर समाज का अनुभवी और चुस्त अग बन सकता है। इसी उद्देश्य से यदि सजा दी जाय तो, जिसको सजा मिले वह भी सुखी हो और समाज भी। समाज का इतना कर्तव्य है, क्योकि कोई भी आदमी बिना कारण बुरा नही बन जाता—समाज के सगठन में कुछ ऐसा दोष होता है जिससे बुरी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है अथवा बुरे काम करने की आवश्यकता महसूस होती है।

तेईसवाँ अध्याय

ब्रिटिश गवर्नमेंट की दोधारी नीति काम कर रही थी। एक ओर सत्याग्रह दवाने का प्रयत्न किया जा रहा था, दूसरी ओर गोलमेज कांफरेंस का आयोजन करके यह दिखलाया जा रहा था कि वह भारतवर्ष को राजनीतिक अधिकार देने की तैयारियाँ कर रही है। जिस समय हमलोग जेल में थे उसी समय एक प्रयत्न हुआ कि कांग्रेस के लोग भी इस कांफ्रेंस मे शरीक हो। इस वातचीत का आरम्भ एक अंग्रेजी पत्रकार के द्वारा, जिसका नाम था स्लोकोम्ब, प० मोतीलाल जी के साथ हुआ। प० मोतीलाल जी, प० जवाहरलाल आदि—महात्मा गाधी के साथ सलाह-मशविरा करने के लिए—नैनी-जेल (प्रयाग) से यरवदा (पूना) जेल में ले जाये गये। जबतक यह वात चलती रही, सभी जेलो में जहाँ-जहाँ सत्याग्रही थे, तरह-तरह की वाते होती रही। कुछ लोग तो इस वातचीत को वडी आशा से देख रहे थे, क्योंकि वे समझते थे कि इसके द्वारा कोई समझौता हो जायगा, जेलखाने का धधा वन्द हो जायगा। दूसरे लोग समझते थे कि अभी तक हम लोगो का त्याग इतना नहीं हुआ है कि उसका असर ब्रिटिश गवर्नमेंट पर ऐसा पडा हो कि वह हमें सचमुच स्वराज देने के लिए तैयार हो गई हो। कुछ लोग ऐसी वात को दूसरे प्रकार से सोचा करते थे कि हमने अभीतक इतना कुछ नही किया है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट हमसे दब जाय और मजबूर होकर हमारी वात मान ले। वाहर के जो लोग इसमें दिलचस्पी ले रहे थे, जिनमें सर तेजवहादुर सप्रू तथा डा० जयकर मुख्य थे, दिल से चाहते थे, कि कोई समझौता होकर झगडा खतम हो जाय। पर वातचीत का नतीजा कुछ नही निकला। गवर्नमेंट चाहती थी कि कांग्रेस के लोग कान्फ्रेंस में शरीक हो; क्योंकि वह जानती थी कि कांग्रेस के साथ यदि कुछ तय नही हुआ तो गोल-मेज कान्फ्रेंस विना वर की वरात होकर रह जायगी। पर वह कांग्रेस की

माँग पूरी करने के लिए तैयार नही थी। उसको तो यह भी दिखलाना था कि काग्रेस को छोडकर भी वह अपना काम चला लेगी, जैसा उसने १९२१ में किया था।

गोलमेज-कान्फरेंस हुई। उसमें काग्रेस को छोडकर और-और लोग शरीक हुए। उसमें देशी रजवाडे भी शरीक थे। उस कान्फरेंस का एक अच्छा फल यह हुआ कि राजा लोगो ने भी अपनी ओर से कह दिया कि सारे भारतवर्ष का यदि एक सघ बने तो वे भी उसमें शरीक हो जायँगे। इससे आजतक जो भारत दो भागो में विभक्त था—अर्थात् ब्रिटिश सरकार के अधीन और रजवाडोवाला हिस्सा—उसके एक हो जाने का रास्ता खुल गया। पर शायद ब्रिटिश गवर्नमेंट ने यह समझ लिया था कि ब्रिटिश भारत को वह बहुत दिनो तक अधिकारो से वचित नही रख सकेगी, पर रजवाडों को साथ मिलाकर—जहाँ प्रजातन्त्र का अभीतक कोई नाम नही था—वह रजवाडों की मार्फत परोक्ष रीति से अपने हाथो में अधिकार रख सकेगी। शायद इसीलिए उसने इस चीज को पसन्द किया। काग्रेस की गैरहाजिरी में कोई अतिम फैसला हो नही सकता था। कान्फरेंस इस आशा के साथ उस साल स्थगित की गई—ऐसा सोचकर कि वे लोग जब फिर मिलेंगे तब काग्रेस भी उसमें शरीक होगी और तब कोई सर्वमान्य निर्णय हो सकेगा।

इधर इस बात का प्रयत्न किया गया कि काग्रेस के लोग गोलमेज-कान्फरेंस में किसी तरह पहुँचाये जायँ। इसका पहला कदम यह हुआ कि जो कांग्रेस-नेता जेल में थे वे छोड दिये गये कि वे आपस में मिलकर इस विषय पर विचार करें। गवर्नमेंट जानती थी कि जबतक उनको बिना शर्त छोडकर पूरी आजादी के साथ विचार करने का मौका नही दिया जायगा तबतक वे कुछ नही करेंगे। इसलिए, वर्किङ्ग-कमिटी के सभी सदस्यो, जो इस जमाने में कुछ दिनों के लिए ही अस्थायी रूप से मेम्बर बनाये गये थे, छोड दिये गये। प्रयाग में बातचीत हुई। सर तेजबहादुर सप्रू आदि गोलमेज-कान्फरेंस से वापस भारत आ गये थे। उन्होने वहाँ की सब बातें बताकर अपनी राय दी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि मौका अगर मिले तो महात्माजी वाय-सराय लार्ड इरविन से बातें कर सकते हैं। ठीक इसी समय, जब ये बातें चल रही थी, देश के दुर्भाग्य से, प० मोतीलाल नेहरू जी का दे[illegible] गया। सारे देश में मातम छा गया। पर काम तो करना ही था [illegible] बातचीत जारी रखने का निश्चय कायम रहा।

इन दिनों दो विचार-धाराएँ चल रही थी। कुछ लोग तो च[illegible] कमो-न-किसी तरह सुलह हो जाय। किन्तु कुछ लोग सुलह

कर दें—उसके बदले में आजीवन कैद की सजा कर दें, पर वायसराय इस पर राजी नही हुए। इधर काग्रेस का बाजाब्ता अधिवेशन, जो सत्याग्रह के जमाने में नही हुआ था, कराची में करने का निश्चय किया गया। उसका समय भी नजदीक आ गया। समझौते को काग्रेस में मजूर कराना था, क्योंकि उसकी एक शर्त यह थी की काग्रेस का प्रतिनिधि गोलमेज-कान्फरेंस मे शरीक हो। महात्माजी का विचार था कि सरदार भगत सिह की फांसी अगर रुक गई तो देश में अच्छा वातावरण हो जायगा, तब केवल समझौते के पास कराने में ही सुविधा न होगी, बल्कि और तरह से भी जो सघर्ष चल रहा था वह कम हो जायगा, जिससे अच्छा समझौता जैसा होना चाहिए वैसा पूरा हो सकेगा। पर लार्ड इरविन फांसी न रोक सके। शायद उनपर दूसरे अधिकारियो का इतना जोर पडा कि वह ऐसा नही कर सके। उन्होने अन्त मे यह कहा कि आप अगर चाहे तो मै फांसी की तारीख को काग्रेस के बाद तक टाल सकता हूँ, पर फांसी की सजा रद्द नहीं कर सकता। महात्माजी ने कहा कि अगर ऐसा है तो मै यह नही चाहता कि कांग्रेस तक फांसी टाल दी जाय और जब काग्रेस समझौते को मजूर कर ले तो उसके बाद फांसी दे दी जाय, इससे अच्छा तो यह हो कि काग्रेस के पहले ही फांसी हो जाय ताकि काग्रेस किसी भ्रम में न रहे सारी स्थिति जानकर जो उचित समझे सो करे। ऐसा ही हुआ। काग्रेस के ठीक दो-तीन दिन पहले चुपचाप फांसी हो गई। सब कुछ हो जाने के बाद यह बात प्रकट की गई। इससे लोगो में, विशेषकर पजाब की तरफ बहुत हलचल और रोष पैदा हुआ।

समझौते की कुछ शर्तो से पडित जवाहरलालजी दुखी थे। महात्माजी को उन्हे बहुत समझाना पडा। पर वह कुछ ऐसे लोगो में तो थे नहीं जो एक बात तय हो जाने के बाद भी उसका विरोध करते ही रहते। इसलिए, वह यद्यपि असतुष्ट थे तथापि चुप रह गये। कुछ दूसरे लोग तो फांसी के कारण आवेश में आकर अथवा समझौते से ही असतुष्ट होकर उनका विरोध करने लगे। कराची-काग्रेस के समय बहुत ही दूषित वातावरण हो गया। जब हमलोग रेल से कराची जा रहे थे तभी रास्ते में बहुत विरोधी प्रदर्शन हुए। महात्माजी को लोगो ने काले फूल दिए, दूसरे प्रकार से भी यह बताया कि समझौते मे और सारी बातो से लोग असतुष्ट हैं। उस समय महात्माजी की धीरता, सहिष्णुता और अपने निश्चय पर अटल दृढ़ता देखने ही योग्य थी। प्रदर्शन करनेवालो के गुस्से को अपने मीठे शब्दो से, अपने ऊपर सारा दोष लेकर, खत्म करते रहे। काग्रेस में विरोध का तूफान-सा आता हुआ मालूम पड़ा। पर उन्होंने उसको इतनी खूबी से सँभाला कि दूसरे किसी से उन

अब समझौते की कोई जरूरत नही है। पर चूंकि ब्रिटिश गवर्नमेंट गोलमेज-कान्फरेंस में महात्माजी को ले जाने पर तुली हुई थी, इसलिए वह चाहती थी कि कुछ बातें करके उनको वहाँ भेज देना चाहिए—उसके बाद फिर देखा जायगा। इत्तिफाक से लार्ड इरविन के पद का समय भी उसी वक्त खत्म हो गया। समझौता करके वह चले गये। उनके स्थान पर लार्ड विलिंगडन आ गये जो सोलह आने नीचे के अधिकारियों के हाथ में थे या उनसे सहमत थे। नतीजा यह हुआ कि समझौते पर हस्ताक्षर तो हुआ, पर लार्ड इरविन के जाते ही उसे किसी-न-किसी तरह बेकार बना देने का प्रयत्न शुरू हुआ। जहाँ तक लार्ड इरविन के जमाने में उसकी शर्तों पूरी की जा चुकी थी वहाँ तक तो पूरी हुई, पर बाकी शर्तों को पूरी होने में दिक्कत पेश आने लगी कई महीने तक महात्माजी को शर्तों को पूरा करवाने में परेशान रहना पड़ा। हमारी ओर से तो केवल एक ही शर्त पूरी करनी थी। वह यह थी कि सत्याग्रह बन्द कर दिया जाय। यह काम तो जैसे ही समझौता हो गया और महात्माजी तथा वर्किङ्ग कमिटी की ओर से विज्ञप्ति निकल गई कि सत्याग्रह बन्द कर दिया जाय वैसे ही सभी जगहो में बन्द हो गया। गवर्नमेंट को तो कैदियो को छोड़ना, जब्त आश्रम-कमिटियो को वापस देना, नमक कानून के रहते भी जो सुविधा देने की बातें तय हुई थी उनको पूरा करना, गुजरात में जब्त जमीन के सबध में जाँच करना इत्यादि अनेक बातें करनी थी। इनमें से हरएक में अड़चने डाली गई। जो सबसे सीधा था—कैदियो को छोड़ना, उसमें भी महीनो लिखा-पढ़ी करते रहना पड़ा। बिहपुर (भागलपुर) का जब्त आश्रम तो अन्त तक नही छूटा। जब कोई दूसरा बहाना न मिला तो गवर्नमेंट की ओर से कुछ ऐसा प्रयत्न किया गया कि उस जमीन पर कुछ लोगो से दावा कराकर उनसे कुछ लिखापढ़ी करा ली गई और उसी के भरोसे उसपर कब्जा रखा गया। बात यह थी कि जैसा ऊपर कहा गया है, प्रान्तीय अधिकारी शर्तों को मानना चाहते ही नही थे, अत जहाँतक वे बाधा डाल सके, डालते ही गये।

समझौते के समय ही एक घटना हुई जिसने देश मे बहुत बड़ी हलचल पैदा कर दी। सरदार भगतसिंह प्रभृति के मुकदमे का, जो बहुत दिनो से चल रहा था, अन्तिम निर्णय सुना दिया गया। उनको फांसी की सजा हो गई। उन पर अभियोग यह था कि उन्होने एक अग्रेज अफसर को मार डाला था, जिसने साइमन-कमीशन के आगमन के समय लाला लाजपत रायजी पर वार किया था, जिसकी वजह से कुछ दिनो के बाद उनका देहान्त हुआ था। महात्माजी ने लार्ड इरविन से बहुत कोशिश की कि वह फांसी की सजा माफ

कर दें—उसके बदले में आजीवन कैद की सजा कर दें, पर वायसराय इस पर राजी नही हुए । इधर काग्रेस का बाजाब्ता अधिवेशन, जो सत्याग्रह के जमाने मे नही हुआ था, कराची में करने का निश्चय किया गया । उसका समय भी नजदीक आ गया । समझौते को काग्रेस में मजूर कराना था, क्योकि उसकी एक शर्त यह थी की काग्रेस का प्रतिनिधि गोलमेज-कान्फरेंस में शरीक हो । महात्माजी का विचार था कि सरदार भगत सिह की फाँसी अगर रुक गई तो देश में अच्छा वातावरण हो जायगा, तब केवल समझौते के पास कराने में ही सुविधा न होगी, बल्कि और तरह से भी जो सघर्ष चल रहा था वह कम हो जायगा, जिससे सच्चा समझौता जैसा होना चाहिए वैसा पूरा हो सकेगा । पर लार्ड इरविन फांसी न रोक सके । शायद उनपर दूसरे अधिकारियों का इतना जोर पडा कि वह ऐसा नही कर सके । उन्होने अन्त में यह कहा कि आप अगर चाहें तो मै फांसी की तारीख को काग्रेस के बाद तक टाल सकता हूँ, पर फाँसी की सजा रद्द नही कर सकता । महात्माजी ने कहा कि अगर ऐसा है तो मै यह नही चाहता कि कांग्रेस तक फांसी टाल दी जाय और जब काग्रेस समझौते को मजूर कर ले तो उसके बाद फांसी दे दी जाय, इससे अच्छा तो यह हो कि काग्रेस के पहले ही फांसी हो जाय ताकि काग्रेस किसी भ्रम में न रहे सारी स्थिति जानकर जो उचित समझे सो करे । ऐसा ही हुआ । काग्रेस के ठीक दो-तीन दिन पहले चुपचाप फांसी हो गई । सब कुछ हो जाने के बाद यह बात प्रकट की गई । इससे लोगो में, विशेपकर पजाब की तरफ बहुत हलचल और रोष पैदा हुआ ।

समझौते की कुछ शर्तो से पडित जवाहरलालजी दुखी थे । महात्माजी को उन्हें बहुत समझाना पडा । पर वह कुछ ऐसे लोगो में तो थे नही जो एक बात तय हो जाने के बाद भी उसका विरोध करते ही रहते । इसलिए, वह यद्यपि असतुष्ट थे तथापि चुप रह गये । कुछ दूसरे लोग तो फांसी के कारण आवेश में आकर अथवा समझौते से ही असतुष्ट होकर उसका विरोध करने लगे । कराची-काग्रेस के समय बहुत ही दूपित वातावरण हो गया । जब हमलोग रेल से कराची जा रहे थे तभी रास्ते में बहुत विरोधी प्रदर्शन हुए । महात्माजी को लोगों ने काले फूल दिए, दूसरे प्रकार से भी यह बताया कि समझौते से और सारी बातो से लोग असतुष्ट हैं । उस समय महात्माजी की धीरता, सहिष्णुता और अपने निश्चय पर अटल दृढता देखने ही योग्य थी । प्रदर्शन करनेवालो के गुस्से को अपने मीठे शब्दो से, अपने ऊपर सारा दोष लेकर, खत्म करते रहे । काग्रेस में विरोध का तूफान-सा आता हुआ मालूम पड़ा । पर उन्होने उसको इतनी खूबी से सँभाला कि दूसरे किसी से उस

अब समझौते की कोई जरूरत नही है। पर चूँकि ब्रिटिश गवर्नमेंट गोलमेज-कान्फरेंस में महात्माजी को ले जाने पर तुली हुई थी, इसलिए वह चाहती थी कि कुछ बातें करके उनको वहाँ भेज देना चाहिए—उसके बाद फिर देखा जायगा। इत्तिफाक से लार्ड इरविन के पद का समय भी उसी वक्त खत्म हो गया। समझौता करके वह चले गये। उनके स्थान पर लार्ड विलिंगडन आ गये जो सोलह आने नीचे के अधिकारियो के हाथ में थे या उनसे सहम थे। नतीजा यह हुआ कि समझौते पर हस्ताक्षर तो हुआ, पर लार्ड इरविन के जाते ही उसे किसी-न-किसी तरह बेकार बना देने का प्रयत्न शुरू हुआ। जहाँ तक लार्ड इरविन के जमाने में उसकी शर्तें पूरी की जा चुकी थी वहाँ तक तो पूरी हुई, पर बाकी शर्तों को पूरी होने में दिक्कत पेश आने लगी कई महीने तक महात्माजी को शर्तों को पूरा करवाने में परेशान रहना पडा। हमारी ओर से तो केवल एक ही शर्त पूरी करनी थी। वह यह थी कि सत्याग्रह बन्द कर दिया जाय। यह काम तो जैसे ही समझौता हो गया और महात्माजी तथा वर्किङ्ग कमिटी की ओर से विज्ञप्ति निकल गई कि सत्याग्रह बन्द कर दिया जाय वैसे ही सभी जगहो में बन्द हो गया। गवर्नमेंट को तो कैदियो को छोडना, जब्त आश्रम-कमिटियो को वापस देना, नमक कानून के रहते भी जो सुविधा देने की बातें तय हुई थी उनको पूरा करना, गुजरात में जब्त जमीन के सबध में जांच करना इत्यादि अनेक बातें करनी थी। इनमें से हरएक में अडचने डाली गई। जो सबसे सीधा था—कैदियो को छोडना, उसमें भी महीनो लिखा-पढी करते रहना पडा। विहपुर (भागलपुर) का जब्त आश्रम तो अन्त तक नही छूटा। जब कोई दूसरा बहाना न मिला तो गवर्नमेंट की ओर से कुछ ऐसा प्रयत्न किया गया कि उस जमीन पर कुछ लोगो से दावा कराकर उनसे कुछ लिखापढी करा ली गई और उसी के भरोसे उसपर कब्जा रखा गया। बात यह थी कि जैसा ऊपर कहा गया है, प्रान्तीय अधिकारी शर्तों को मानना चाहते ही नही थे, अत जहाँतक वे बाधा डाल सके, डालते ही गये।

समझौते के समय ही एक घटना हुई जिसने देश में बहुत बडी हलचल पैदा कर दी। सरदार भगतसिह प्रभृति के मुकदमे का, जो बहुत दिनो से चल रहा था, अन्तिम निर्णय सुना दिया गया। उनको फाँसी की सजा हो गई। उन पर अभियोग यह था कि उन्होने एक अग्रेज अफसर को मार डाला था, जिसने साइमन-कमीशन के आगमन के समय लाला लाजपत रायजी पर वार किया था, जिसकी वजह से कुछ दिनो के बाद उनका देहान्त हुआ था।

कर दें—उसके बदले में आजीवन कैद की सजा कर दें, पर वायसराय इस पर राजी नहीं हुए। इधर कांग्रेस का बाजाब्ता अधिवेशन, जो सत्याग्रह के जमाने में नहीं हुआ था, कराची में करने का निश्चय किया गया। उसका समय भी नजदीक आ गया। समझौते को कांग्रेस में मंजूर कराना था, क्योंकि उसकी एक शर्त यह थी की कांग्रेस का प्रतिनिधि गोलमेज-कान्फरेंस में शरीक हो। महात्माजी का विचार था कि सरदार भगत सिंह की फाँसी अगर रुक गई तो देश में अच्छा वातावरण हो जायगा, तब केवल समझौते के पास कराने में ही सुविधा न होगी, बल्कि और तरह से भी जो संघर्ष चल रहा था वह कम हो जायगा, जिससे अच्छा समझौता जैसा होना चाहिए वैसा पूरा हो सकेगा। पर लार्ड इरविन फाँसी न रोक सके। शायद उनपर दूसरे अधिकारियों का इतना जोर पड़ा कि वह ऐसा नहीं कर सके। उन्होंने अन्त में यह कहा कि आप अगर चाहें तो मैं फाँसी की तारीख को कांग्रेस के बाद तक टाल सकता हूँ, पर फाँसी की सजा रद्द नहीं कर सकता। महात्माजी ने कहा कि अगर ऐसा है तो मैं यह नहीं चाहता कि कांग्रेस तक फाँसी टाल दी जाय और जब कांग्रेस समझौते को मंजूर कर ले तो उसके बाद फाँसी दे दी जाय, इससे अच्छा तो यह हो कि कांग्रेस के पहले ही फाँसी हो जाय ताकि कांग्रेस किसी भ्रम में न रहे सारी स्थिति जानकर जो उचित समझे सो करे। ऐसा ही हुआ। कांग्रेस के ठीक दो-तीन दिन पहले चुपचाप फाँसी हो गई। सब कुछ हो जाने के बाद यह बात प्रकट की गई। इससे लोगों में, विशेषकर पंजाब की तरफ बहुत हलचल और रोष पैदा हुआ।

समझौते की कुछ शर्तों से पंडित जवाहरलालजी दुखी थे। महात्माजी को उन्हें बहुत समझाना पड़ा। पर वह कुछ ऐसे लोगों में तो थे नहीं जो एक बात तय हो जाने के बाद भी उसका विरोध करते ही रहते। इसलिए, वह यद्यपि असंतुष्ट थे तथापि चुप रह गये। कुछ दूसरे लोग तो फाँसी के कारण आवेश में आकर अथवा समझौते से ही असंतुष्ट होकर उसका विरोध करने लगे। कराची-कांग्रेस के समय बहुत ही दूषित वातावरण हो गया। जब हमलोग रेल से कराची जा रहे थे तभी रास्ते में बहुत विरोधी प्रदर्शन हुए। महात्माजी को लोगों ने काले फूल दिए, दूसरे प्रकार से भी यह बताया कि समझौते से और सारी बातों से लोग असंतुष्ट हैं। उस समय महात्माजी की धीरता, सहिष्णुता और अपने निश्चय पर अटल दृढ़ता देखने ही योग्य थी। प्रदर्शन करनेवालों के गुस्से को अपने मीठे शब्दों से, अपने ऊपर सारा दोष लेकर, खत्म करते रहे। कांग्रेस में विरोध का तूफान-सा आता हुआ पड़ा। पर उन्होंने उसको इतनी खूबी से सँभाला कि दूसरे

कार्यकर्त्ता भी नही जानते थे कि अब हमें क्या करना चाहिए। जनता को तोकुछ पता ही न था कि इस बार क्या कार्यक्रम रहेगा। हम लोगो ने सुना गवर्नमेंट के अधिकारियो का विचार था कि इस बार सारा आन्दोलन दो-चार दिनो के अन्दर ही समाप्त कर दिया जायगा। पर ऐसा हुआ नही। जितनी भी सख्ती हो सकती थी, खूब की गई। गवर्नमेंट का प्रयत्न यह था कि कोई काग्रेसी अगर जेल के बाहर रह भी जाय तो उसके पास कोई ऐसा साधन न रह जाय जिसके द्वारा वह काम को आगे बढा सके। इस तरह काग्रेसी, लोगो को कोई पैसा भी देता तो उसके लिए वह गिरफ्तार कर लिया जाता। उनको कोई अपने घर में आसरा देता तो उसे कडी सजा मिलती। यहाँ तक कि उनके लिए भाडे की सवारियाँ भी वर्जित थी! तार-डाक तो वे काम में ला ही नही सकते थे। समाचार-पत्रो में कोई सच खबर भी भरसक छपने नही पाती थी। दूसरे भी जितने साधन उनके काम आ सकते थे, सभी से वे वचित कर दिये गये। पर जनता में १९३० के सत्याग्रह का इतना प्रभाव शेष था कि बिना किसी के बताये ही लोगो ने सत्याग्रह के रास्ते ढूंढ निकाले। गवर्नमेंट के जो हुक्म निकलते थे वे इसमें बहुत सहायक हुआ करते थे। जा कुछ भी गवर्नमेंट मना करती थी वही लोग करने लग जाते थे। इस तरह, सत्याग्रह आरम्भ हो जाता था। आन्दोलन को दो-चार दिनो के अन्दर खत्म कर देने का गवर्नमेंट का इरादा पूरा नही हुआ। महीनो तक आन्दोलन जोरो से चलता रहा। पर गवर्नमेंट जनता की कमजोरी परख गई थी। जो कमजोर स्थान था उसी पर उसने चोट की।

१९३० के आन्दोलन में ही, जब वह समाप्त होने पर पर आ रहा था, हमने एक कमजोरी महसूस की थी। लोग जेलखाने से नही डरते थे, लाठियाँ भी खशी से सह लेते थे, कही-कही गोलियो का भी मुकावला उन्होने वडी वहादुरी से किया था। पर गवर्नमेंट जब धन-सम्पति पर अधिकार करने लगी तव लोग कुछ सहमने लगे। हमने इसका नतीजा देख लिया था, और गवर्नमेंट ने भी इस कमजोरी को समझ लिया था, इसलिए इस वार गिरफ्तारियो के वाद लम्बी लम्बी सजाएँ तो मिलती ही थी, साथ-साथ वडी रकमो के जुर्माने भी होने और कडाई से वसूल किये जाने लगे। अगर कोई अपनी गाडी, चाहे वह घोडा-गाडी हो या वैल-गाडी या मोटर, सत्याग्रह के काम में लगा देता तो वह गाडी भी जब्त हो जाती। यदि कोई अपने मकान में सत्याग्रह का काम होने देता तो वह मकान भी जब्त हो जाता। वैको मे जमा रुपये अगर सत्याग्रह के काममें लगाये जाते तो रुपये भी कुर्क कर लिये जाते—उनकी निकासी तक रोक दी जाती। इस तरह, हर तरफ से रास्ता

बन्द कर दिया गया, ताकि सत्याग्रही न तो कुछ वोल सके, न कही आ जा सके न किसी से पैसे ले सके, न किसी के घर में आश्रय पा सके, न किसी प्रकार के धन पर कोई अधिकार रख सके, न कोई सवारी ही काम में ला सके। जिस पर भी सदेह होता वही सत्याग्रही समझ लिया जाता, उसपर ये सब सख्तियाँ लाद दी जाती। नतीजा इसका यह हुआ कि जो सत्याग्रही थे वे तो नही दवे, पर दूसरे-दूसरे लोगो में, जो स्वय सत्याग्रह न करके सत्याग्रहियो के साथ सहानुभूति दिखाते थे या सहायता देते थे, आतक पैदा करके सत्याग्रही नि सहाय कर दिये गये। तोभी, देश ने लार्ड विलिगडन की चुनौती का अच्छा और शानदार मुकावला किया। वहुत दिनो तक गवर्नमेंट आन्दोलन को वन्द नही कर सकी। पर आहिस्ता-आहिस्ता, साल-डेढ-साल के वाद, आन्दोलन धीमा पड गया। गवर्नमेंट यह कहने के योग्य हो गई कि उसने अव परिस्थिति पर पूरी तरह कावू कर लिया है।

चौबीसवाँ अध्याय

महात्माजी ने अपनी 'आत्मकथा' में बताया है कि उनको बचपन में ही अछूतोद्धार के प्रश्न का अभास मिल गया था। जब उनको इसका पूरा ज्ञान हुआ कि यह कुप्रथा कितनी अमानुषिक और अस्वाभाविक है तब से उन्होने इसे मिटाने के प्रयत्न में कोई कसर उठा न रखी। जब हिन्दुस्तान में लौट कर सार्वजनिक काम शुरू किया तब अस्पृश्यतानिवारण को अपने कार्यक्रम का एक मुख्य अग बना रखा। इसपर जहाँतक हो सका, जोर देते रहे। क्रियात्मक रूप से इसे दूर करने में सचेष्ट रहे। काग्रेस के कार्यक्रम का यह एक महत्त्वपूर्ण काम हो गया। सेठ जमनालालजी ने तो उसे एक कर्तव्य बना लिया। कुछ दिनो तक वह इसी काम में लगे रहे। सारे देश में काग्रेस का सगठन जैसे-जैसे विस्तृत और सुदृढ हुआ, अस्पृश्यता-निवारण पर जोर दिया जाने लगा। हजारो वर्षों से प्रचलित और स्थापित यह कुप्रथा एकबारगी उखाड-फेंकी नही जा सकती थी, पर इसमें सदेह नही कि इसकी जड हिल गई।

राजनीतिक कारणो से हिन्दू-मुस्लिम मसला भी विकट बनता गया। खिलाफत-आन्दोलन के जमाने में जो दृश्य देखे गये, वे थोडे दिनो के बाद प्राय स्वप्नवत् भूल-से गये। आपस के दगे-फसाद बहुत बढ गये। यद्यपि देखने के लिए उनके रूप और कारण धार्मिक हुआ करते थे तथापि वे वास्तव में राजनीतिक कारणो से ही हुआ करते थे—कही गाय की कुर्बानी के लिए, कही मुहर्रम के ताजिए पर ईट-पत्थर फेंकने के लिए, कही मसजिदो के सामने बाजे बजाने के लिए और कही-कही जुलूस निकालने के लिए भी। कही-कही तो व्यक्तिगत झगडा भी सामूहिक दगे का कारण बन जाता था। जैसे ही राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकडता गया, और ऐसा मालूम हुआ कि अब कुछ

राजनीतिक अधिकार भारतवासियो के हाथ आनेवाले हैं, वैसे ही यह प्रयत्न किया जाने लगा कि उसके बँटवारे में किस तरह ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा लिया जाय—चाहे उसके हासिल करने के प्रयत्न और त्याग में हिस्सा लिया गया हो या नही। इस तरह मुसलमानो का सगठन बना, जो अपनी ओर से दावा पेश करने लगा। अस्पृश्य जातियो का भी सगठन बना, जिसने अछूतो की ओर से भी दावा पेश किया। अग्रेजी सरकार की नीति यही रही कि जबतक सब दल के लोग हिन्दुस्तान में मिलकर माँग पेश न करें, वह बहुत-कुछ नही कर सकती; अगर कुछ करती भी तो उसमें ऐसी शर्तें लगा दी जाती जो सारे देश के लिए झगडे का कारण बन जाती। इसी नीति के अनुसार, जब पहले-पहल मिण्टो-मार्ले-सुधार आया तो उसमें बराय-नाम कुछ प्रतिनिधि व्यवस्थापिका-सभाओ में लिये गये, पर किसी विषय में हिन्दुस्तानियो के हाथ में अधिकार नही दिये गये। उसके साथ भी मुसलमानो के लिए अलग चुनावक्षेत्र का ऐसा पच्चर लगा दिया गया जिससे देश के लोग—मुस्लिम और गैरमुस्लिम—दो हिस्सो में बाँट दिये गये। और, मत देकर प्रतिनिधि चुनने का जो थोडा-बहुत अधिकार हिन्दुस्तानियो को मिला वह हिन्दुस्तानी की हैसियत से नही, मुस्लिम और गैरमुस्लिम की हैसियत से। निश्चय प्रकाशित करने के पहले मुसलमानो की एक जमायत को प्रोत्साहन देकर इस तरह की माँग पेश कराई गई कि उसी माँग के उत्तर में यह घरफोड पद्धति सुधार के नाम से चलाई गई। पर जब इस तरह की कोई चीज चल जाती है—जब विष बोया जाता है, तब वह फैले बिना रह नही सकता। नतीजा यह हुआ कि कुछ दिनो के बाद कुछ औरो ने भी कुछ अलग चुनाव-क्षेत्र की माँग पेश की, कुछ औरो के लिए भी अलग चुनावक्षेत्र कायम किये गये। जैसे सिक्ख, इसाई इत्यादि। गोलमेज-कान्फ्रेन्स में महात्माजी को एक ऐसी स्थिति का मुकाबला करना पडा जो पहले से तैयार करके रखी गई थी।

१९३० की प्रथम गोलमेज-कान्फ्रेन्स में विशेषकर इसी बात पर जोर था कि जो नया विधान बनें वह सारे हिन्दुस्तान के लिए बने। हिन्दुस्तान का एक वह हिस्सा था जो अग्रेजी राज के नाम से बिल्कुल अग्रेजी पार्लियामेंट के अधीन चलता था, दूसरा वह हिस्सा था जिसमें देशी रजवाडे अग्रेजी सल्तनत की मातहती मानते हुए अपनी-अपनी रियासतो को अपने तरीको से चलाया करते थे। सवाल यह था कि दोनो के ही लिए एक विधान बने अथवा केवल अग्रेजी हिस्से के लिए ही, यदि दोनो के लिए बने तो उसमें रजवाडों का स्थान क्या हो। इस कान्फ्रेन्स में रजवाडो के प्रतिनिधि बुलाये गये थे। जब ब्रिटिश सरकार ने सारे देश में स्वराज्य की लहर जोरों से बढती देखी

तो उसको ऐसा मालूम हुआ कि जहाँ तक हिन्दुस्तान के अग्रेजी हिस्से का सम्बन्ध है, अधिकार दिये बिना बहुत दिनो तक काम नही चल सकता। तब उसने रजवाड़ो को अपना हथकडा बनाकर देश के शासन को अपने हाथो में रखने का रास्ता सोचा। कुछ रजवाडे उसके हथकण्डे बनकर और कुछ सचमुच देशप्रेम से प्रभावित होकर गोलमेज-कान्फ्रेन्स में गये। गोलमेज-कान्फ्रेन्स में वे सारे देश के लिए एक सघ-विधान के पक्षपाती हो गये। यह बात पहले-पहल वही आई कि विधान का रूप एक सघ का हो, जिसमें रजवाडे भी शरीक हो, चूकि वे अपनी-अपनी रियासतो में अन्दरूनी मामलो में बहुत करके स्वतत्र समझे जाते थे, इसलिए वे सघ में शरीक होने के लिए शर्तें खोजने लगे। ब्रिटिश सरकार दूसरी तरफ इस चिन्ता में थी सारे हिन्दुस्तान की यदि एक व्यवस्थापिका-सभा हो, तो उसमें रजवाडो के प्रतिनिधि और ब्रिटिश भारत के ऐसे प्रतिनिधि—जो राष्ट्रीय आन्दोलन से सहानुभूति नही रखते अथवा जो किसी-न-किसी कारण ब्रिटिश सरकार का साथ देना चाहते है, दोनो मिलकर राष्ट्रीयदल को दबाये रख सकेंगे। इस प्रकार, यद्यपि देखने में प्रतिनिधियो द्वारा शासन होने लगेगा तथापि वास्तविक रूप में अधिकार परोक्ष रीति से अग्रेजो के ही हाथो में रह जायगा।

१९३१ में महात्माजी दूसरी गोलमेज-कान्फ्रेन्स में गये। वहाँ उन्होने राष्ट्रीय माँगो के खिलाफ एक दीवार खडी देखी, जो अग्रेजो की नही, हिन्दुस्तानियो की थी, जिसको अग्रेजो ने ही प्रोत्साहन देकर तैयार कराया था। वहाँ हजार कोशिश करने पर भी कोई ऐसा रास्ता नही निकल सका जिसको सभी हिन्दुस्तानी मजूर करते। मुख्यत मुसलमानो और अस्पृश्यो के नेता कांग्रेस की मांग में शरीक नही हुए। कुछ नेता ऐसे ही चुनकर बुलाये गये थे जो शरीक नही होते! हजार कोशिश करने पर भी एक भी काग्रेसी मुसलमान वहाँ नही बुलाया गया! नतीजा जो होनेवाला था वही हुआ। आपस का मतभेद नही मिटा। महात्माजी को अपनी हार माननी पडी। इसी वाद-विवाद में अस्पृश्यो की ओर से यह माँग पेश की गई थी कि धारा-सभाओ में उनके लिए स्थान सुरक्षित कर दिये जायें और मुसलमानो की तरह उनके प्रतिनिधि अलग चुनाव-क्षेत्र द्वारा—जिसमें केवल अस्पृश्य-वर्ग के लोगो को ही उम्मीदवार बनने तथा मत देने का अधिकार हो—क़ायम कर दिये जायें।

महात्माजी अस्पृश्यता को एक पाप समझते थे। वह हिन्दू-समाज से उसे दूर करने का सिरतोड प्रयत्न कर रहे थे। उन्होने सोचा, अस्पृश्यो का यह अलग चुनाव-क्षेत्र सवर्ण हिन्दुओ से अछूतो को हमेशा के लिए अलग कर देगा, वे अछूत के अछूत ही रह जायेंगे। अत, इस चीज को वह धार्मिक दृष्टि

से बरदाश्त नही कर सकते थे। विरोधी लोग तो यह मानते थे कि राजनीतिक कारणो से अस्पृश्यो को हिन्दुओं में मिलाकर मुसलमानो के मुकाबले के लिए महात्माजी को रखना था, इसलिए वह उनको अलग चुनाव-क्षेत्र देने का विरोध कर रहे हैं। पर जो लोग महात्माजी के विचारो से परिचित थे, जो उनकी सचाई में विश्वास करते थे, उनके सामने यह स्पष्ट था कि इसे वह एक धार्मिक प्रश्न समझते थे, इस पर धार्मिक दृष्टि से विचार करते थे। वह अस्पृश्यो को हिन्दू-जाति का अग मानते थे। वह उनको भी उस समाज में वही स्थान दिलाना चाहते थे जो दूसरी किसी भी जाति के लोगो को प्राप्त है। जब उन्होने देखा कि अलग चुनाव-क्षेत्र इस सुधार के लिए घातक होगा और अस्पृश्यो को दूसरो से राजनीति में भी अलग कर देगा, तब उन्होने गोलमेज-कान्फ्रेन्स में घोषणा कर दी कि ब्रिटिश गवर्नमेंट ने इस मांग को अगर मजूर किया तो वह हरगिज नही मानेंगे और उसमें उनको जान भी देनी पडी तो उसकी भी बाजी लगा देंगे। उस समय लोगो ने इस मार्मिक वाणी का कोई विशेष अर्थ नही लगाया और न इसको कोई महत्त्व ही दिया। अगर इसकी ओर किसी का ध्यान गया भी तो उसने समझ लिया कि यह एक वाग्विलासमात्र है और जोरो से उस मांग का विरोध करने का एक तरीका है, इससे अधिक यह महत्त्व नही रखता है। पर महात्माजी ने समझ-बूझकर इन शब्दो को कहा था। वह अक्षरश इनका पालन करने का निश्चय कर चुके थे।

जब आपस में साम्प्रदायिक विषयो का कोई फैसला न हो सका तो प्रधान मत्री मैकडोनल ने यह घोषणा कर दी कि इस विषय का फैसला वहाँ के प्रधान मत्री करेंगे। कुछ दिनो के बाद प्रधान मत्री ने अपना फैसला दिया। उसमें एक बात यह थी कि अस्पृश्य-वर्ग के लिए धारा-सभाओं में केवल स्थान सुरक्षित ही नही रखे जायेंगे, बल्कि उनके लिए अलग-चुनाव-क्षेत्र भी कायम किये जायंगे और इन क्षेत्रो में केवल अस्पृश्य-वर्ग के लोग ही उम्मीदवार बन सकेंगे तथा वोट दे सकेंगे यह फैसला प्रधान मत्री मैकडोनल के अवार्ड यानी पचायती फैसले के नाम से मशहूर किया गया। पर वास्तव में यह पचायती फैसला था नही, क्योकि पचायती फैसला वही दे सकता है जिसको सभी वादियो तथा प्रतिवादियो ने स्वेच्छा से पच बनाया हो। पर श्री रम्जे मैकडोनल को हिन्दुस्तान के विभिन्न दलो के नेताओ ने—और खासकर गाधीजी ने, जो देश की सबसे बडी सार्वजनिक संस्था काग्रेस के प्रतिनिधि थे—कभी पचायत की अनुमति नही दी थी। प्रधान मत्री की हैसियत से वह जो चाहें सो फैसला देने का उन्हें अधिकार था

यह उनका इसी प्रकार का फैसला था। पचायती फैसले और किसी अधिकारी के फैसले में जो अन्तर है उसे याद रखना जरूरी है। अधिकारी के फैसले को मानने के लिए कोई पक्ष वाध्य नही है। अगर वह किसी तरह उसे तोडवा सके, बदलवा सके या रद्द करवा सके तो इसमें कोई नैतिक दोष नही माना जाता। इसलिए दोनो पक्षो को अधिकारी के फैसले के विरुद्ध अपील करने का हक कानूनी तौर पर दिया गया है। पर पच तो सभी पक्षो की मर्जी से मुकर्रर किया जाता है। नैतिक दृष्टि से उसके फैसले को मानना सभी पक्षो के लिए वाजिब और मुनासिब होता है। इसलिए कानून में भी पच के फैसले के खिलाफ अपील नही है—जबतक यह साफ-साफ साबित न हो जाय कि पच ने बेईमानी की है, या अपने अधिकार से बाहर जाकर पचायत में नही दी गई बात पर भी फैसला दिया है। यह इतना कहना इसलिए आवश्यक हो गया है कि पीछे चलकर जब गाधीजी ने इस फैसले का विरोध किया तो नैतिक दृष्टि से इसमें कोई दोष की बात नही थी। इस फैसले को पच का फैसला कहना ही गलत था, क्योकि उन्होने कभी पचायती मानी ही नही थी।

अस्तु, इस फैसले में, जैसा ऊपर कहा गया है, अस्पृश्य-वर्गों के लिए अलग चुनाव क्षेत्र दिये गये थे, जिसके विरुद्ध, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, महात्माजी ने जान की बाजी लगाकर लडने की बात गोलमेज-कान्फ्रेन्स में ही कह दी थी। फैसले में एक बात यह भी थी कि सभी पक्ष, जिनका उसके किसी अश से सम्बन्ध था, यदि एक-मत होकर उसे बदलवाना चाहेंगे तो वह बदला भी जा सकता है। यरवदा-जेल में जब महात्माजी को समाचार-पत्रो से फैसले की खबर मिली, तो उन्होने गवर्नमेंट को लिखा कि अछूतो से सम्वन्ध रखनेवाला यह फसले का अश बदलना चाहिए, और यदि गवर्नमेंट उसपर राजी न होगी तो अपने प्राणो की वाजी लगाकर उनको उसका विरोध करना पडेगा। गवर्नमेंटने उनकी बात पर ध्यान नही दिया। वहुत लिखा-पढी के वाद जेल के अन्दर से ही उन्होंने घोपणा की कि जवतक वह अश वदल नही दिया जाता, वह अनशन करेंगे। अनशन आरम्भ करने की तिथि भी उन्होने घोपित कर दी। निश्चित तिथि पर अनशन आरम्भ भी कर दिया। यह खवर जैसे ही प्रकाशित हुई, सारे देश में खलवली मच गई। पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्री राजगोपालाचार्य प्रभृति नेताओं ने बम्वई में एक कान्फ्रेन्स वुलाई। उसमें अस्पृश्य-वर्गों के नेता डा० अम्बेदकर और दूसरों को भी वुलाया। सारे देश के मुख्य काग्रेस कर्मी, जो उस समय जेल के बाहर थे, सम्मेलन में शरीक होने के लिए बम्बई पहुँच गये।

उस समय प्रश्न यह था कि अस्पृश्य-वर्ग के नेता से मिलकर कोई ऐसी बात तय कर ली जाय जिसे गांधीजी मंजूर कर लें। उसीके मुताबिक श्री मैकडोनल्ड का फैसला बदलवा दिया जाय और तब महात्माजी अनशन छोड दें। उनकी शर्त पूरी हो जाने पर वह अनशन छोड देंगे ही, ऐसी आशा थी। पर शर्त के पूरी होने में बहुत बडी कठिनाई दीख पडती थी। कई दिनो तक बम्बई में बातें होती रही। उसके बाद यह सोचा गया कि पूना में चलकर ही बातें करना ठीक होगा, जहाँ महात्माजी से मिलने का भी मौका रहेगा और सभी बातें उनसे पूछी जा सकेंगी। गवर्नमेंट ने भी उनसे मिलने की इजाजत प्रमुख लोगो को दे दी। दूसरे प्रकार की सुविधाएँ भी मिल गईं। कई दिनो की बातचीत के बाद एक रास्ता निकला। अलग चुनाव-क्षेत्र छोड देने के लिए डा० अम्बेदकर राजी हो गये; पर उन्होंने दो शर्तें लगाई—एक तो यह थी कि अलग चुनाव-क्षेत्र नही होंगे, पर उनके लिए धारासभा में उनकी जनसंख्या के अनुपात से स्थान सुरक्षित होना चाहिए; दूसरी यह कि दस वर्षों के लिए मान लेना चाहिए कि अन्तिम चुनाव यद्यपि सभी मिलकर करें तथापि प्रत्येक स्थान के लिए चार उम्मीदवारो को अस्पृश्य वर्ग के लोग ही चुनकर नाम दे दें और उनमें से ही एक को सब लोग मिल कर चुनेंगे। कई दिनों तक सवेरे-शाम महात्माजी के पास बातें होती रहीं।

महात्माजी चारपाई पर लेटे-लेटे आम के एक पेड के नीचे बातें करते रहे। सब लोग, जो जेल के अन्दर जाते, चारपाई के चारो ओर बैठकर या खडे होकर सुना करते। उस समय जिस धैर्य और सहिष्णुता के साथ वह बातें करते वह देखने योग्य था। साथ ही, उनके प्रत्येक शब्द से यह टपकता था कि अपने इस अनशन से वह सवर्ण हिन्दुओं के लिए कोई राजनीतिक लाभ नहीं उठाना चाहते थे, बल्कि उनकी चिन्ता अस्पृश्य-वर्गों की स्थिति के सम्बन्ध में ही थी। वह चाहते थे कि अस्पृश्यता जल्द-से-जल्द निर्मूल हो जाय। पर अलग चुनाव-क्षेत्रो द्वारा एक प्रकार से वह स्थायी बन जाती थी। इन्हीं बातो को उन्होने कई बार बहुत ही जोरो से, मर्मस्पर्शी शब्दों में, डा० अम्बेदकर से कहा। अन्त में वह भी पिघले। समझौता हो गया। इसके लिए महात्माजी प्रतिदिन घण्टो बातें करते रहे। ऐसा मालूम पड़ता था कि उनमें एक अजीब शक्ति आ गई है, जो अनशन के दिनो में भी उन्हे इस योग्य बना देती है कि वह घण्टों गम्भीर विषय पर भी बातें करते-सुनते रहें। तब भी शरीर की कमजोरी तो दिन-दिन बढती ही जाती थी, जिसका पता उनकी धीमी होती जाती हुई आवाज से लगता था। इस समझौते से अस्पृश्य-वर्गों को एक बडा लाभ यह हुआ कि उनको जितनी जगहें श्री

मैकडोनल के फैसले से मिली थी उससे कही ज्यादा मिल गई । श्रीअमृतलाल ठक्कर ने, जो इस विषय में बडी दिलचस्पी रखा करते थे, उनकी जनसख्या निकालकर बतला दिया कि उनको कितनी जगहे मिलनी चाहिए । समझौता होते ही गवर्नमेंट को सूचना दे दी गई । उसने सारी बातें प्रधान मत्री मैकडोनल को तारो द्वारा पहुँचा दी । वहाँ से चन्द घटो के अन्दर ही उत्तर आ गया कि उन्होने अपने फैसले का वह अश, जिसके सम्बन्ध में महात्माजी ने अनशन किया था, रद्द कर दिया और उसके स्थान पर यह समझौता मान लिया । यह सूचना गवर्नमेंट ने जेल में पहुँचा दी । तब महात्माजी ने अनशन समाप्त किया । आपस की इस बातचीत में शरीक सभी लोग, अनशन समाप्त होने के समय, पूना में हाजिर थे । उनके अलावा कवीन्द्र रवीन्द्र ठीक उसी समय पूना पहुँच गये । उस यज्ञ में उन्होने ने भी योग दान किया । महात्माजी ने अपने सभी अनशनो को ईश्वर का नाम लेकर आरम्भ किया और ईश्वर की प्रार्थना के साथ ही समाप्त किया । इस मौके पर भी ऐसा ही हुआ । इसका सुन्दर वर्णन स्वय कवीन्द्र रवीन्द्र ने उसी समय लिखा था ।

उस समझौते में एक शर्त यह भी थी कि स्वर्ण हिन्दू अछूतपन दूर करने का प्रयत्न करेंगे और अस्पृश्य जातियो को उन्नत बनाने में सचेष्ट होगे । पूना से, समझौता हो जाने पर, हम सब बम्बई आये । वहाँ हरिजन-सेवक-सघ की स्थापना की गई, जो उस दिन से आज तक उसी काम में लगा हुआ है । महात्माजी ने जेल से ही अछूतोद्धार-सम्बन्धी लेख लिखना आरम्भ किया । गवर्नमेंट ने भी इस सम्वन्ध के लेखो को नही रोका । जो लोग बाहर गये थे उन्होने जोरो से अस्पृश्यता निवारण का काम शुरू किया । केवल हरिजन-सेवक-सघ की स्थापना ही नही हुई, बल्कि सभी स्थानो पर इस बात का प्रयत्न भी जोरो से होने लगा कि अस्पृश्यता-निवारण किस तरह कार्य-रूप में परिणत किया जाय । एक रूप इस प्रयत्न का यह हुआ कि जिन मदिरो और देवस्थानो मे अस्पृश्य लोग दर्शन-पूजन के लिए नही जाने पाते थे वे उनके लिए खोल दिये जायें, उनको वहाँ दर्शन-पूजा की सुविधाएँ दी जायें । इसके पहले कई जगहो पर ऐसे प्रयत्न किये गये थे । कई स्थानो में इसके लिए सत्याग्रह भी हुआ था । अब इस सारे कार्यक्रम में बहुत शक्ति आ गई । काम जोरो से चलने लगा । कुछ दिनो के बाद महात्माजी ने यरवदा-जेल में ही इस सम्बन्ध में इक्कीस दिनो का उपवास किया । यह उपवास उन्होने प्राय-श्चित्त के रूप में किया था । मै उस समय हजारीबाग-जेल में था । वहाँ पर यह सूचना पाकर कई आदमियो ने इक्कीस दिनो तक फलाहार किया । कही-कही कुछ लोगो ने तो उपवास भी किया । यह एक ऐसा सुअवसर था जब

सारे देश को, विशेषकर हिन्दू-जाति को, अस्पृश्यता के प्रश्न पर सोचने का और इस कुप्रथा के सम्बन्ध में कर्त्तव्यपालन के निमित्त निश्चय करने का, मौका मिला। इस उपवास में महात्माजी ने इस समस्या के हल को सामाजिक विषय के स्तर से उठाकर एक धार्मिक वृत्ति के स्तर पर पहुँचा दिया। उसी का यह फल हुआ कि सारे हिन्दू-समाज में इससे खलवली मच गई। नतीजा यह हुआ कि आज अस्पृश्यता आहिस्ता-आहिस्ता अपने दुर्ग के एक-एक कोने से निकलती जा रही है।

महात्माजी ने जेल से लिखना जारी रखा। उसमें जब कोई कठिनाई और वाधा आने लगी तो उन्होने फिर भी अनशन किया, जिसके फल-स्वरूप गवर्नमेंट ने मजबूर होकर उनको छोड दिया। जेल से निकलने पर उन्होने किसी राजनीतिक काम में हाथ नही डाला। वह अपने विचार से अव भी जेल के अन्दर ही थे। जो कुछ वह जेल के अन्दर से कर सकते थे, नैतिक दृष्टि से उतना ही करना उन्होने उचित समझा। चूँकि उनको अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी कार्य करने की इजाजत जेल में भी थी, इसलिए उन्होने उसीको वाहर आने पर भी जोरो से चलाया। अपने पत्र में लेखादि लिखने के सिवा उन्होने देश का दौरा भी शुरू किया। सत्याग्रह का आन्दोलन आहिस्ता-आहिस्ता धीमा पडने लगा। फिर महात्माजी को ऐसा कोई आभास मिला कि अव इसको अधिक चलाना ठीक न होगा। अन्त में कुछ दिनो के वाद आन्दोलन स्थगित कर दिया गया।

पर वह पहले-जैसा ही सवारियो पर, मोटर और रेल पर दौरा करते रहे। इस दौरे में उन्होने देश के विभिन्न प्रदेशो में अस्पृश्यता-निवारण की वात सुनाई। सनातनी विचार के हिन्दुओ ने उनका वहुत विरोध किया। कुछ विद्वानो ने शास्त्रो द्वारा उनका समर्थन भी किया। कही-कही दोनो पक्ष में शास्त्रार्थ भी हुए। एक प्रकार से हिन्दू-समाज का मन्थन होने लगा। इसी कारण रुष्ट होकर पूना मे कुछ लोगो ने महात्माजी पर सभा में जाते समय विस्फोटक बम भी फेंका, पर सौभाग्य से वह वच गये। उनके दौरे में एक सज्जन ने वहुत जगहो में वाधा डाली। वह जहाँ जाते वही पहुँच वह 'सत्याग्रह' करते, अर्थात् उनको सभा में जाने से रोकने का प्रयत्न करते। उस रुकावट को दूर करने के लिए प्रवन्धकर्ता लोग अनेक उपाय रचते, पर वह सज्जन पीछा नह छोडते।

पूना के अलावा और कई जगहो में भी महात्माजी पर हमले किये गये। कही-कही हलकी चोट भी आई। पर वह अपने सकल्प में अटल रहे, दौरा करते ही गये। अन्त में उन्होने उडीसा पहुँचकर यह निश्चय किया कि अव

'पैदल ही दौरा करना चाहिए। बस कई दिनो तक उस सूबे में पैदल ही दौरा करते रहे। उस सूबे के एक बडे हिस्से में इस प्रकार से पाँव-पाँव फिरे। जैसा ऊपर कहा गया है। इस भगीरथ प्रयत्न से अस्पृश्यता के दुर्ग की दीवारें टूटने लगी यद्यपि आज भी यह कहना सत्य नही होगा कि अस्पृश्यता उठ गई तथापि इतना कहना सच है कि जैसे एक पौधा जड से हिला दिया जाय—उखाड कर फेंका न जाय, तो भी वह सूखने लगता है, उसका एक-एक पत्ता सूखता जाता है, उसकी टहनियाँ सूखती जाती है, अन्त में वह मर जाता है, वैसे ही अस्पृश्यता की जड हिल गई है, उसके पत्ते और टहनियाँ सूखती जा रही है, अब उसकी जडो में यह शक्ति नही है कि पृथ्वी, आकाश और जल से अपने को कायम रखने के लिए पौष्टिक ले सके और जब पौधा इस पौष्टिक पदार्थ से वचित हो जाता है तो उसे सूखना ही पडता है। उसी तरह, इस कुप्रथा को अब मर जाना ही है, क्योकि यह बुरी प्रथा एक पौधा मात्र ही नही है, बल्कि हजारो वर्ष से पाला-पोसा हुआ एक बहुत बडा वृक्ष है जिसने बहुत दूर तक की गहराई में अपनी जडो को फैला रखा है। इसलिए, हिल जाने के बाद भी, इसके एकबारगी सूख जाने में अभी समय लग रहा है। इसकी वर्तमान अवस्था उस बडे वृक्ष की है जो बडे तूफान में उखडकर गिर जाता है पर गिर जाने के बाद भी उसका कुछ-न-कुछ सम्पर्क पृथ्वी के साथ रह जाने के कारण हरा रहता है, फिर भी उसमें वास्तविक जान नही रह जाती है। उसी तरह, यह वृक्ष गिर गया है, पर अब भी यह नही कहा जा सकता कि यह निर्जीव हो गया है।

महात्माजी इस प्रश्न को एक धार्मिक प्रश्न के रूप में देखते थे। पर साथ ही अस्पृश्य जातियो की आर्थिक अवस्था को भी वह भूले नही थे। वह चाहते थे कि उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधरे। उनमें और कुछ हरिजनो मे इस विषय पर मतभेद था। कुछ हरिजनो का, विशेषकर ऐसे लोगो का जो आधुनिक शिक्षा पाये हुए है और जो केवल आर्थिक तराजू पर ही सब कुछ तौलना जानते है, यह विचार था कि उनकी राजनीतिक और आर्थिक अवस्था यदि सुधार दी जाय, तो समाज में उनका जो उचित स्थान है वह उनको खुद ब-खुद मिल जायगा। इसलिए वे लोग मदिरो और देवस्थानो को खुलवाने के प्रयत्नो को उतना महत्त्व नही देते थे जितना महात्माजी। उनलोगो का विचार था कि मदिरो के बदले हरिजनो के लिए स्कूल खुलवाना, अधिक नौकरियाँ दिलवाना, जमीन दिलवाना और दूसरे प्रकार से उनकी आर्थिक स्थिति सुधारना ज्यादा जरूरी है। किन्तु महात्माजी भी इन विषयो को अपनी आँखो से ओझल नही रखते थे। अस्पृश्यो को समाज में दूसरे हिन्दुओ

की बराबरी का स्थान दिलाना तथा धार्मिक विषयो में उन्हे उन्नत करना भी वह उतना ही आवश्यक समझते थे। इसका कारण यह था कि महात्माजी के विचार में मानवता के नाते किसी भी मनुष्य को अछूत मानना अथवा उसे देवदर्शन का अधिकार न देना, अस्पृश्यो के प्रति और जो अस्पृश्यता मानते हैं उनके लिए भी, पाप है। इसलिए जबतक समाज इस पाप से मुक्त नहीं किया जायगा तबतक समाज की स्थिति भी सुधर नही सकती। हरिजन इस समाज के अग हैं। हरिजन को जितना सुधारना चाहिए, नही सुधारा जा सकता। महात्माजी अपने काम में लगे रहे। जैसे उन्होंने सनातनियो के विरोध की परवाह नही की वैसे ही हरिजनो के विरोध से भी वह अपने विचारो से विचलित नही हुए। अब तो सारा देश यहाँ तक एकमत पहुँच गया है कि इस समय के बने विधान न अस्पृश्यता को एक अपराध या जुर्म करार दिया है और राज्य का यह धर्म बताया है कि वह उसको निर्मूल कर दे।

इसके अलावा, पिछडे हुए लोगो की उन्नति के लिए, उस विशेष मत्री पर यह भार दिया जायगा जो इस विषय पर ध्यान दिया करेगा और उसका यह कर्तव्य होगा कि वह उन नियमो तथा विधियो का पालन करावे, जो अस्पृश्यता दूर करने के लिए बनाई जायँगी। वह सभी पिछडी हुई जातियो की शिक्षा और हरएक दृष्टि से उनकी उन्नति के लिए सदा प्रयत्नशील रहेगा। दस साल के बाद एक कमीशन होगा, जो उनकी और दूसरी पिछडी हुई जातियो की स्थिति की जाँच करके राष्ट्रपति के सामने सभी बातो की रिपोर्ट पेश करेगा। वह रिपोर्ट धारासभा में विचारार्थ रखी जायगी। फिर उन सभी लोगोके लिए जिनके लिए अलग चुनाव-क्षेत्र और धारासभाओ में निश्चित स्थान सुरक्षित रखे गये हैं, नये विधान में वे सब हटा दिये जायँगे। अस्पृश्यवर्ग और आदिम जातियो के लिए अभी दस वर्षों तक स्थान सुरक्षित रखे जायँगे। इस तरह नये विधान में, और लोगो की बराबरी में उनको ला देने के लिए, जहाँ तक विधान और नियम से हो सकता है, प्रयत्न किया गया है। जो भी गवर्नमेंट हो, चाहे जिस-किसी भी दल की हो, उसको वैधानिक नियमो के अनुसार ही काम करना होगा। इसमें सदेह नही कि जो कुछ अस्पृश्यता रह गई है उसके दूर करने में और पिछडी हुई जातियो को दूसरो की बराबरी में पहुँचा देने में ये नियम बडे काम के होगे। पर नये विधान और भविष्य के लिए ही यह कार्यक्रम नही बना है। जो कुछ पिछले कई वर्षों से हो रहा है और जिनके अनु-सार काग्रेसी सरकारें काम करती आ रही हैं उन्ही बातो को नये विधान में एक पूर्ण रूप देने का प्रयत्न किया गया है। जब से महात्माजी ने जोर लगाय

तभी से सभी काग्रेसी, जिनका कही भी इससे कुछ सम्पर्क हुआ है, इसे दूर करने के प्रयत्न में लगे है। फलस्वरूप कई सूबो में, विशेषकर दक्षिण में—जहाँ यह प्रश्न बहुत ही जटिल और उग्र रूप धारण किये हुए था—कानून द्वारा मदिरो और देवस्थानो में हरिजनो का प्रवेश करा दिया गया। इसके लिए कानून भी बन गये। सभी जगहो में उनके लिए विशेष छात्रवृत्ति देकर छात्रालय खोलकर, और दूसरे प्रकार से भी, शिक्षा में प्रोत्साहन दिया जा रहा है। उनको नौकरियाँ भी दी जा रही है—यद्यपि अभी शिक्षा के अभाव के कारण सभी स्थानो के लिए उनमें से योग्य उम्मीदवार नही मिलते और जितनी जगहें उन्हे मिलनी चाहिए थी उतनी अभी नही मिली है। १९३७ में ही, जब काग्रेस पहले-पहल कई सूबो में मत्रिमडल बना सकी, हरिजन-मत्री मुकर्रर हुए। वे इस समय भी प्राय सभी सूबो में है। केन्द्र में तो दो ऐसे मत्री है। इस प्रकार बहुत तेजी के साथ वायुमडल बन रहा है। जो हजारो वर्षों तक रूढि बनी रही है वह अब आहिस्ता-आहिस्ता टूटती जा रही है। इसमें सदेह नही कि यह कुप्रथा शीघ्र ही नेस्तनाबूद हो जायगी।

पचीसवाँ अध्याय

जब १९३० में महात्माजी साबरमती-आश्रम से, नमक-कानून तोडने के के निमित्त सत्याग्रह आरम्भ करने के लिए, डाडी-यात्रा पर निकले थे, तब उन्होंने कहा था कि वह आश्रम में स्वराज्य लेकर ही लौटेंगे। दृढ निश्चय के साथ उन्होने यह कहा था। इसका एक प्रमाण हमको तब मिला जब इसका प्रयोग हरिजनो के लिए अलग चुनाव-क्षेत्र-सम्बन्धी प्रधान मत्री मैकडोनल के साम्प्रदायिक निर्णय के बदलवाने में उन्होने किया। उस समय किसी ने उनकी इस बात पर विशेष ध्यान नही दिया था, और न किसी न यह सोचा था कि उस यात्रा में अगर वह स्वराज्य नही प्राप्त कर सके, तो उसका फल यह होगा कि वह उस आश्रम को—जिसे उन्होंने कितने परिश्रम और आशाओ के साथ बनाया था और जहाँ उन्होने अपने आदर्शों के अनुरूप सेवक तैयार करने का प्रयत्न किया था—एकबारगी हमेशा के लिए छोड ही देंगे। पर महात्माजी जब इस तरह की बातें कहते थे तो वह बिना सोचे-विचारे नही कहते थे। एक बार कोई बात कह देने पर उसे वह भूलते नही थे—उसको पूरा करके ही छोडते थे। इसलिए, जब वह १९३१ के आरम्भ में जेल से निकले तो बराबर इधर-उधर सफर करते रहे। फिर गोलमेज-कान्फ्रेन्स से लौटने के बाद जेल में बन्द रखे गये। जेल से निकल कर वह हरिजन-सेवा और भूकम्प-पीडित बिहार की सहायता के लिए सफर करते रहे। बिहार में कुछ दिनो तक ठहरे भी, साबरमती नही गये। साबर-मती-आश्रम को एक शाखा वर्धा में कई वर्षों से, श्रीविनोबा जी की देख-रेख में, चल रही थी। महात्माजी भी हर साल वहाँ वर्ष में कुछ दिनो के लए जाकर ठहरा करते थे। हरिजन-यात्रा समाप्त होने के बाद उन्होने वर्धा में जाकर रहने का निश्चय किया। कुछ दिनो तक वर्धा मे सेठ जमनालाल बजाज के दिये हुए बगीचे में रहे। वही पर ग्राम-उद्योग-सघ

की स्थापना की और चर्खा-संघ के काम का तरीका बहुत करके बदल दिया। १९३४ से १९४२ तक वर्धा में या वहाँ से चार मील की दूरी पर सेगाँव में रहकर उन्होंने रचनात्मक कार्य का फैलाव बहुत बढ़ाया। सेगाँव एक छोटा-सा गाँव है, जिसके हिस्सेदार मालिक सेठ जमनालालजी ही थे। सेगाँव का ही नाम सेवाग्राम पड गया, जो आज ससार में विख्यात है। यह आठ वर्ष का समय विशेषकर रचनात्मक काम में ही लगाया गया। उस कार्यक्रम में एक-एक विषय को लेकर उन्होंने देश का मार्ग-निर्देश किया।

हरिजन सेवक-सघ का जिक्र ऊपर आ चुका है। उसके मन्त्री श्री ठक्कर बापा और प्रधान सेठ घनश्याम दास बिरला थे। उसका मुख्य दफ्तर दिल्ली में कायम हुआ। आज भी वहीं है। पर सारे काम की प्रेरणा महात्माजी से उसे मिलती रही। महात्माजी ने अपना एक नियम बना लिया था कि वह जहाँ-कही जाते और रहते, हरिजनो के लिए पैसे जमा करते। इसके लिए उन्होंने कई तरीके निकाल लिये। जब कभी वह सफर में जाते तो उनके दर्शनो के लिए जो भीड आती उससे हाथ बढ़ाकर पैसे माँगते। रेल के स्टेशनो पर जहाँ-कही गाडी ठहरती, लोगो की भीड लग ही जाती, बस महात्माजी का हाथ डब्बे के बाहर निकल आता, लोग पैसे देने लगते। सध्या के समय बराबर सार्वजनिक प्रार्थना किया करते। उसमें भी बडी भीड हुआ करती। तो उन अवसरो पर भी वह पैसे जमा करते। कुछ दिनो से हस्ताक्षर लेने की चाल चल गई। बहुत लोग बडे लोगों से हस्ताक्षर लेना चाहते। महात्माजी ने एक नियम बना लिया कि वह पाँच रुपये लिये बगैर किसी को हस्ताक्षर नही देंगे। इससे अब हस्ताक्षर की माँग तो कम हो गई, पर उससे कुछ पैसे तो आ ही जाते। उनको यह भी नही कहना पडता कि वह कुछ ही लोगो को हस्ताक्षर देंगे, सबको नहीं। जो कोई फीस दाखिल कर देता उसको हस्ताक्षर मिल जाता। जो नही करता, वह चाहे कितना ही बडा आदमी क्यों न हो, हस्ताक्षर उसको नही मिलता। धनी लोग पाँच रुपये के बदले बहुत अधिक देकर हस्ताक्षर लेते। इन तरीको से वह वर्ष-भर में एक बडी अच्छी रकम जमा कर लेते, जो हरिजन-सेवक-सघ को दे दिया करते। 'हरिजन' नामक साप्ताहिक पत्र अङ्गरेजी में और थोडा-बहुत नाम बदलकर हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला तथा उर्दू में भी बराबर निकलता रहा। जैसा उनका तरीका था, वह 'हरिजन' में स्वय बहुत लिखा करते थे। जो कुछ दूसरे लिखते थे वह भी, बिना अच्छी तरह शोधे, नही छापा जाता था।

खादी के काम में एक नया दृष्टिकोण वह वर्धा में बैठकर लाये। जब उन्होंने खोज करके चरखा निकलवाया और उसको शुरू में सावरमती-आश्रम में चलवाना शुरू किया, तो देश की स्थिति यह थी कि बहुत जगहों में चरखे चलते थे, जिनके द्वारा तैयार हुए सूतों से बहुत प्रकार के कपड़े बना करते थे। बहुत जगहों में तो मोटे ही सूत निकला करते थे, जिनसे मोटे कपड़े ही तैयार हुआ करते थे। पजाब के बहुत घरों में चरखे चला करते थे, पर सूत भी बहुत करके खेस-जैसी चीजो के बनाने में ही खर्च होता था। राजपूताना में मोटा कपडा ही ज्यादा करके बनता था। पर कहीं-कहीं महीन सूत भी बनता था, जैसे आध्र में। वहाँ का महीन सूत का कपडा बहुत ही प्रसिद्ध था। इसी तरह, विहार में एक विशेष प्रकार की रूई हुआ करती थी, जिसका रग बहुत ही सुन्दर होता था। उससे बहुत महीन सूत कातकर बहुत ही मुलायम और खुशरग कपडा बना करता था, जिसे 'कोकटी' कहते हैं। नैपाल-राज्य में कोकटी का बडा आदर था। विशेष करके नैपाल-राज्य से मिले हुए दरभगा-जिले में कोकटी बहुत बना करती थी। नैपाल के प्रोत्साहन से ही यह कपडा चलता रहा। पर यह सब होते हुए भी यह कहना अत्युक्ति नही कि चरखा प्राय लुप्त हो चुका था, दिन-दिन लुप्त होता जा रहा था। करघों की हालत इतनी गिरी नही थी—यद्यपि करघे भी कम होते जा रहे थे। विहार में, गवर्नमेंट ने, १९२१ की मनुष्य-गणना के साथ, करघे का भी हिसाब लगवाया था। पता चला था कि विहार-सूबे में प्राय पाँच करोड का कपडा करघो पर बनता है! पर अधिक करके सूत मिल का ही हुआ करता था। उसी तरह और सूबो में भी, करघो पर बहुत कपडा बना करता था। अनुमान है कि उस समय जितना कपडा देश में तैयार होता था उसका एक-चौथाई से एक-तिहाई तक हाथ के करघों पर ही तैयार हुआ करता था। महात्माजी ने देखा कि चरखे को अगर प्रोत्साहन नही दिया जाता है तो एक समय आयेगा जब करघे भी बन्द हो जायेंगे, क्योकि कारखानो को सूत बनाकर साथ ही कपडे बुन लेने में अधिक लाभ था, केवल सूत की कताई में उतना फायदा नही था। इसलिए वे अवश्य केवल सूत की कताई कम कर देंगे और कताई-बुनाई दोनो करने लगेंगे। इसका फल यह होगा कि हाथ के करघों के लिए मिलो से सूत मिलना कम होता जायगा और अन्त में बन्द हो जायगा। इसलिए उन्होने सोच लिया कि करघों को भी अगर जीवित रखना है तो फिर से चरखा चलाना जरूरी है। उस वक्त तक जहाँ-तहाँ जो स्वदेशी को प्रोत्साहन देनेवाले लोग थे वे करघे पर ही अधिक जोर दिया करते थे।

जब से चरखे का काम शुरू किया गया, काम करनेवालो का प्रयत्न यह रहा कि जितना अच्छा और महीन कपडा बनाया जा सके, बनाया जाय। तय किया गया कि जहाँ जो उत्पत्ति-केन्द्र खोले जायँ, इस बात का प्रयत्न किया जाय कि कम खर्च में वढिया-से-वढिया कपडे तैयार किये जायँ। पर दिक्कत यह थी कि वहाँ चरखे तो चलते, पर रूई का अभाव था। इसलिए वैसी रूई यहाँ और भी दूर से लाई जाकर सूत कातनेवाली कत्तिनो को दी जाती। कही-कही वह रूई वहाँ खरीद ली जाती और सूत का दाम देकर वेची जाती थी। कही-कही सूत और रूई का वदला होता, जिसमें सूत के डेढ-गुने पौने-दो-गुने के हिसाब से सूत की बारीकी पर रूई दी जाती। जो अधिक रूई मिलती वह उनको मजदूरी में दी जाती। मै खुद कई उत्पत्ति केन्द्र जाकर देखा करता और स्वय रूई-सूत तौला करता। गरीब कत्तिनो की भीड लगी रहती। वे दूर-दूर से आकर सूत बेच जाया करती। उससे जो चन्द पैसे मिल जाते वही उनका सहारा रहता। यदि खादी-भडार उनका सूत नही खरीदते तो कई दूसरे भी खरीदनेवाले होते। कही-कही अधिक करघे चला करते, बुनकर लोग मिल और चरखे के सूत मिलाकर बुना करते। ऐसी जगह कुछ सूत बिक जाया करते। यहाँ भी जब चरखा-सघ ने काम शुरू किया तो कत्तिनो का काम वहुत बढ गया, सूत अधिक वनने और विकने लगा। अभी यह विचार नही था कि सूत कातने के लिए जो मजदूरी दी जाती है उससे कत्तिनो को अभी क्या वचता है और उनका पूरा पारिश्रमिक होता है कि नही। यह सभी समझते थे। हम उनको यह भी न दें तो विचारी की यह आमदनी भी वन्द हो जाय। हम जो यह देते है तो उनके प्रति यह हमारी वडी मेहरवानी है। यह भी सोचना पडता था कि हम जो खादी तैयार करते है वह सव निकल जाय। इतनी कम मजदूरी देने पर जो खादी वनती थी उसकी कीमत मिल के कपडे से वहुत ज्यादा होती और खादी वेचने का एक वहुत वडा सवाल हमारे सामने रहता। एक तरफ तो हम खादी को सुन्दर और शृङ्गारिक वनाकर लोगो को लुभाते थे, दूसरी तरफ हमारी कोशिश यह रहती थी कि हम उसको मिल के कपडे की कीमत में ला दें। काम तो कठिन था, पर इसमें सफलता वहुत हद तक मिली, क्योकि कत्तिनो की जैसी उन्नति होती गई, हम वढ़िया खादी तैयार करते और कीमत भी घटाते गये। मोटी खादी की कीमत तो प्राय मिल के कपडे की कीमत मे आ गई थी, पर महीन खादी की कीमत में अभी वहुत फर्क था।

मै देखता था कि ऐसे उद्योग से वहुत गरीवो को कुछ-न-कुछ रोजी मिलने लगी है—यद्यपि वह थोड़ी ही थी। इसलिए खादी का प्रचार और

प्रसार बढाना हम अत्यन्त आवश्यक समझते थे। उस समय ऐसा मालूम देता था कि हम अगर विक्री बढाने का प्रबन्ध कर सके तो हम जितनी चाहें उतनी खादी उत्पन्न कर सकते है। पर हाँ, बारीक और महीन खादी की उत्पत्ति सीमित होगी, क्योकि महीन सूत कातनेवाली कत्तिनें कम थी और उनकी प्रगति भी ज्यादा नही थी। फिर हमें तो लोगो को यह बताना था कि यद्यपि गज-पीछे खादी में अधिक पैसे लगाने पडते थे, तो भी कई दृष्टियो से खादी सस्ती थी। हमारा दावा था कि खादी अधिक टिकाऊ होती है और यह दावा शास्त्रीय रीति से साबित किया जा सकता है। एक बात यह थी कि जहाँ सिर्फ रूई पैदा होती थी वही पर यदि उसका कपडा बन जाता है, तो खेत से रूई निकालने के थोडे ही दिनो के अन्दर कपडा तैयार हो सकता है। पर जो कपडा मिल में तैयार होता है उसकी रूई कम-से-कम साल-डेढ-साल पहले खेत से निकाली गई होती है। समय का असर टिकाऊपन पर पडता ही है। यह समय एक और प्रकार से खादी में और भी कम लगता था, क्योकि तैयार होने पर कपडा जहाँ बनता था वही आसपास में जल्द-से-जल्द बिक जाता था, और मिल का कपडा तैयार होने के बाद भी कारखाने के अन्दर से दूकानो में जाकर पड़ा रह जाता। दूसरा कारण भी अधिक टिकाऊपन के लिए था। जहाँ रूई पैदा होती थी वहाँ खेत से निकाली जाकर घर में ओटनी पर ओटी और धुनकी से धुनी जाती जिससे उसका सूत तैयार हो सकता था। इस तरह उसकी उटाई और धुनाई में तथा उसके रेशो में उतना जोर और उतनी खीचतान नही पडती जितनी मिल में पडती है। इसमें शक नही कि मिल की उटाई में भी रूई काफी खींचातान में पड जाती है। फिर ओटे जाने के बाद वह गाँठो में इतना कसकर बाँधी जाती कि एक ईंट की तरह हो जाती है, फिर उसे धुनने के वक्त बिलगाना पडता है। उस क्रिया से उसके रेशे बहुत कमजोर हो जाते है। खादी में स्थानीय रूई इन क्रियाओ से पहले बच जाती है, इसलिए उसके रेशे की ताकत बनी रहती है। फिर धुनाई का तरीका भी मिल का ऐसा होता है कि जिसमें रेशे पर बहुत काफी जोर पडता है। रेशे कई बार खीच-तानकर दुरुस्त किये जाते है। मिल की बनी प्यूनी सूत कातने में तो बहुत अच्छी है, क्योकि उसके सब रेशे सीधे कर दिये जाते है, पर इसमें शक नही कि ऐसा करने में उनकी दुर्गति हो जाती है। यही कारण है कि जिस रूई से मिल में बीस नम्बर तक सूत बनता है उसी रूई से चरखे पर आसानी से चालीस-पचास नम्बर तक का सूत बन सकता है। सूत की कताई में भी मिल में रेशो को ज्यादा खीचतान बर्दाश्त करना पडता है।

इन सब कारणों से मिल का सूत ताकत में, हाथ के सूत का मुकाबला नही कर सकता है। पर इसकी शर्त यह है कि जितने प्रकार की क्रियाएँ होती है वे ठीक तरह से की जायें। जैसे—ठीक तरह से उटाई-कताई नही होगी तो सूत अच्छा नही हो सकता। अगर ठीक तरह से सूत नही काता गया, उसमें जितने परिमाण में बल देना चाहिए उतना नही दिया गया, तो सूत कमजोर होगा।

मिल के और हाथ के काम में एक बहुत बडा फर्क यह पडता है कि मिल के एक प्रकार की धुनाई और कताई करने पर अगर कुजी लगती गई तो ठीक वैसी ही बुनाई और कताई होगी, उसमें बहुत फर्क नही पडेगा। अगर पुर्जे में कही कोई ऐब हो तो वह पुर्जा हमेशा अपना ऐब सूत में दिखाता जायगा। सूत के कातने में अगर पुर्जे में कोई ऐब है तो हर दो गज सूत पर उस पुर्जे का ऐब सूत में देखने में आयेगा या सूत ऐसे स्थान पर पहुं-चेगा तो पुर्जे का असर उस पर पडेगा ही। इसलिए कल के काम में एक प्रकार की समानता होती है, चाहे वह गुना में हो या सूत में। हाथ के कामो में यह बात नही होती है, मनोवृत्ति तथा अनेक दूसरी बातो का असर उसके काम पर पडता ही रहता है, क्योकि एक तो मनुष्य-कल की तरह काम नही कर सकता और दूसरे उसकी शक्ति इसलिए हाथ के काम में, करनेवाले का व्यक्तित्व, विशेष रूप से, व्यक्त होता रहता है। जबतक कातनेवाला पूरा दक्ष नही हो जाता, सूत समान नही होता और न उसमें समान शक्ति होती है। पर कल के सूत मे एक विशिष्ट स्थान पर जो विशेष कमजोरी आयेगी, वह सहसा देखने में नही आती है, क्योकि इसकी कमजोरी अगर होती है तो नियमित रूप से ठीक उतनी दूर पर नही होती जितनी मिल में।

अगर खादी का ठीक प्रवन्ध किया जाय, जैसा होना चाहिए, तो इसमें सदेह नही कि वह बाद में मिल के मुकाबले कम खर्च में तैयार कराई जा सकती है। खादी का असली रूप में सिद्धात यह है कि जहाँ किसान अपने खेत में कपास पैदा करे वही पर वह उसके घर में ओटी और धुनी जाय तथा उसका सूत घर में ही तैयार कर लिया जाय और वह सूत भी गाँव में ही बुन लिया जाय। इस तरह तैयार की हुई खादी घर के लोग इस्तेमाल करें। इससे एक तो जल्द-से-जल्द रूई का कपडा तैयार हो सकता है, इसलिए समय बीतने की वजह से जो कमजोरी आती जाती है वह बहुत हद तक बचाई जा सकती है— दूसरे, कारखाने की यह हालत है कि कपास एक गाँव में पैदा की जाती है, फिर लादकर कुछ दूर के किसी शहर में ढोकर धुनाई के कारखाने में पहुँचाई जाती है, वहाँ ओटकर वह गाँठो में कसकर बाँधी

जाती है, वे गाँठें भी जहाँ-कहीं घिरनी कल है वहाँ पहुँचाई जाती हैं। हिन्दुस्तान में ही कितने सौ मीलों की दूरी से रूई लाकर घिरनी-कल में सूत बनाते हैं। बहुत करके तो विदेशों से भी रूई लानी पड़ती है। दूसरे देशों में, जैसे इंगलैंड में, तो सारी रूई दूसरे देश से ही मँगानी पड़ती है, क्योंकि वहाँ रूई नहीं होती है। पर उससे जो कपड़ा तैयार होता है वह दुनिया के सब देशों में, जहाँ उसकी खपत होती है और जिस कारखाने से उसका सम्पर्क होता है, पहुँचाया जाता है। उस देश के गाँव-गाँव तक में वह बेचा जाता है। इस तरह, खेत से उटाई के कारखाने तक और उटाई के कारखाने से घिरनी-कल तक तथा घिरनी-कल से खरीदार तक कपास, रूई और कपड़ा ढोने में जो इतना खर्च पड़ता है वह खादी में एकबारगी बच जाता है। वह कुछ छोटी रकम नहीं होती। कपड़े की कीमत का एक बड़ा अंश ढुलाई का खर्च होता है। इसके अलावा भी हर मौके पर बीच के व्यापारी अपना मुनाफा रखते हैं, जो कपड़े की कीमत में ही जोड़ा जाता है। ऊपर बताया गया है कि मिल के कपड़े के मुकाबले खादी अधिक मजबूत बनाई जा सकती है। ये सब बातें अगर ध्यान में रखी जायँ और गाँव के लोग गाँव की रूई को गाँव में ही धुन कात-बुनकर कपड़ा तैयार कर लें, तो इसमें कोई शक नहीं कि खादी अगर किफायत नहीं तो मिल के मुकाबले कम कीमत में ही गाँववालों को मिल सकती है। पर हम आलसी हो गये हैं। इसलिए बनी-बनाई चीज पैसे देकर लेना अधिक पसन्द करते हैं। इसीलिए खादी महँगी मालूम होती है।

महात्मा गाँधी इन बातों पर जेल में बहुत विचार करते रहे। साथ ही उनके सामने उस समय यह भी सवाल था कि कत्तिनों को जो मजदूरी मिलती है वह क्या इतनी कम होती है कि उससे उनका गुजारा नहीं चल सकता? और, यद्यपि 'जहाँ कुछ न हो वहाँ थोड़ा भी तो हो' की नीति के अनुसार उनको जो कुछ भी मिल जाता है वह उनको देना एक प्रकार की मेहरबानी है, तथापि खादी पहनने वाले को यह उचित नहीं है कि वह ऐसा कुछ करे जिससे सूत कातनेवाली कत्तिनों से अपना काम निकाले। इसलिए, उन्होंने वर्धा में खादी के सम्बन्ध में नई नीति निकाली। वह यह थी कि कत्तिनों को इतनी मजदूरी मिलनी ही चाहिए कि वे उससे अपना गुजर कर सकें।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कत्तिनों की मजदूरी बढ़ा देने से खादी की कीमत बहुत बढ़ जाती थी। कम मजदूरी देकर भी खादी की बिक्री में जितनी दिक्कत थी वह अधिक दाम बढ़ाने से और बढ़ जाती थी। हममें से

बहुतेरो का विचार था कि इस प्रकार जो खादी कम हो चली है वह और कम होती जायगी तथा खादी की बिक्री भी घट जायगी। गाधीजी उतनी दूर तक समझौता करने के लिए तैयार थे कि हम अगर उतनी मजदूरी नही दे सकते थे तो जो उस समय मजदूरी देते थे उससे कई-गुना मजदूरी बढा देनी चाहिए। मजदूरी की दर इस तरह लगाई जाय कि जिससे आध घटे काम करके कोई भी कत्तिन अगर औसत दर्जे का सूत कात सकती है और उसकी औसत प्रगति तीन सौ गज घटे में है तो उससे वह तीन आने मजदूरी पा सकेगी। बहुत छान-बीन के बाद, और कुछ दिनो तक श्री विनोबा भावे के प्रयोग के बाद, यह निश्चय किया गया कि जिसमें और कार्यकर्त्ताओ को सूत खरीदने में आसानी हो और वे कत्तिनो का पता लगा सकें कि उन्हे ठीक मजदूरी दी जा रही है या नहीं, इसकी एक तालिका तैयार की जाय कि यह अमुक नम्बर का सूत है जिसके लिए लच्छी-पीछे अमुक मजदूरी दी जायगी। जैसा सोचा गया था—इससे खादी की कीमत बहुत बढ़ गई। साथ ही, यह भी मानना पडेगा कि खादी की बिक्री कम नही हुई, क्योकि बहुत करके जहाँ उत्पत्ति की जाती थी वहाँ खादी अधिक बिकने लगी और एक नया वर्ग खादी पहननेवालो का उत्पन्न हो गया। अभीतक जो कत्तिन सूत कातती थी अथवा जो बुनकर उसे बुनते थे वे अपने हाथ के कते हुए सूत से अपने हाथ का बुना कपडा खुद भी बहुत कम पहना करते थे। खादी बुननेवाले खुद खादी नही पहनते थ, दूसरे लोग ही उसका उपयोग करते थे। अब यह निश्चय किया गया कि सूत कातनेवाले और बुननेवाले भी खादी पहना करें। अधिक मजदूरी की एक शर्त यह भी थी कि उसमें से एक अश काट लिया जायगा जिसके बदले में उसे पहनने के लिए खादी दी जायगी जिसको उसे स्वय पहनना ही पडेगा। इस तरह, मजदूरी का एक अश प्रति सप्ताह अथवा एक पखवारे में काट कर कत्तिनो के नाम पर जमा रखा जाता था और जब उनको जरूरत होती थी तो उनको कपडा दे दिया जाता था। इससे उनको एक दूसरा लाभ यह होता कि सब कत्तिनो के नाम पर अलग हिसाब रखा जाने लगा और उसके द्वारा प्रत्येक कत्तिन के साथ चरखा-सघ का प्रमाणित सम्बन्ध हो गया। मजदूरी लगाने के वक्त उसके हर लच्छी-सूत की जाँच भी होती और सूत की लच्छी के हिसाब से मजदूरी मिलने के कारण उनको सूत सुधारने में काफी प्रोत्साहन मिला। इसका नतीजा यह हुआ कि दूसरो को जो खादी मिलती वह पहले के मुकाबले बेहतर होती। यद्यपि लोगो को दाम ज्यादा देना पडता तथापि उतना खलता नही। खादी की माँग काफी बढती गई। जो डर था कि बेकार की दिक्कत बढ जायगी वह बहुत हद तक निराधार

साबित हुआ। माँग वढने के और कारण हो सकते है—दूसरे लोगो में अधिक जागृति इत्यादि। पर इसमें सन्देह नही कि उस नीति से खादी की उन्नति हुई।

इसका एक दूसरा नतीजा यह हुआ कि अप्रमाणित खादी वहुत बिकने लगी। चरखा-सघ स्वय अपने केन्द्रो में खादी तैयार कराया करता और अपनी दूकानो में स्थान-स्थान पर बेचा करता था। इसके अलावा वह वहुतेरे व्यापारियो को, जो शुद्ध खादी वनवाते थे, प्रमाणपत्र भी दिया करता था। उनकी तैयार की हुई खादी भी वैसी ही शुद्ध समझी जाती थी जैसी चरखा-सघ की। इस तरह, अपनी खादी में और चरखा-सघ में इस तरह की प्रमाणित खादी उत्पन्न करने वालो में, सस्ती-से-सस्ती और अच्छी-से अच्छी खादी तैयार करने की एक प्रकार से होड-सी लगी रहती थी। अभी जो चरखा-सघ ने मजदूरी थी वढ़ा दी थी उसमे ऐसे खादी-उत्पादक भी, जो पुरानी मजदूरी पर ही सूत खरीदते थे, वहुत मुनाफा करने लगे। इसलिए प्रमाणित खादी वही समझी जाने लगी जो नई नीति के अनुसार काफी मजदूरी देकर तैयार कराई जाती। वहुतेरे उत्पादको ने नई रीति मान ली। चरखा-सघ ने, अधिक मजदूरी की शर्त मनवाकर और उसकी देख-भाल का प्रवन्ध करके, उनको प्रमाणपत्र दे दिया। पर वहुतेरे ऐसे भी निकले जिन्होंने प्रमाण-पत्र नही लिया। वे पुराने ढग से मजदूरी की पुरानी दर पर ही काम कराते रहे। ऐसे लोगों को, वहुतेरे काग्रेसी लोग भी—जिन्होंने नई नीति को पसन्द नही किया, प्रोत्साहन देते रहे। इससे वाजार में खुले-आम प्रमाणित और अप्रमाणित खादी विकने लगी। अप्रमाणित खादी वेचनेवाले और तैयार करनेवाले काफी मुनाफा करने लगे, क्योकि उनकी खादी कम खर्च में तैयार होती और उसे वे काफी मुनाफा करने पर भी प्रमाणित खादी से सस्ते दाम में वेच सकते। जितना फर्क मजदूरी में था उसके अनुपात में खादी की विक्री के दरम्यान कम फर्क था। वह मुनाफा पूरे रूप में अप्रमाणित खादी वेचनेवालो को मिल जाता। इस प्रकार, अप्रमाणित खादी वहुत विकने लगी। चरखा-सघ सव सूत खरीद नही सकता था; क्योकि उसके पास इसके लिए काफी साधन नही था। इसलिए कम मजदूरी देकर भी दूसरो को काफी सूत मिल जाता। इसकी रोक थाम करने का प्रयत्न चरखा-सघ ने किया। काग्रेस-कार्यकारिणी ने भी काग्रेस-जनो को आदेश दिया कि वे प्रमाणित खादी ही व्यवहार में लावें और अप्रमाणित खादी को खादी न समझें। वहुतेरो ने इस वात को नहीं माना! अतः अप्रमाणित खादी खूब चलती ही रही।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, नई नीति से खादी में सुधार बहुत हुआ। चरखा सघ सूत इत्यादि में जितना सुधार करना चाहता था, कर सका। वह गाँव में खादी अधिक चलाने लगा। इसका दूसरा कारण यह भी हुआ कि महात्माजी ने यह निश्चय किया कि जहाँ तक हो सके, खादी जहाँ पैदा की जाय वही उसकी खपत होनी चाहिए। कुछ दिनो के बाद एक सूबे से दूसरे सूबे में खादी का आना-जाना बन्द कर दिया गया। विशेष प्रकार की खादी इधर-उधर बाहर भेजने की इजाजत मिलती, पर मामूली तौर से खादी सूबे के बाहर नही भेजी जा सकती। ऊपर बताया जा चुका है कि कपडे को एक स्थान से दूसरे स्थान में ढोकर ले जाने में काफी खर्च पडता है। वह खर्च यथासाध्य खादी में बचाने का प्रयत्न किया गया।

खादी की नीति में बडा परिवर्तन हो गया। उत्पत्ति और बिक्री पर जितना जोर दिया जाता था, आहिस्ता-आहिस्ता अब दिया जाने लगा। इससे खादी पहले के मुकाबले अधिक बिकती, पर अभी जो स्वावलम्बन पर अधिक ध्यान जाने लगा उस स्वावलम्बन का अर्थ यह है कि व्यक्ति और समाज दोनो अपने लिए खादी को अपने स्थान पर ही तैयार तथा इस्तेमाल करें। यह नीति एकबारगी नई नही थी, क्योकि पहले भी कई जगहो में इसका प्रयोग किया गया था। इसमें कही-कही कुछ सफलता भी मिली थी। कुछ जगहो में स्वावलम्बन के खयाल से जनता के लिए वही काफी खादी तैयार कर दी जाती, जिससे वहाँ के लोगो को न बाहर से कपडा मँगाना पडता और न वहाँ की अपनी खादी बाहर भेजनी पडती। यह प्रयोग बहुत बडे दायरे में नही किया गया था, पर सफल हो गया था—यद्यपि इसका नतीजा स्थायी नही निकला, फिर भी जबतक वैसे स्थान पर कार्य-कर्त्ता काम करते और लोगो का उत्साह बढ़ाते रहे तबतक काम होता रहा। उनके हट जाने पर लोगों ने उतनी खादी बनाना भी छोड दिया, बस बाहर से फिर कपडा वहाँ आने लग गया। महात्माजी ने सोचा कि जबतक लोगो में खादी के प्रति इतना उत्साह और प्रेम नही पैदा होगा कि उसे वे कभी छोडने को तैयार न हो तबतक यह काम उतना व्यापक नही हो सकता जितना वह चाहते थे। इसके लिए खादी-सम्बन्धी ज्ञान और खादी बनाने के साधन—दोनो की जरूरत थी। चरखा सघ ने अब इस पर अधिकाधिक ध्यान दिया। उसे इतनी प्रेरणा मिली कि वह जहाँ काम करे वहाँ लोगो को खादी का शास्त्रीय ज्ञान बतलावे और खादी-सम्बन्धी यन्त्रो में सुधार भी करावे। साथ-ही-साथ ऐसे यन्त्रो से काम लिया जाता कि लोग अच्छी मजबूत खादी बनाना सीखें।

अनुभव के बाद दो बाते विशेष महत्त्व की निकली। एक यह कि रूई ओटने से उसमें कुछ कमजोरी हो जाती है, इसलिए बिनौले निकाल देने का एक ऐसा तरीका निकाला गया, जो पहले से कही-कही प्रचलित था, पर सब जगहो में नही। इसके लिए यन्त्र की आवश्यकता नही होती, केवल छोटी-सी एक पटरी और लोहे या लकडी की एक छोटी सी उँगली के समान मोटी सीक काफी थी। धुनाई से भी रेशो में कमजोरी आती ही है, इसलिए धुनाई के बदले हाथ से की गई तुनाई पर अधिक जोर दिया गया। इन प्रक्रियाओ से रेशे की शक्ति कम-से-कम बिखरती। इसका नतीजा कपडे पर अवश्य-भावी था कि कपडा अधिक मजबूत निकले। खादी की बुनाई का भी प्रश्न जटिल था। सब कुछ होने के बाद भी हाथ के कते सूत में उतनी मजबूती और समानता नही आती थी जितनी मिल के सूत में। इसलिए बुनकर उतनी तेजी के साथ हाथ-कते सूत का कपडा नही बुन सकते थे जितनी तेजी से मिल के सूत का। इसका नतीजा यह होता था कि खादी बुनने के लिए वे अधिक मजदूरी लेते थे। खादी का दाम इस कारण से भी अधिक होता था। महात्मा जी ने सोचा कि सूत में सुधार होना चाहिए जिससे बुनकरो को सुविधा हो। तुनाई इत्यादि से कुछ सुधार तो हुआ, पर दो सूतो को एक साथ बटकर बुनाई के योग्य बनाने की रीति बहुत उपयोगी साबित हुई। इसलिए इस पर भी जोर दिया जाने लगा कि दो सूत एक साथ बटकर दिया जाया करे। पर यह विशेष प्रचलित नही हुआ, क्योंकि एक तो इसमें एक अजीब प्रक्रिया काम में लाई जाती है और दूसरे फी गज कपडे के लिए अधिक सूत भी लगाना पडता है। पर इसमें सन्देह नही कि कपडे की मजबूती मे काफी फर्क पड जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया में सुधार का प्रयत्न बराबर होता रहा है, पर इधर अब ज्यादा जोर उत्पत्ति बढाने पर नही रहा। इसलिए, लडाई के दिनो में, और उसके बाद भी, जब देश में कपडे की बहुत कमी रही, और जब इसका पूरा मौका भी था कि खादी की उत्पत्ति और बिक्री बहुत बढाई जा सकती थी, तब वह नही बढी और इस समय की जो एक बहुत बडी कमी थी वह भी पूरी नही की जा सकी।

स्वावलम्बन का काम तो कठिन है ही। इससे खादी की प्रगति देखने में ही नहीं आती। इसलिए बहुतों के मत में खादी की नीति समय के अनुकूल नही रही है। उसको जितनी प्रगति हो सकती थी, लोगों को उससे जितना लाभ पहुँचाया जा सकता था, कपडे की कमी जिस हद तक दूर की जा सकती थी, इनमें से एक काम भी पूरा नहीं हुआ। कुछ लोग यह मानते है कि इस प्रकार की चरखा-संघ की नीति से ही खादी को बहुत नुकसान

पहुँचा। लडाई के जमाने में, और उसके बाद भी, देश की मिलें लडाई के सामान तैयार करने में लगी थी। इसलिए, जन-साधारण के इस्तेमाल के लिए, मामूली कपडा नही बनता था या कम बनता था। विदेशी कपडा आना बन्द हो गया। इससे देश में कपडे की बडी कमी हो गई। इस मौके पर जितनी खादी बन सकती उसे देश खरीद लेता। यही मौका था जब खादी की उत्पत्ति बहुत बढाई जा सकती थी। कपडे का दाम इतना बढ गया था कि मिल के कपडे के मुकाबले चरखा सघ की खादी सस्ती पडती थी। जो कभी खादी नही पहन सकता था वह भी किफायत के कारण खादी लेना चाहता था। पर उसको खादी नही मिल पाती थी। कही-कही चरखा-सघ को यह भी सोचना और करना पडा कि उसके जो पुराने ग्राहक थे—अर्थात् जो आदतन खादीधारी थे—उनके ही हाथों खादी बेची जाय। यह खेद की बात है कि इस मौके से खादी की उत्पत्ति बढाने का लाभ नही उठाया गया और कपडे की कमी के कारण विदेशो से कपडा लाने की नीति गवर्नमेंट को माननी पडी।

स्वराज्य की सारी लडाई के जमाने में विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार हमारे आन्दोलन का एक विशेष महत्त्वपूर्ण अग रहा है। इस सम्बन्ध में अन्य नेताओ के साथ महात्माजी का सिद्धात सम्बन्धी मतभेद भी रहा करता था। कुछ लोग केवल विदेशी वस्त्र का ही बहिष्कार नही चाहते थे, बल्कि उनकी नीति यह रहा करती थी कि सभी ब्रिटिश वस्तुओ का बहिष्कार करना चाहिए, क्योकि हमारी लडाई ब्रिटिश के साथ थी, और चूंकि ब्रिटिश अपनी तिजारत पर ही बहुत कुछ भरोसा करते हैं तथा उनका माल हिन्दुस्तान में ही बहुत खपता है, इसलिए उनके माल का बहिष्कार करके ही हम उनपर दबाव डाल सकते हैं, और इसी उपाय से हम स्वराज्य-सम्बन्धी अपनी मांग उनसे मनवा सकेंगे। गाधीजी इस प्रकार की बहिष्कार-नीति में हिंसा की कुछ भावना देखते थे, इसलिए वह सभी ब्रिटिशों मालो का बहिष्कार पसन्द नहीं करते थे। कपडे के सम्बन्ध में उनका यह विचार था कि ब्रिटिश लोगो ने अपने राजसत्तात्मक अधिकार का दुरुपयोग करके भारत के कपडे के उद्योग-धन्धो को नष्ट किया है, इसलिए ऐसे ही उद्योगो को पुनर्जीवित करना चाहिए, क्योकि यह एक प्रकार से व्यापक और सार्वजनिक उद्योग था, इसके नष्ट हो जाने से गांव के जीवन में बडा परिवर्तन आ गया था। वह मानते थे कि इसके पुनर्जीवित करने में केवल ब्रिटिश-वस्त्र-बहिष्कार से ही काम न चलेगा, बल्कि इसके लिए सभी विदेशो से वस्त्रो का आना बन्द करना जरूरी था। इसीलिए वह सभी विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार पर विशेष जोर दिया करते थे, केवल ब्रिटिश-वस्त्र-बहिष्कार पर ही नही।

इधर कुछ वर्षों से, पिछली लडाई से पहले, जापान से भी बहुत कपडा आने लग गया था। एक प्रकार से जापानी कपडा अपना प्रभुत्व जमाता जा रहा था। महात्माजी मानते थे कि ब्रिटिश कपडे को हटाकर जापानी कपडा काम में लाना देश के लिए हितकर नही होगा। देश-हित-साधन सब प्रकार से विदेशी-वस्त्र बहिष्कार से ही होगा। इधर तो देश की मिलों में ही काफी कपडा तैयार होने लग गया है। विदेश से भी कुछ आने लगा है। इसलिए, यद्यपि अभी कपडे और उसकी कीमत पर नियंत्रण है तथा उसकी कीमत भी बहुत ही ऊँची है तथापि खादी को जितना चाहिए उतना प्रोत्साहन नही मिल रहा है। आगे क्या होगा, यह भविष्य के गर्भ में है।

महात्माजी ने खादी को केवल एक उद्योग-धन्धे के रूप में नही देखा था—यद्यपि यह एक ऐसा उद्योग हो जाता जिससे जनता के सबसे गरीब तबके को सहायता मिलती। उन्होंने इसको बार-बार सब उद्योगों का केन्द्र कहा है, कई जगहों पर ऐसा लिखा भी है कि जैसे नक्षत्रों में सबसे अधिक महत्व सूरज का होता है वैसे ही सब ग्रामीण उद्योगों में खादी का प्रमुख स्थान है। स्वराज्य-आन्दोलन के समय में खादी पहनना हमारे आन्दोलन का एक प्रतीक बन गया था। यदि महात्माजी का चलता और सब लोग उनकी बात मानते तो चरखा चलाना प्रत्येक कार्यकर्त्ता और नेता के लिए अनिवार्य हो जाता तथा खादी केवल शरीर पर ही न रहकर दिल के अन्दर भी घर कर लेती, पर ऐसा पूरी तरह हो नही सका। कांग्रेस ने इसे केवल एक वर्दी ही माना—वह शरीर पर ही रह गई, अन्दर नही घुस सकी। अगर वह अन्दर घुसती तो हमारे सारे जीवन में गहरा परिवर्तन होता। जहाँ एक तरफ बडे-बडे विशालकाय कारखाने दिन-दिन खुलते जा रहे है और छोटी-से-छोटी वस्तुओं को भी तैयार करने का काम अपने हाथो में लेते जा रहे है तथा जहाँ जनता में बेकारी दिन-दिन बढती जा रही है वही यह खादी इस बात को प्रमाणित करती है कि मनुष्य को सुखी बनाने और सच्चा आनन्द पहुँचाने के लिए बाहरी आडम्बर की उतनी जरूरत नही है जितनी सादा जीवन और आन्तरिक संतोष की। खादी शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा और मर्यादा को बढाती है। महात्माजी, अपने इक्कीस दिनो के उपवासों में भी, जब उनकी शारीरिक शक्ति बहुत क्षीण हो जाती थी, चरखा चलाना एक दिन भी बन्द नही करते थे। जब सार्वजनिक काम में इतनी भीड होती थी कि उनको चरखा चलाने का समय मिलना कठिन हो जाता था, तब भी वह आराम और सोने के समय को घटाकर चरखा चलाने का समय निकाल लिया करते थे। वह चरखा चलाने को यज्ञ समझते थे। जिस धार्मिक

भावना से चरखा चलाया करते थे उसी भावना से वह प्रार्थना किया करते थे। उनके लिए चरखा ही दरिद्रनारायण के साक्षात्कार का साधन था। यदि हम उस मर्म को समझ पाते तो हमारे जीवन में सादगी आती, हम कभी गरीबो की रोजी छीनकर बडे कारखाने के मोह में न पडते और शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा करने लग जाते। फिर तो सारे जीवन का रुख ही बदल जाता। बाहरी चमक-दमक और बाहरी आडम्बर को बढाकर जीवन के स्तर को ऊँचा करने का जो विचार फैल रहा है उसको भी हम ठीक ठीक समझ लेते। तब हम आन्तरिक सतोष में ही सच्चे आनन्द का अनुभव करने लगते। परन्तु, हमने वैसा न किया और न समझा। हम तो खादी को बस एक वर्दी मानकर ही चले। वर्दी तो बदली जा सकती है, वह किसी आध्यात्मिक तत्त्व से सबन्ध नही रखती। पर हमने खादी के आध्यात्मिक तत्त्व को ही नही खोया है, बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी हम उतनी तरक्की नही कर पाये है जितनी करना चाहते थे

छब्बीसवाँ अध्याय

जब महात्माजी लुप्तप्राय चरखे को फिर से प्रचलित करने का प्रबल प्रयास कर रहे थे तब हमारी आँखो के सामने, देखते-देखते, कितने ही छोटे-मोटे घरेलू धधे – जिनको करके बहुतेरे गरीब गुजारा करते थे – कारखानो की चोट से अस्त-व्यस्त होते जा रहे थे । जब हम यह सोचते थे कि खादी को पुनर्जीवित करना बहुत आवश्यक हो गया है तो हमारी समझ में यह बात नही आती थी कि उन दूसरे धधो को क्यो मरने दिया जा रहा है । यह बात नही थी कि गाधीजी का ध्यान उन धधो की ओर नही गया था । पर शायद उन्होने यह समझ लिया था कि जो चरखा लुप्त हो चुका है वह अगर पुनर्जीवित किया जा सकेगा तो दूसरी चीजो को, जो अभी लुप्त नही हुई है, जीवित रखना उतना कठिन नही होगा । इसलिए उन्होने शक्ति को न बिखेरकर चरखे के पुनरुद्धार में उसे केन्द्रित रखना ठीक समझा, क्योकि वह सबसे अधिक मुश्किल जान पडा । जो सबसे कठिन काम होता था उसीको वह हाथ में लेना पसन्द करते थे । एक बार का जिक्र है, उनसे किसी ने कहा—"महाराष्ट्र के गाँव में आपकी बातें लोग नही सुनते । जितना समय आपने वर्धा और सेवाग्राम में लगाया है उतना अगर किसी दूसरे प्रान्त के गाँव में लगाते तो सारे सूबे की शक्ल बदल जाती, आपके कार्यक्रम को गाँव-गाँव अपना लिया होता ।" उन्होने उत्तर दिया—"अगर यह बात ठीक है कि महाराष्ट्र के गाँव में हमारे कार्यक्रम की प्रगति बहुत कम है और लोग हमारी बातें कम सुनना चाहते है, तो क्या हमारे लिए यह उचित नही है कि हम वही पर अधिक समय दे ? अगर वे मेरी नही सुनेंगे तो दूसरो की तो और भी कम सुनेंगे । तो, जब यह काम इतना कठिन है, इसे दूसरे कार्यकर्त्ताओ पर कैसे छोड दूँ ? चूँकि यह काम कठिन है, इसलिए उनको इसका महत्त्व समझाना मेरा और भी कर्त्तव्य हो जाता है ।

इसीलिए मै यहाँ बैठा हूँ।" शायद ऐसा कुछ करना उन्होने सोचा होगा। यद्यपि दूसरे ग्राम-उद्योगो की तरफ उन्होने शरू से ध्यान नहीं दिया तथापि वह उनको छोड नही सकते थे। जब वह वर्धा में आकर बैठे तो उन्होने फिर दूसरे ग्राम-उद्योगो को प्रोत्साहन देने का काम शुरू किया। इसके लिए ग्राम-उद्योग-सघ स्थापित करके एक-एक ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन देने और पुनर्जीवित करने का प्रबन्ध करने लगे।

महात्माजी बराबर खाद्य-पदार्थों के सम्बन्ध में प्रयोग करते रहे। जब वह इगलैड में पढते थे तभी उन्होने यह काम आरम्भ किया था। वहाँ निरामिष-भोजियो की सस्था स्थापित करके वह निरामिष भोजन का प्रचार करने में सहायक हुए थे। दक्षिण अफ्रिका में भी वह बराबर इसपर ध्यान रखते गये। जब से भारत लौटकर आये तभी से इसपर और भी अधिक जोर देने लगे। जब चम्पारन पहुँचे थे तो खजूर और मूँगफली उनका मुख्य खाद्य था। कुछ दिनो तक आम-जैसे फल खाने लगे। पीछे तो चावल भी खाते थे। पर एक उनका हमेशा का नियम हो गया था कि किसी तरह का कोई मसाला, यहाँ तक कि नमक भी, उस समय नही खाते थे। जो साग-सब्जी होती थी उसे केवल पानी के साथ उबालकर ही खा लिया करते थे।

उनका दृढ विचार रहा है कि अहिंसा के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है और ब्रह्मचर्य के लिए सादा-से-सादा भोजन जिसमें कोई वस्तु तामसी तथा उत्तेजक न हो। इसलिए वह इस फिक्र में रहा करते थे कि भोजन ऐसा ही हो जो शरीर को स्वस्थ और पुष्ट रखने के लिए काफी हो, पर उसमें उत्तेजन की शक्ति न हो। साथ ही, इन्द्रियो को वश में करने के लिए जिह्वा को वश में करना भी अत्यन्त आवश्यक है। अत स्वास्थ्य के लिए तामसी पदार्थ खाना वह बुरा मानते थे। खाने का उद्देश्य शरीर को स्वस्थ और पुष्ट रखना है, न कि जिह्वा के स्वाद को सन्तुष्ट करना। इसीलिए उन्होंने भोजन में स्वाद को कभी स्थान नही दिया। केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से ही भोजन पर वह विचार किया करते थे।

देश के लोगो में भोजन के सम्बन्ध में बहुत तरह की गलतफहमी चलती है। हम अधिकतर स्वाद के लिए ही खाते है। यद्यपि सुस्वादु भोजन का असर शरीर पर चाहे बुरा न पडता हो, तथापि खाने में हम बहुत नुकसान ही करते है—स्वास्थ्य के लिए जितना आवश्यक है उससे अधिक ही खाते है। इसलिए महात्माजी इसको बहुतेरे पत्रो में बराबर लिखते रहे है कि वही चीज खाई जाय जो शरीर को स्वस्थ और चित्त को शुद्ध रख सके। साबरमती-आश्रम मे, खाद्य-पदार्थो के सम्बन्ध मे, बराबर प्रयोग होता ही

रहा। अनेकानेक आश्रमवासी अपने शरीर से ही यह प्रयोग करते थे। महात्माजी तो इस विषय में अपने सारे जीवन में प्रयोग करते ही रहे। उन्होंने दूध या दूध की बनी वस्तु को अपने लिए वर्जित कर रखा था। जब वह सख्त बीमार पडे, किसी ने बकरी के दूध का सुझाव दिया। तबतक वह बिना दूध के ही रहते थे। जब से बकरी के दूध के गुणो का पता लगा तभी से वह उसे बराबर लेने लगे। मगनवाडी में कुछ दिनो तक उन्होने नीम की पत्ती, खली इत्यादि का ही प्रयोग किया। कुछ दिन तो इस बात की धुन रही कि एक ही बार बिना पकाया भोजन किया जा सकता है या नही और इस प्रयोग के फलस्वरूप मनुष्य के स्वास्थ्य पर क्या असर पड सकता है। डाक्टर ने इसके विरुद्ध कई बार कहा, पर उन्होंने माना नही, बहुत दिनो तक कच्ची चीज खाते रहे। दाँत उनका कमजोर था, बहुतेरे गिर गये थे, इसलिए किसी चीज को कुचल कर खाना उनके लिए कठिन था। कच्ची चीज सिल पर पीस दी जाती थी, वही वह खाते थे। कच्चा गेहूँ भिगोकर, कद्दू-कोहँडा तथा दूसरे प्रकार की साग-सब्जी, सब-कुछ सिल पर पीस कर उनको दिया जाता था। नीम की पत्ती भी इसी तरह पीसकर दी जाती जिसे वह चटनी की तरह खा लिया करते थे। उनका ख्याल था कि पकाने की बात यदि उठ जाये तो भोजन-सम्बन्धी बहुत झझट दूर हो जाय, उससे केवल जलावन का खर्च ही नही बचे, समय भी बचे, स्वाद का तो एक प्रकार से बहिष्कार ही हो जाय। पर ऐसे प्रयोगो का फल अच्छा नही हुआ। उनका स्वास्थ्य फिर बहुत बिगडा। लाचारी उन्हे प्रयोग छोडने पडे।

इस अवस्था में यह स्वाभाविक था जब उन्होने ग्राम-उद्योगों को फिर से जीवित करने को ठाना। विशेषकर ऐसे ग्रामोद्योगो पर उनका ध्यान गया, जो खाद्य-पदार्थों से सम्बन्ध रखते है। उन्होने चावल, आटा, तेल और गुड के सम्बन्ध में बहुत प्रकार के प्रयोग किये और करते रहे। किसी तरह से कुछ थोडे आदमियो को, जिनके द्वारा ये चीजें थोडी ही तैयार की जाती, प्रोत्साहन देकर इस उद्योग में सुधार कराया। एक और दृष्टि से यह उद्योग अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि इसके बिना कोई भी मनुष्य रह नही सकता, यह मनुष्य के जीवन के लिए अनिवार्य वस्तु है। जीवनोपयोगी वस्तुओ में खाद्य-पदार्थों का स्थान अगर सबसे ऊँचा नही तो बहुत ऊँचा अवश्य है। एक तो किसी तरह खाद्य-पदार्थों की उत्पत्ति बढाई जाय जिससे देश के लोगो की जरूरत पूरी हो और उनकी कमी भी न रह जाय, दूसरे यह भी सोचा जाय, कि इनका किस प्रकार से इस्तेमाल किया जाय कि इनसे अधिक-से-अधिक लाभ उठाया जा सके और कम-से-कम खाने पर भी मनुष्य के

जीवन के लिए स्वास्थ्यकर भोजन मिल सके। खाद्य-पदार्थों में अन्न अत्यन्त आवश्यक है। अन्न में भी विशेषकर चावल और गेहूँ का उपयोग हिन्दुस्तान में होता है। इसीलिए इन दोनो पर उन्होने बहुत अधिक ध्यान दिया।

धान को कूटकर चावल निकाला जाता है। उसके निकालने के तरीके थोडा बहुत गांव मे इस्तेमाल होते थे। एक तरफ यह प्रयत्न किया गया कि कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक चावल किस तरह तैयार किया जाय। एक तरीका सब जगह प्रचलित है—धान को ओखली में मूसल से कूटने का। उसमें परिश्रम काफी पडता है, पर चावल कम तैयार होता है। दूसरा तरीका ढेकी से धान कूटने का है। ओखल-मूसल के मुकाबले ढेकी ज्यादा चावल तैयार कर सकती है। चावल निकालने के हर प्रकार के तरीके में थोडा बहुत सुधार किया गया है। कूटनेवाले के कम-से-कम परिश्रम से अधिक-से-अधिक चावल निकालने का रास्ता निकल गया है। पर एक नई पद्धति, जो विशेषकर उत्तर में पहले प्रचलित नही थी, यह निकल गई है कि चक्की से दलकर धान के ऊपर का छिलका निकाल देते है। मामूली तरह से धान कूटने में दो प्रक्रियाएँ हुआ करती है—पहली में धान के ऊपर का मोटा छिलका निकाल दिया जाता है और इस तरह जो चावल निकलता है उसपर एक बहुत महीन छिलका हुआ करता है जो देखने में नही आता, दूसरी प्रक्रिया में वह छाँटकर साफ कर दिया जाता है जिससे वह बारीक महीन छिलका भी निकल जाता है। चक्की से धान दलकर वह पहली प्रक्रिया बहुत आसान कर दी गई है। अगर धान बहुत सूखा रहा तो दलने में बहुत आसानी होती है। इस तरह से प्रयोग करके देखा गया है कि दूसरी प्रक्रिया केवल अनावश्यक ही नही है, बल्कि स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकर भी है। जो महीन छिलका चावल पर रहता है उसमे चावल की पौष्टिक शक्ति बहुत-कुछ रहती है। उसको निकाल देने से चावल क्षीण हो जाता है, पर देखने में बहुत साफ नजर आने लगता है। यदि वह खूब अच्छी तरह छाँट लिया जाय तो उसमें एक प्रकार की चमक भी आ जाती है। चावल में जो घुन लगता है वह विशेषकर उसके ऐसे ही छिलके में, जो मोटा-सा होता है, घुन उसी को खाते है। यदि चावल खूब छाँट दिया जाय और छिलका बिल्कुल साफ कर दिया जाय, तो उसमें वर्ष तक घुन नही लगता। छिलके का जितना अश रह जाता है उसी के अनुपात में जल्दी और अधिक घुन लगता है। प्रयोग का नतीजा यह निकला कि छिलका यदि न निकले तो चावल को, तैयार होने के बाद जल्द ही खर्च कर देना जरूरी है। गेमे

चावल में पौष्टिक शक्ति बहुत अधिक हुआ करती है। इसीलिए महीन छिलके से युक्त चावल को 'पूर्ण चावल' नाम दिया गया है। इस प्रयोग मे यह नतीजा निकला कि कम चावल पकाने से अधिक पौष्टिक पदार्थ मिल सकता है। इस तरह, पूर्ण चावल के उपयोग से दो प्रकार के लाभ होते हैं एक तो जो छिलका रह जाता है उसका वजन चावल के साथ मिल जाता है, इस तरह जहाँ खूब छँटे हुए चावल का वजन एक सौ मन में एक सेर निकला वहाँ उतने ही धान से 'पूर्ण चावल' एक सौ मन में चार या पाँच सेर निकला; इस प्रकार धान से चावल की उत्पत्ति सैकडे चार-पाँच सेर अधिक हो जाती है; दूसरे यह भी देखा गया कि 'पूर्ण चावल' आदमी कम खा सकता है, क्योकि कम चावल से ही तृप्ति हो जाती है और जितना छाँटा हुआ चावल आदमी पचा सकता है उससे कम ही 'पूर्ण चावल' हजम कर सकता है। इन प्रयोगो से इस प्रकार दोनो लाभ हुए—कम परिश्रम से अधिक चावल का तैयार होना और कम खाकर अधिक पौष्टिक पदार्थ पाना।

गेहूँ का, चक्की के आटे के रूप में, अधिक इस्तेमाल होता है। आटा बहुत महीन या कुछ मोटा हो सकता है। महीन आटे के लिए अधिक भारी चक्की होनी चाहिए। उस परिमाण में उसके चलाने में अधिक परिश्रम भी लगता है। इसके अलावा गेहूँ के छिलके का अश भी चलनी में छानकर निकाल दिया जाता है। चावल की तरह गेहूँ के पौष्टिक पदार्थ का भी एक बहुत बडा अश ऐसे छिलके में ही रहा करता है। उस छिलके को चोकर के रूप में छानकर निकाल देने से पौष्टिक पदार्थ निकल जाता है। इसमें भी इन प्रयोगों द्वारा दो फल निकले। एक तो यह कि चक्की का ऐसा सुधार किया गया कि कम-से-कम परिश्रम से गेहूँ पीसा जा सके, दूसरा यह कि छिलके को न निकाल कर आटे की पौष्टिक शक्ति बढा दी जाय। इससे चावल की तरह उसमें भी दुगना लाभ हुआ, क्योकि जो चोकर निकल जाता है वह आटे के साथ ही रहकर उसका वजन छाने हुए आटे के वजन से ज्यादा बढा देता है। जिस तरह चावल छाँटने का परिश्रम 'पूर्ण चावल' से बच जाता है उसी तरह बिना छाने ही आटे के इस्तेमाल से आटा छानने का परिश्रम बच जाता है। आदमी जितना छाना हुआ आटा खा सकता है उससे कम ही बिना छाने हुए आटे से तृप्ति हो जाती है। उससे पौष्टिक पदार्थ भी मिल जाता है।

तीसरी चीज, जिस पर ध्यान दिया गया, तेल था। मनुष्य के खाद्य-पदार्थों में कुछ तेल-घी-जैसे चिकने पदार्थ का होना भी आवश्यक है। इस-

लिए तेल या घी का कुछ थोडा महत्त्व नही है। तेल कई प्रकार के बीजो से, जिनको तेलहन कहते हैं, कोल्हू मे पेलकर निकाला जाता है। यह पद्धति बहुत दिनो से हिन्दुस्तान में जाती है। कोल्हू में बैल जोतकर काम निकाला जाता है। प्रयत्न किया गया कि बल का परिश्रम कम हो जाय और तेल आसानी से निकल सके। इस प्रयत्न में भी काफी सफलता हुई। कोल्हू का ही ऐसा सुधार कर दिया गया कि जल्द-से जल्द और अधिक-से-अधिक तेल निकाला जा सके।

चावल, गेहूँ और तेल—तीनो को बनाने के लिए बहुत-सी सस्थाएँ खुल गई है और खुलती जा रही है। पहले यह सब गाँवो के लोग खुद तैयार कर लिया करते थे। चावल कूटने और आटा पीसने का प्रयोग घर में ही हुआ करता था। इससे गाँव के लोगो को केवल एक उद्योग ही नही मिलता था, बल्कि एक प्रकार का शारीरिक श्रम भी हो जाया करता था। इन चीजो के कारखानो की वजह से सिर्फ यही नही हुआ कि करोडो आदमियो का ग्रामीण धन्धा, जो बगैर घर छोड़ बाहर गये हर घर में हो जाता था, उनसे छीना जा रहा है, बल्कि यह भी हुआ कि जो खाद्य-पदार्थ इन कारखानो के द्वारा तैयार होते है उनमें वह पौष्टिक शक्ति भी नही रह जाती जो घर में कूटे-पीसे चावल और आटे में तथा गाँव में निकाले तेल में हुआ करती थी। वैज्ञानिक अनुसधानो से यही नतीजा निकला है कि कलो द्वारा तयार किये गये चावल, आटा और तेल में वह जीवनदायी पदार्थ नही होता या बहुत कम होता है जिसको 'विटामिन' कहते है। इन प्रयोगो का उद्देश्य यह था कि लोगो का धधा उनके हाथ में रह जाय और देश का स्वास्थ्य भी कम खाकर सुधर जाय। गाधीजी ने इन बातो का बहुत जोरो से प्रचार किया। इसका असर भी कुछ पडा। पर यह अभी तक उतना नही फैला है जितना चरखा और खद्दर फैले। आज, जब खाद्य-पदार्थों की इतनी कमी है और करोडो मन अन्न विदेश से अरबो खर्च करके मँगाना पड रहा है, यह सोचने की बात है कि इन प्रयोगो से कितना लाभ हो सकता है और इनका प्रचार करके वह लाभ किस तरह सार्वजनिक बनाया जा सकता है। मै मानता हूँ कि 'पूर्ण चावल' और 'पूर्ण आटा' के इस्तेमाल से आज की अन्न की कमी एक अच्छे अंश में दूर की जा सकती है। इसमें कोई खर्च नही और न कुछ नया काम करना है। लोगो को बता देने से ही सफलता मिल सकती है। पर इस विषय में सबसे बडी दिक्कत है हमारा आलस्य और हमारी जडता। हम चावल छाँटने और आटा पीसने के परिश्रम से बचना चाहते है, इसीलिए कारखाने में तैयार चावल और आटा

इस्तेमाल करते है। साथ ही, जो एक रूढ़ि और कुप्रथा छाँटे हुए चावल और छाने हुए आटे के खाने में चल रही है उसको जडतावश छोड नही सकते। अभी इसका काफी प्रचार भी नहीं हो पाया है।

भोजन में मीठा भी आवश्यक है। पहले हिन्दुस्तान के बहुत स्थानो में ईख की खेती होती थी। उसे कोल्हू में पेलकर गाँव में ही गुड बना लिया करते थे। गाँवो में कही-कही छोटे-मोटे कारखाने में गुड-चीनी बना लेते थे। पिछले पचीस-तीस वर्षो में यहाँ के प्राय सभी छोटे कारखाने बन्द हो गये। उनकी जगह चीनी के विशालकाय कारखाने खड़े हो गये है। विज्ञान जानने-वालो का कहना है कि छोटे कारखानों में बनी चीनी में जितना जीवन-तत्त्व होता है उतना बडे कारखानो की चीनी में नहीं होता। ऐसी चीनी का भी वही हाल है जो कुटे चावल और पिसे आटे का। गाँव के जीवन में इन बडे कारखानो के कारण थोडा फर्क आ गया है। यह कारखाना किसान से ईख ले लेता है। फिर उसे कारखाने के एक हिस्से में डाल देता है। दूसरी तरफ अनेक प्रक्रियाओ से गुजरकर तैयार चीनी निकल आती है। एक कारखाना बहुत-सी ईख एक ही दिन के अन्दर पेल लेता है। जिस काम के लिए गाँवो में पहले हजारो कोल्हू चलते थे वही काम अब एक कारखाने के लिए काफी होता है। इसका यह नतीजा निकला कि खेती का काम जो लाभ और सुख पहुँचाता था वह जाता रहा। किसान अपने छोटे बैल से खेत आबाद करते थे। उसमें से अपने काम के लिए कई तरह के अन्न पैदा कर लिया करते थ। साथ ही, जरूरत के मुताबिक, नगद पैसों के लिए, ईख की खेती करके, गुड बना लिया करते थे, जिसे उनके बाल-बच्चे खाते थे। जब जरूरत ज्यादा होती तो उसे बेचकर लगान देने और कपड़े इत्यादि खरीदने में पैसे लगाते थे। उससे साल-भर धधा मिलता था। जब खेती के दूसरे कामो की बहुत भीड नही रहती थी तब एक काम हाथ में रहता था। सब लोग कुछ गन्ना चाबते, कुछ रस पीते, कुछ गुड खाया करते। ईख के हरे पत्ते उनके मवेशी खाते। उनमें भी जो थोडी चीनी का अश रहता उससे पशु लाभ उठाते। इस तरह, ईख की खेती कम होने पर भी, बहुत लोगो को उससे लाभ होता था।

किन्तु अब, बडे कारखानो के हो जाने से, किसान को कुछ पैसे ज्यादा मिलते है। इसलिए जहाँ-जहाँ कारखाना है वहाँ ईख की खेती बहुत बढ गई है। इसका एक नतीजा यह हुआ कि जहाँ कारखाना नही वहाँ ईख की पैदावार का अनुपात कम हो गया है। किसान अब इसका खयाल नहीं रखता कि उसे कितनी जमीन में कितना गन्ना पैदा करना चाहिए जिससे वह खुद

गुड बना सके। अब तो वह, जहाँ तक हो सकता है, पैसे के लालच में, अधिक-से-अधिक ईख की खेती करता है। वह प्रतिदिन इतना ज्यादा गन्ना काट लेता है जितना वह कारखाने में पहुँचा सके। नतीजा यह होता है कि गन्ने का पत्ता एक साथ ही इतना अधिक हो जाता है कि मवेशी उसे खाकर सधा नही सकते। चूँकि वह जल्दी-जल्दी सारा गन्ना काटकर कारखाने में पहुँचाने का प्रयत्न करता है, इसलिए यह पत्तो सारे मौसम में न मिलकर चन्द दिनो में ही खतम हो जाती है। इस तरह, उसके मवेशी एक अच्छे सुस्वादु और पौष्टिक चारे से वचित रह जाते है। जो बैल पहले कोल्हू में काम किया करता था वही अब गाडी में जुतकर गन्ना ढोने का काम करता है। इसके लिए बैल को बहुत दूर-दूर, चाहे कारखाने तक या रेल के स्टेशन तक, गन्ने पहुँचाने के लिए जाना पडता है। वहाँ उसे घटो कभी-कभी तो एक दिन से अधिक, गाडियो की कतार में, कधे पर भारी बोझ लिये, चुप खडा रहना पडता है।

गाँव में जब गुड बनता था तब ईख पेरकर रस निकालने के बाद जो मीठा चफुआ (सीठा) बचता था उसे सुखाकर उसका महीन अश बैल को खिलाते थे और छोटे अश को कुछ गुड पकाने में तथा कुछ घर के जलावन के काम में लाते थे। अब यह सब सीधे कारखाने में चला जाता है। कितने ही आदमी, जो गुड के काम में लगे रहते थे, अब बेकार हो गये। कारखाने में तो बहुत कम आदमी काम कर रहे है। लोग अकसर कह दिया करते है कि कारखाने का नतीजा— चाहे वह कपडा बुनने का हो, या चावल कूटने का, या आटा पीसने का, या चीनी बनाने का—बहुतो की बेकारी होती है, यद्यपि देखने में मालूम होता है कि इसके द्वारा बहुत काम मिला। यह तो अब विचार करने से ही स्पष्ट हो जायगा।

हिसाब लगाकर देखा गया है कि किसी कारखाने का एक मजदूर जब सूत कातने का काम कारखाने में करता है तब वह चौबीस घटे के अन्दर इतना सूत कई तकुओ द्वारा कात सकता है जितना चरखे पर कतनेवाले प्राय दो सौ आदमी मिलकर चौबीस घटे में कातेंगे। जो कपडे के कारखाने में बुनाई करता है वह प्राय इतना काम कर लेता है जितना दस-बारह बुनकर। देखने में एक जगह हजार-दो-हजार मजदूर काम करते हुए ढेर-का-ढेर कपडा तैयार कर देते है, तो लोग समझ जाते है कि बहुत लोगो को धधा मिल गया, पर यह लोग भूल जाते है और इस ओर कभी उनका ध्यान भी नहीं जाता है कि उतने ही कपडे तैयार करने में उनसे कितने-गुने अधिक मजदूर गाँवो में काम करते अगर वह कपडा चरखो और करघो पर

तैयार किया गया होता। इस तरह कारखानो के मजदूरो से कई-गुना आदमी बेकार हो गये।

यह बात केवल कपडे के ही कारखाने की नही है। सभी कारखानो का हिसाब ऐसा ही है। फर्क इतना ही पडता है कि किसी कारखाने की वजह से बेकारी बहुत ज्यादा होती है और किसी में उस अनुपात से कम होती है। पर इसमें जरा भी सदेह नही कि कारखाने का नतीजा बेकारी बढाना ही है, घटाना नही। इस तरह, जब कपडे के कारखानो से करोडों आदमियो की बेकारी बढी तो चावल, आटा, चीनी आदि के कारखानो से बेकारी कुछ कम नही होती। प्राय इस अनुपात में तो इनसे भी बढी है। इसलिए गांधीजी का ध्यान जब इन चीजो की ओर गया कि यह कही बेहतर होगा कि चरखे के अलावा गृह-उद्योगो की ओर भी ध्यान दिया जाय, तो उन्होने उन उद्योगो को ही अधिक महत्व दिया जो मनुष्य-जीवन के लिए उपयोगी और आवश्यक वस्तुएं तैयार करते है और जो इसी वजह से बहुत ही व्यापक भी है। इनसे गाँववालो को धधा मिलने के अलावा जन-साधारण के स्वास्थ्य-सुधार में भी बहुत सहायता मिलने की, जैसा ऊपर बताया गया है, आशा थी।

चीनी और गुड के सम्बन्ध में उन्होने एक चीज और भी जनता के सामने जोरो से रखी। हिन्दुस्तान में बहुत-सी चीजें ऐसी है जिनका रस निकालकर गुड और चीनी तैयार हो सकती है। जैसे—ताड, खजूर इत्यादि। इस तरह के दरख्तो से कही गुड काफी बनता भी है। आयुर्वेद के तथा यूनानी चिकित्सक इस गुड और चीनी को, ईख के गुड और चीनी के मुकाबले, दवाओ के लिए, अधिक लाभदायक समझते है। जहाँ इन दरख्तो की सख्या बहुत है वहाँ भी इनसे गुड नही बनाया जाता। न मालूम देश में कितने करोड ऐसे दरख्त है जो यो ही खडे है, पर जिनका उपयोग किया जाय तो बहुत अधिक गुड़ या चीनी बन सकती है। इन पेडो से जो रस निकाला जाता है वह लाभदायक गुड के बदले ताडी के रूप में ही खर्च होता है, जिससे नुकसान भी होता है। इसलिए महात्माजी ने ताड के रस से गुड बनवाने का काम शुरू करवाया—कुछ लोगो को ऐसे काम मे लगाया। जहाँ ऐसा गुड बनता है वहाँ उसका बनना देखकर उसका प्रचार और जगहो में भी किया जाय। सभी ताड के पेड यदि गुड बनाने के काम में लगा दिये जायँ तो बहुत ज्यादा गुड बन सकता है। ऐसा विचार किया गया कि बिहार-सूबे में जितने ताड है उन सबका अगर गुड के काम में इस्तेमाल किया जाय तो उनसे उतनी

चीनी तैयार हो सकती है जितनी आज बिहार के सभी कारखाने मिलकर तैयार करते है। आजकल गुड और चीनी के कारखाने बहुतायत से बिहार और सयुक्तप्रात में ही है। उनमें काफी चीनी तैयार होती है। किन्तु ताडों के उपयोग से जितने लोगो को काम मिलेगा वे कारखानो में लगे हुए लोगो से कई-गुना अधिक होगे। साथ ही, गन्ने की खेती में लगने वाली सारी जमीन दूसरे काम में लगाई जा सकेगी। फिर तो बिना किसी जमीन को बझाये हुए ही उतनी चीनी देश को मिल जायगी।

एक और विषय की ओर भी ध्यान दिया गया। उससे एक बहुत ही लाभकारी खाद्य-पदार्थ, बिना किसी कारण और परिश्रम के लोगो को मिल सकता था। वह है मधु। मनुष्य को परिश्रम करके इसे पैदा नही करना पडता था। इसे मधुमक्खी ही अपने परिश्रम से पैदा करती है। मनुष्य को केवल एकत्र सचित मधु को बटोर लेना पडता है। यदि मधुमक्खियो के लिए सुविधाजनक कोई स्थान प्रस्तुत कर दिया जाय, मधु निकालने में थोडी सावधानी बरती जाय, जिस छत्ते को मधुमक्खियाँ बहुत परिश्रम से बनाती है वह एक ही बार मधु निकालकर तोड न दिया जाय, तो बहुत जल्दी-जल्दी मधुमक्खियाँ काफी मधु तैयार करके दे सकती है। छत्ता बनाने में उनका बहुत परिश्रम और समय लगता है। जो लोग उनके पालने का तरीका ठीक नही जानते वे छत्ते को तोड-मरोड कर मधु निचोड लेते है। इसका नतीजा यह होता है कि मधुमक्खियो को फिर परिश्रम करके छत्ता तैयार करना पडता है। जब छत्ता तैयार हो जाता है तभी वे उसमें मधु जमा कर सकती है। यदि छत्ता न तोडा जाय, बिना तोडे ही उसमें से मधु निकाल लिया जाय, तो उनका जो समय फिर छत्ता बनाने मे लगता है वह भी मधु बनाने मे ही लगे। इस प्रकार कम समय में ही मधु काफी तैयार हो जाय। मधु बहुत ही गुणकारी खाद्य-पदार्थ है। यदि मधुमक्खियो के लिए सुविधा कर दी जाय तो बिना हमारे कुछ किये ही वे मधु देती रहेंगी।

एक और जानने योग्य बात यह है कि फूल फूलने की फसल से रस लेकर मधुमक्खियाँ मधु तैयार करती है, पर उस फसल को कुछ नुकसान नही पहुँचाती है। उनके बैठने से फूली-फली फसल की और भी उन्नति हो जाती है। अपने साथ कोई ऐसी वस्तु ले जाकर वे उसपर छोड आती है कि जिससे अन्न के दाने और अधिक पुष्ट हो जाते है। चूँकि इस तरह गाँव के लोगो को बिना परिश्रम और बिना खर्च के एक बहुत ही अच्छा खाद्य-पदार्थ मिल जाता है, इसलिए ग्रामोद्योग में मधुमक्खी पालने की ओर जोर दिया गया। इसकी जानकारी हासिल करना और खोज करके नई बातें निकालना

ग्रामोद्योग का एक मुख्य काम हो गया है। यदि इसका पूरा प्रचार हो जाय तो देश का बडा लाभ हो और लोगो का स्वास्थ्य भी सुन्दर हो जाय।

खाद्य-पदार्थों में मुख्य स्थान अन्न का भी है। इसलिए अन्न की अधिक उपज करना अत्यन्त आवश्यक है। ग्रामोद्योग का यह एक बडा काम है कि अन्न की उपज किसी तरह बढाई जाय। यह एक जानी हुई बात है कि जमीन मे खाद देने से उपज बहुत बढ जाती है। इसका कारण यह है कि जमीन में कुछ ऐसी चीज होती ह जिसको लेकर ही अन्न बनता है। इसलिए जब एक बार फसल निकाल ली जाती है तब जमीन के तत्व का एक अश निकल जाता है। खाद इसी कमी को पूरा करन के लिए आवश्यक है। यह खाद बहुत करके ऐसी चीज से भी तैयार की जा सकती है जो या तो फेंक दी जाती है या बरबाद हो जाती है या सडकर दुर्गन्ध फैलाकर स्वास्थ्य के लिए हानिकर हो जाती है। इसलिए, सब ऐसी वस्तुओं का इस प्रकार सग्रह करना कि वे खाद का रूप धारण कर लें और मनुष्य-समाज के लिए हानिकर वस्तु न रहकर खाद्य-वस्तुओं के उपजाने में सहायक बन सकें, ग्रामसुधार और ग्रामोद्योग का एक बडा काम है।

देखा जाता है कि मनुष्य के मल-मूत्र, घर का बुहारन इत्यादि कुछ हद तक खाद बनाने के काम में लाये जाते हैं। पर यदि ठीक व्यवस्था हो तो कोई भी चीज बरबाद न होनी चाहिए। अभी तो गोबर भी बहुत करके जलावन के लिए उपला बनाने में खर्च कर दिया जाता है। मवेशी का मूत्र भी बेकार सूखने दिया जाता है। जिस किसान के पास जलाने का दूसरा कोई साधन नही है उसको गोबर से उपला बनाने की जरूरत है; पर यह मुमकिन है कि उस गोबर का यदि खाद के लिए ठीक उपयोग किया जाय तो शायद उससे उतना जलावन पैदा किया जा सके जितना उपले से मिलता है, और अन्न तो ऊपर से मिल ही जाय। पर यह केवल गोमूत्र और गोबर की ही बात नही है, मनुष्य के मल-मूत्र का भी अच्छा उपयोग हो सकता है यह काम आसानी से और सफाई के साथ किया जा सकता है। थोडी बुद्धि लगाकर इनसे काम लिया जा सकता है। आजकल गाँवो में ऐसी कुप्रथा है कि घर के नजदीक रास्ते पर और जलाशय के पास ही लोग मल-मूत्र कर दिया करते है। यदि लोग इसका खयाल रखें कि खेत में वह खाद बन सकता है, तो गाँव में घर के नजदीक या जलाशय पर गदगी भी न फैले और साथ ही खेतो को भी एक सुन्दर खाद मिल जाय। यह एक जानने लायक बात है कि मल अगर यो ही छोड दिया जाय, तो उसका रस बहुत कुछ सूख जाता है जिससे जमीन को जितना लाभ मिलना चाहिए उतना

नही मिलता, पर यदि वह मिट्टी के नीचे ढक दिया जाय, तो उसका सब अंश किसी-न-किसी रूप में खाद बन जाता है। इसलिए उसे कुछ मिट्टी के अन्दर ढक देना सबसे अच्छा होता है। यह आसानी से किया भी जा सकता है। जोते हुए खेत में थोडी मिट्टी हटाकर मल करना और फिर ऊपर से मिट्टी डालकर उसे ढक देना कोई उतना कठिन काम नही है। केवल थोडी सावधानी की आवश्यकता है। शहर में तो यह काम म्युनिसिपैलिटी करती है, शहर के तमाम मल को खेत में गाड देती है। पर आज भी मल-मूत्र से खाद बनाने का प्रबन्ध, जैसा चाहिए वैसा, शायद ही कही हो। इसलिए यह एक अत्यन्त आवश्यक काम है जिसकी ओर सब को ध्यान देना चाहिए। इसमें म्युनिसिपैलिटी की ओर गाँव के लोगो का ध्यान देना आवश्यक है। जितनी चीजे बुहारन के रूप में फेकी जाती हैं, सब खाद के रूप में परिवर्तित कर दी जा सकती है। 'कम्पोष्ट' बनाना कठिन नही है। एक-दो फुट गहरे गढे में बुहारन को तह-पर-तह लगाकर, बीच-बीच में गोबर रखकर, पूरा बिछा देना काफी है और कभी-कभी थोडा पानी डाल देने से भी चार छ महीने के भीतर चीजें खाद बन जाती है। वह बहुत ही उत्तम प्रकार की खाद होती है, क्योकि उसमें सब प्राकृतिक चीजें हुआ करती है। उन चीजो को खाद बनाने में किसी विशेष रासायनिक प्रयोग अथवा रासायनिक वस्तु की आवश्यकता नही होती। प्रकृति उन चीजो को खाद बनाती है। उनमें ऐसे कीटाणु भी रहते है जो खेती के लिए आवश्यक है—जो जमीन को खाद्य-पदार्थ पहुँचाने के अलावा उसे इतना योग्य बनाते है कि वह आवश्यक मात्रा में जलवायु खीच सके। इसलिए, विद्वानो के विचार से, इस प्रकार तैयार की हुई खाद, कृषि के लिए, अधिक उपयोगी और आवश्यक है। ग्रामोद्योग की ओर से इस विषय में काफी खोज की गई। इसके प्रचार का प्रबन्ध भी किया गया। गवर्नमेंट के कृषि-विभाग की ओर से भी किया जा जाता है; पर इसमे सन्देह नही कि वहाँ इसकी अभी बहुत कम गुंजाइश है। आज जो अन्न की कमी हो रही है वह—यदि ठीक प्रबन्ध हुआ तो—बहुत हद तक दूर की जा सकती है।

सत्ताईसवाँ अध्याय

खाद्य-पदार्थों में गोरस का वहुत महत्त्व है। दूध एक प्रकार से उन सभी पदार्थों का दाता है जो मनुष्य-जीवन के लिए आवश्यक है। साधारण लोगो में चन्द ऐसे है जो जन्म के कई महीने वाद तक केवल दूध के आहार पर जिन्दा रहे और पले है। इस देश में दूध का महत्त्व पुराने काल से ही लोगो ने इतना समझा कि उसको अमृत का स्थान दिया। आज देश का दुर्भाग्य है कि वच्चे के लिए भी दूध मिलना कठिन हो गया है। ऐसा मालूम होता है, मानो अव दूध मिलेगा ही नही। दूध गाय से मिलता है। भैंस, वकरी इत्यादि से भी। पर कई कारणों से, जिनका विवेचन आगे किया जायगा, गाय को ही अधिक महत्त्व दिया गया है।

भारत कृषि-प्रधान देश है। यहाँ सौ में प्रय सत्तर आदमी गाँव में रहते है जो कृषि से ही किसी न-किसी रूप में अपना गुजर करते है। अन्य देशों में—जैसे दक्षिण-अफ्रिका, आस्ट्रेलिया, अमेरिका इत्यादि में—आदमियो की आवादी के हिसाव से जमीन वहुत है, इसलिए जो लोग खेती करते है उनके पास जमीन काफी रहती है। एक-एक का खेत वहुत वडा हुआ करता है। हिन्दुस्तान में आवादी ज्यादा होने की वजह से, और वहुत दिनो से खेती जारी रहने के कारण, जमीन वहुत आवाद हो गई है, पर छोटा-छोटा खेत एक-एक घर या कुटुम्व को रह गया है। ऐसे खेतों का दारमदार वहुत करके वैल पर ही है, क्योकि वैल ही खेत जोतते है, फसल तैयार होने पर दौनी करते है और वोझ ढोने के लिए गाडी में जोते जाते है। इसलिए वैल के विना किसान का एक कदम भी चलना कठिन है। गाय दूध भी देती है औरखेती के लिए वैल भी। यद्यपि भैंसा खेत का कुछ काम कर सकता है तथापि उससे उतना काम नही होता जितना वैल कर सकता है। कही कहीं भैंसे भी खेत के काम में लगाये तो जाते है, पर वे उतना काम नहीं देते जितना वैल देता है। गाय का इसी कारण अधिक महत्त्व है। इसके अलावा भैंस या

भैसे गाय के मुकाबले में, बहुत खाते है। उनका पालन-पोषण भी अधिक खर्चीला होता है। इससे स्पष्ट है कि गोपालन केवल दूध या दूध से बनी दूसरी खाद्य-वस्तुओ के लिए ही आवश्यक नही है, बल्कि अन्न पैदा करने के लिए भी, जो मनुष्य का मुख्य खाद्य है, अत्यन्त आवश्यक है।

महात्माजी ने गौ के महत्त्व को खूब समझ लिया था। वह यह भी जानते थे कि उसको यह महत्त्व हिन्दू-समाज और हिन्दू-धर्म में क्यो दिया गया है। इसलिए गोसेवा को वह एक महत्त्वपूर्ण काम समझते थे। जब ग्रामोद्योगो का उद्धार और उन्हे प्रोत्साहन देने का काम उन्होने शुरू किया, तो उसमें गोसेवा को भी बहुत उच्च स्थान स्वाभाविक रीति से मिल गया। जब इसके लिए उन्होने गोसेवा-मडल की स्थापना सेठ जमुनालाल बजाज के अधीन करवाया तब उसे आज की रूढियो से बचाकर सच्ची सेवा का प्रबन्ध कराना और उसके निमित्त आवश्यक खोज कराना उस मण्डल का ध्येय तथा कार्यक्षेत्र बनाया।

हिन्दू गाय को माता समझते है। उसकी पूजा भी करते है। हिन्दू-पुराणो में क्षीर-समुद्र का वर्णन मिलता है। कृष्ण-लीला में तो गोपालन, दूध, मक्खन इत्यादि का विशद् वर्णन है ही। उन दिनो किसी की सम्पत्ति उसके गोधन के परिमाण में ही आंकी जाती थी। कितने ही युद्ध गौ के कारण हुआ करते थे। अब उस समय की प्रथा का आभास मात्र रह गया है। तो भी सब यज्ञो में गो और गोरस तथा गोबर का स्थान आज भी हिन्दू समाज मे महत्त्व रखता है। गोदान एक बडा पुण्य का काम समझा जाता है। किसी भी पावन तिथि पर अथवा बडे सस्कार के समय गोदान ही एक आवश्यक क्रिया माना जाता है। गोपाष्टमी के मेले के अवसर पर गौ की विशेष करके पूजा की जाती है। पर यह सब होते हुए भी आज जितनी दुर्दशा गाय की हिन्दुस्तान में होती है, वैसी कही भी नही! इसे खाने को पूरा नही मिलता। यह ठीक तरह से रखी नही जाती। नतीजा यह होता है कि यद्यपि मवेशियो की सख्या आज हिन्दुस्तान में बहुत है तो भी दूध बहुत ही कम मिलता है। बैल दिन-पर-दिन कमजोर होते जा रहे है, जिससे खेती भी खराब होती जा रही है। जैसे-जैसे आबादी बढती जाती है, गोचर-भूमि आबाद होती जाती है। गायो के चरने के लिए बहुत जगहो मे बहुत कम भूमि रह गई है, कितनी जगहो में तो बिल्कुल है ही नही।

गोसेवा में सुधार करना इन सब कारणो से अत्यन्त आवश्यक हो गया है। बकरीद के दिन गो-वध करने के कारण मुसलमानो के साथ जहां-तहां हिन्दू लड जाया करते है। पर गाय किस तरह सुख से रखी जाय, किस

तरह वह अधिक उपयोगी बनाई जाय, इस पर हिन्दू ध्यान नही देते । वे यह भी भूल जाते है कि जो गायें कुर्वानी के लिए अथवा और कारणो से कतल की जाती है उनमें से अधिक को तो हिन्दुओ के ही घरो से मोल लेकर कतल करनेवाले कतल करते है । बात यह है कि इस समय जैसी गायें हमारे पास अधिक करके होती है, उनका पालना कठिन हो गया है, उन पर जो खर्च किया जाता है वह वसूल नहीं हो पाता, सहायक होने के बदले गाय भार-रूप हो जाती है, तब इसका एक ही नतीजा हो सकता है—वह यह कि रखनेवाले के लिए उसे कतल करनेवाले के हाथ बेच देना ही अधिक लाभदायक हो जाता है । खास करके कलकत्ता—जैसे एक बडे शहर मे गाय को एक या दो व्यान से अधिक रखना इतना खर्चीला काम हो जाता है कि बहुत कीमती गाय को भी कतल करनेवाले के हाथ बेच देना जिन्दा गाय रखने से अधिक लाभदायक होता है । इससे मौजूदा गौओ का नाश तो होता ही है, सारी नस्ल दिन-दिन खराब होती जाती है । आज की कैफियत यह है कि अच्छी नस्ल की गाय मिलना कठिन होता जा रहा है ।

हिन्दू बहुत जगहो में बूढी, लँगडी और बीमार गायो के लिए पिंजरा-पोल खोलना एक धर्म का कृत्य समझते है । उसमें बहुत पैसे भी खर्च किया करते है । कही-कही इन गोशालाओ मे कुछ अच्छी गायें भी रखी जाती है । पर अधिक करके ये गोशालाएँ केवल बेकार जानवरो के लिए ही हुआ करती थी। महात्माजी ने बहुत ही विवेचना के बाद गो-सेवा और गोरक्षा की सारी पद्धति बदलने का निश्चय किया । इसलिए, एक विशेष गोशाला उन्होंने अपनी देख-रेख में कायम कराई, जिसके चलाने का भार सेठ जमुना-लाल बजाज और उनके भतीजा श्रीराधाकृष्ण बजाज ने अपने ऊपर लिया । फिर सभी ऐसे विद्वानो का, जो इस विषय का ज्ञान रखते थे, एक सम्मेलन किया गया । वहाँ विवादग्रस्त विषयो पर विचार करके एक नीति निर्धारित की गई । उस गोशाला में, तथा अन्य जगहों में, जो काम किया गया है उसका नतीजा यह निकला कि एक काफी अच्छा कार्यक्रम बन सका । यदि इस कार्यक्रम के अनुसार काम किया गया तो इसमें सन्देह नही कि गोवश की अच्छी उन्नति होगी, भारतवर्ष को दूध और बैल दोनो ही बेहतर मिलेंगे ।

अबतक ब्रिटिश गवर्नमेंट की तरफ से भी बहुत गोशालाएँ बनाई गई थी । खासकर फौज के लिए, उन बडे बडे शहरो के लिए जहाँ विशेषकर बडे अंग्रेज अफसर रहा करते थे, अच्छा दूध-मक्खन मुहैया करने के खयाल से ये गोशालाएँ कायम की गई थी । इसलिए इन गोशालाओ में स्वभावत अधिक ध्यान इस बात पर दिया गया कि ज्यादा दूध कैसे मिले । गायो में

कुछ ऐसी नस्ल की गायें होती हैं, जो दूध ज्यादा देती हैं, पर जिनके बछडे वैसे अच्छे और मेहनती तथा काम करनेवाले नही होते । दूसरी गायें ऐसी होती हैं, जो दूध तो देती हैं, पर उतनी मात्रा में नही जितनी मात्रा में पहली किस्म की गायें, किन्तु उनके बछडे बहुत अच्छे हुआ करते हैं, जो अधिक काम कर सकते हैं, अधिक बोझा ढो सकते हैं । एक तीसरी किस्म की ऐसी गायें हैं, जो दूध बहुत कम देती हैं, पर जिनके बछडे मामूली तौर से अच्छे हुआ करते हैं । चौथी किस्म की गाय ऐसी हैं, जो न ज्यादा दूध ही देती हैं और न अच्छे बछडे । अग्रेजो के जमाने में गोशालाओ में चूंकि दूध की ही ज्यादा खोज थी, इसलिए पहली किस्म की गायो को ही अधिक महत्त्व दिया गया, उनके पालने-पोसने का काम ज्यादा किया गया । जहाँ-जहाँ ऐसी नस्ल की गायें मिली, वे मँगाकर इन गोशालाओ में रखी गईं । इन गोशालाओ में उन्ही को प्रोत्साहन देकर उनकी ही तरक्की की गई । पर तो भी सरकारी गोशालाओ का, खासकर फौजी गोशालाओ का, खर्च काफी रहा । प्राय सभी ऐसी गोशालाएँ बहुत नुकसान उठाकर चलाई जाती रही, क्योकि उनके अपने सारे खर्च केवल दूध से ही निकालने पडते थे, बछडे किसी काम के नही होते थे, पर बछडे रखे भी नही जाते थे, जन्म के थोडे ही दिनो के बाद मास के लिए कत्ल कर दिए जाते थे—यदि वे बच भी जाते तो उनकी नस्ल ही ऐसी थी कि वे बहुत काम के नही होते थे ।

ऊपर कहा जा चुका है कि हिन्दुस्तान को दूध और बछडे—दोनो की ही जरूरत है । इसलिए यह स्पष्ट हो गया कि यहाँ दूसरी किस्म की गायों को ही, जहाँ तक हो सके, गाँव की दृष्टि से, प्रोत्साहन देना आवश्यक है । हाँ, बडे शहरो में—जहाँ केवल दूध की ही जरूरत हो, बछडो की नही—शायद पहली किस्म की गाय भी कुछ काम दे सकती है, यद्यपि यह भी शायद महँगी ही पडेगी, क्योकि केवल दूध से ही सारा खर्च निकालना पडेगा । अगर अग्रेजी अमलदारी की प्रथा के विरुद्ध बछडे जिन्दा रखे जायँ तो उनको खिलाना पडेगा, पर उनमे बहुत काम नही मिलेगा । इसलिए, यह निश्चय हुआ कि जो गोशाला कायम की जाय, उसमें अधिकतर इसी तरह की सर्वाङ्गीण—अर्थात् जो दूध और बछडे अच्छे देवें वही—गायें रखी जायँ और उनकी नस्ल भी सुधारी जाय ।

अक्सर देखा गया है कि दूध अच्छा देखकर लोग गायो को दूर-दूर से बहुत खर्च करके मँगवाते हैं । जब रेल नही थी, तब जानवरो का बहुत दूर आना-जाना नही हुआ करता था । इस तरह देश भर में कई नस्लें कायम हो गईं, जो किसी विशेष स्थान में ही पनपी और बढी । उन दिनो भी लोग

गोपालन और नस्ल के सुधार की बात समझते थे, इनका वैज्ञानिक शास्त्र भी जानते थे। जब जहाँ जिस तरह के बैल की जरूरत समझी गई तब तहाँ उस तरह के बैल, नस्ल का सुधार करके, तैयार किये गये, जो आज भी मिलते हैं। इस देश में ऐसे बैल मिलते हैं, जो धीमा तो चलते हैं, पर काफी बोझ ढो सकते हैं। ऐसे बैल भी मिलते हैं, जो बोझ कम ढो सकते हैं, पर तेज भाग सकते हैं प्राय घोडे के समान तेजी के साथ रथ दौडा सकते हैं। मामूली तौर से अक्सर बैल ऐसे होते हैं, जो हल खीचते हैं और बोझ ढोते हैं तथा साधारण चाल से चलते भी हैं। गायें भी ऐसी बनाई गई थी। तभी वे आज भी मिलती हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार के बैलो को पैदा कर सकती हैं, जो या तो अधिक परिमाण में दूध ही दे सकती है या अच्छे बैल ही।

जो प्रथा दूर दूर से गायो को लाकर रखने की, विशेकर अग्रेजी अमलदारी की गोशालाओ की वजह से, चल पडी थी वह कई तरह से हानिकर साबित हुई। एक तो अपने प्राकृतिक स्थान से बहुत दूर ले जाने की वजह से वह गाय वहाँ के जलवायु में ठीक खपती नही है, दूसरे उस कारण से उसे वह चारा खाने को नही मिलता जो अपने स्थान में उसे मिला करता था, तीसरे उसके योग्य सभी जगहो में साँड भी अच्छे नही मिलते। यदि वह गाय अपने स्थान पर ही रह गई होती तो वह अपनी नस्ल के बहुतेरे गाय-बैल पैदा करती, और अगर उसको अपने ही स्थान में उन्नति करने का साधन दिया गया होता तो वह एक उन्नत नस्ल पैदा करती, पर अन्य देश में पहुँचकर वह स्वय भी कुछ दिनो के बाद खराब हो जाती है, उसके वशज तो उतने अच्छे होने से रहे। यह सम्भव नही कि सूखे प्रदेश—पजाब, राजपूताना अथवा सिन्ध—की गायें बगाल या बिहार-जैसे सरस प्रदेश में उतने ही सुख से रह सकें जितना सुख उन्हे अपने जन्मस्थान में अनायास प्राप्त था। इसलिए यह एक सिद्धान्त के रूप में निकाला गया कि किसी एक जगह की नस्ल की गायो को कही दूर ले जाकर उनसे नस्ल बढाने का प्रयत्न बहुत करके सफल नही होगा। जहाँ जिस नस्ल का जानवर अधिक होता है वही का जलवायु उस नस्ल के लिए अनुकूल ह। यदि उसे वहाँ उन्नत करने का प्रयत्न किया जाय तो वह प्रयत्न अधिक सफल हो सकता है। जो थोडे-बहुत प्रयोग किये गये हैं उनका नतीजा बहुत अच्छा निकला है। नस्ल सुधारने में गाय और साँड दोनों की उन्नति आवश्यक है। पर गाय चाहे कितनी भी अच्छी हो, अगर उसको साँड अच्छा न मिले, तो केवल उनका बच्चा ही खराब न होगा, बल्कि उसका दूध भी कम हो जायगा। इसलिए, अगर किसी स्थान में मामूली तौर से सर्वाङ्गीण गायें हो और उनके साथ अधिक दूध

देनेवाली नस्ल का सांड लगाया जाय, तो देखा गया है कि दूध बढ जाता है। इसलिए अगर कही दूसरी जगह से जानवर लाना ही आवश्यक समझा जाय, तो सांड लाना अधिक लाभदायक होगा।

गो-सेवा-सघ का यह दूसरा सिद्धान्त-सा बन गया है कि गायें कही दूर न ले जाई जायें, सबसे अच्छी स्थानीय नस्ल को ही उन्नत करने का प्रयत्न किया जाय, अगर शास्त्रीय ढग से देख-विचार कर यह मालूम हो जाय कि अमुक प्रकार का सांड अधिक लाभदायक होगा, तो उस प्रकार का सांड वहाँ मँगाया जाय, गाय नही, इस प्रकार स्थानीय नस्ल को सुधारना ही वहाँ का बडा सुधार माना जाय। वास्तव में नस्ल सुधारने का काम कठिन है। इसमे शास्त्रीय ज्ञान और अनुभव की बडी जरूरत है। इसलिए यह काम हर कोई नही कर सकता। जहाँ भी इसका प्रयत्न किया जाय, ज्ञान और अनुभव रखनेवाले अच्छे योग्य व्यक्ति ही इसका भार उठायें। नही तो डर है कि ऐसे प्रयत्न से अनर्थ भी हो जाय।

गो-सेवा के सम्बन्ध में महात्माजी ने एक और नया सुधार देश के सामने रखा, जो हिन्दुस्तान के लिए एक घृणित बात थी। हिन्दू जबतक गाय जीती रहती है तबतक उससे जो कुछ काम निकाल सकते है, निकालते है, किन्तु उसके मर जाने पर उसे छूना भी पसन्द नही करते है। इसलिए जिस जाति के लोग मरे जानवर को उठाते और उसके चमडे इत्यादि निकालते है, वे आज हिन्दू-समाज में अछूत समझे जाते है। चमडे से काम लेने मे हिन्दू हिचकता है। वह चमडे का काम करना नही चाहता। महात्माजी ने देखा कि मरी गायो के चमडे इत्यादि से यदि काम न लिया जाय तो गाय रखना आर्थिक दृष्टि से शायद सफल न हो। इसलिए उन्होने समझाया कि एक मरी गाय का चमडा, मास, हड्डी, सीग, चर्बी, स्नायु इत्यादि सभी चीजो को काम मे लाना चाहिए, इनसे जो कुछ पैदा किया जा सके, पैदा करना चाहिए। उन्होने वर्धा के पास नालवाडी में एक चर्मालय खुलवाया जहाँ मरे मवेशियों का चमडा निकालकर पकाया और तैयार किया जाता था, मास और हड्डी की खाद बनाई जाती थी, स्नायु से तांत बनती थी, चर्बी निकालकर जिन कामो में लगाई जा सकती उनमें लगाई जाती थी। इस तरह, देखा गया कि मरी गाय के यदि सभी अग ठीक उपयोग में लाये जायें तो वह एक अच्छी रकम देती है।

कलकत्ता जैसे बडे शहर में तो व्यापारियो ने यह भी दिखलाया है कि गाय जब विसुख जाती है तब यदि वह पाली जाय, उस वक्त तक के लिए इन्तजार किया जाय जब वह फिर दूध देने लगे, उसके बछडे को भी आद-

श्यकता के अनुसार दूध दिया जाय, तो इस तरह गाय पालना इतना खर्चीला हो जाता है कि उसमें मुनाफा नही हो सकता। इसलिए, वहाँ बहुत व्यापारी अच्छा दूध देनेवाली गाय बाहर से ले जाते है, और जहाँ तक हो सकता है, उससे पहले व्यान में ही दूध से पैसे निकाल लेते है; बच्चे को भी बेच देते है। पहले अच्छी कीमत में बच्चा बिक जाया करता था। जो दूध बच्चा पीता था वह भी बच जाया करता था। पैसे भी निकल आते थे। कतल करनेवाले इस तरह की सूखी गाय को बहुत कम कीमत देकर खरीदलेते थे और बेचनेवाले कम कीमत पर बेचकर भी मुनाफे में रह जाते थे, क्योकि सूखी गाय को खिलाने का खर्च बच जाता था, सिर्फ दूध से ही इतने पैसे निकल आते थे कि गाय की कीमत और उसके पालने का खर्च कुछ मुनाफे के साथ लौट आता था। कसाई मास, चमडा, चर्बी इत्यादि से जितना पैसा निकालता था उतने से ही वह जिस दाम पर गाय खरीदे हुए होता था उससे अधिक फायदा उसको हो जाता था। इसलिए उसको इस तरह की गाय खरीदकर कतल करने में मुनाफा रहता था।

महात्माजी को ये सब बातें मालूम हो गई थीं। इसलिए उन्होने इस बात पर जोर दिया कि गायो की रक्षा तभी हो सकती है, जब उनका पालन केवल भार न होकर कुछ मुनाफा देनावाला हो जाय, अर्थात् आर्थिक दृष्टि से लाभ-दायक हो जाय, इसके लिए चार चीजें जरूरी थी—(१) गाय अधिक दूध दे, (२) उसके बछडे अच्छे हो, (३) उसका गोबर इस तरह काममें लाया जाय कि वह खाद बनकर खेती के लिए लाभदायक हो जाय, (४) उसके मर जाने पर उसके चमडे इत्यादि से जो कुछ निकाला जा सकता है वह निकाल लिया जाय। अच्छा दूध और बछडा देने वाली गाय नस्ल सुधारने से ही पैदा हो सकेगी। इसलिए उन्ही पशुओ की नस्ल सुधारने पर उन्होने जोर दिया। उनके प्रयोग का फल यह निकला कि यह काम, जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, यदि ज्ञान और बुद्धिमत्ता के साथ किया जाय तो, सफल हो सकता है। खाद के सम्बन्ध में प्रयोग करके उन्होंने यह देख लिया कि इससे खेती की काफी उन्नति हो सकती है। चमडे के काम से, जो समाज की रूढियो के कारण सबसे कठिन था, यह साबित हुआ कि यह भी मुनाफे का ही काम है जैसा ऊपर कहा गया है, चमडा निकालना इत्यादि घृणित काम समझा जाता था। उस काम को आवश्यक काम बतलाकर ऐसे लोग उसमे लगाये गये जिनकी जाति ऐसे काम के नजदीक जाती नही थी। घृणा का कारण यह भी था कि वह काम भी गदा है। इसलिए उसके करने के तरीके में सुधार करके उसमें सफाई लाने का प्रयत्न किया गया, जिससे उसके विरुद्ध जो भावना गदगी के कारण थी वह कम हो

हो गया। आजकल लोग ऐसे सांडो को अपने खेत में चरने नही देना चाहते; क्योकि जमीन उनके पास इतनी कम होती है कि उसकी फसल से परिवार का पालना उनके लिए कठिन हो जाता है। नतीजा यह होता है कि दागा हुआ मामूली बाछा घर-घर जैसा-तैसा चारा खाता फिरता है। अच्छे सांड से ही गौएँ सस्कारी हुआ करती है। यहां सांड का यह हाल है। ऐसी दशा में नस्ल के बिगडने के सिवा दूसरा नतीजा नही हो सकता। इसलिए, आज की स्थिति में मामूली तौर से सभी बाछो को बधिया करा देना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रथा को जोर से चलाना चाहिए। साथ ही, अच्छे से-अच्छे सांडो को, चाहे वे जहां से मिलें, लाकर पालना चाहिए। जो लोग मिला-जुलाकर उसे पालें वे अपनी ही गाय के लिए उससे काम लें। यदि एक गृहस्थ उसे न पाल सकता हो तो कई गृहस्थ सहयोग करके उसे पालें। जो उसके पालन में शरीक न हो, वह जब कभी उस सांड से काम ले तब शुल्क देकर ही। इस तरीके से नस्ल का सुधार थोडे प्रयत्न में हो सकता है। पर इसके लिए अच्छी नस्ल का सांड खास तौर की देखरेख में रखना तथा सावधानी से उसका पालन पोषण करना आवश्यक है। उतना ही आवश्यक यह भी है कि दूसरे बछडे बधिया कर दिये जायें।

एक और काम जरूरी है। नस्ल के सुधार में गाय भी अच्छी होनी चाहिए। यदि बूढी—कम दूध और कमजोर बछडे देनेवाली—गाय भी वियाती रहे तो नस्ल के सुधार में कठिनाई होगी। इसलिए इस तरह की गायो को भी किसी-न-किसी तरह बच्चा जनने से रोकना जरूरी है। इसका एक ही रास्ता है। वह यह है कि सांडों के साथ उन गायो का सम्पर्क न होने दिया जाय। यदि ऐसा चरागाह मिल जाय, जहां कम-से-कम खर्च में ऐसी गायें रखी जा सकें, जहां कोई सांड उनके बीच जाने नही पावे, तो एक पीढी के भीतर ही सब गायें समय पाकर खुद मरकर अपनी नस्ल का अन्त कर सकती है। इसमें किसी तरह के गोवध की आवश्यकता अथवा आशका नही और न इसमें गाय को कष्ट देने की ही जरूरत है। गोचर-भूमि में उनपर ऐसा नियन्त्रण हो कि सांडो के साथ उनका समागम न हो पाये। जब वे मरें तो उनके हाड-मास से जो कुछ निकाला जा सके तथा उनके जीते-जी मूत्र-गोबर से जो कुछ पैदा किया जा सके, वह कर लिया जाय। दोनो तरह की आमदनी मिलाकर उनपर जो खर्च पडा होगा वह अगर सबका सब नहीं निकल आवेगा तो उसका बडा अश जरूर मिल जायगा।

महात्माजी ने गोशाला के विविध प्रयोगों से गो-सेवा को एक ऐसा रूप दे दिया है कि वह सचमुच एक लाभप्रद व्यवसाय हो जाय। यदि उनके

कार्यक्रम को देश ने अपना लिया तो इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ दूध की इतनी कमी है वहाँ दूध अधिक मिलने लगे, घी-मक्खन जहाँ दुर्लभ हो रहा है वहाँ वह प्रचुर मात्रा में मिलने लग जाय, बैल न मिलने अथवा उसके कमजोर हो जाने से खेती जो कमजोर होती जाती है उसमें जान आ जाय, गोमूत्र-गोबर और मांस-हड्डी की खाद से उपज अधिक बढ़ जाय, गोवध के कारण जो अच्छी नस्लों का लोप-सा होता जाता है वह बन्द हो जाय, नस्ल में काफी तरक्की हो जाय, गोपालन भार न रहे, एक लाभदायक पेशा हाथ आ जाय और दूध के साथ-साथ अन्न की वृद्धि भी देश में हो जाय। इस विषय में भी महात्माजी ने एक नई विचार-धारा और नया दृष्टिकोण हमारे सामने रखा है। ये सब चीजें सिर्फ अटकल और अनुमान की ही नहीं रह गई हैं, बल्कि प्रयोग द्वारा छोटे पैमाने पर प्रमाणित भी हो चुकी हैं। साथ-ही-साथ, उन्होंने ऐसा प्रयत्न किया कि जो काम घृणित समझा जाता था, जिससे दूर रहना इज्जत पाने का एक कारण माना जाता था, वह घृणित काम न रह जाय और इज्जत पाने की जड़ भी कट जाय।

अठाईसवाँ अध्याय

वर्धा में रहते-रहते महात्माजी ने निश्चय किया कि गांव का सुधार अगर करना है तो गांव के लोगो के जीवन को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, उनमें रहकर उनकी सभी बातो से परिचित हो जाना चाहिए और जहां-जहां उनको किसी असुविधा या कठिनाई का मुकाबला करना पडता हो, सबको जान लेना चाहिए, यह ज्ञान तबतक पूरा नही हो सकता जबतक आदमी उन्ही के बीच में उन्ही की तरह रहने न लगे और उनके अनुभव को अपना अनुभव न बना ले, इसलिए गांव में देहाती जीवन बिताना अत्यन्त आवश्यक है, वह जीवन ऐसा नही है कि औरो पर ही एक प्रकार का बोझ हो जाय और दूसरो का आराम कम करके अपना आराम बढ़ा ले, बल्कि वह ऐसा है कि जहां तक हो सके, दूसरो के सुख के बढाने में उसके द्वारा सहायक हुआ जाय ।

वर्धा एक छोटा-सा शहर है । उस वक्त की आबादी पचीस हजार होगी । पर तो भी वह एक शहर ही है । इसीलिए उन्होने वहां से चार मील की दूरी पर 'सेगांव' नामक गांव मे जाकर रहने का निश्चय किया । यह गांव यो तो चार मील दूर है, पर उन दिनो वर्धा से वहां तक कोई सडक ऐसी नही थी जिसपर मोटर इत्यादि वहां जा सके । बैलगाडी किसी तरह सूखे दिनो में चली जाती थी । पर वर्षा मे वहां जाना कठिन हो जाता था । वहां की मिट्टी काली है । इसलिए, जब पानी बरसता है, तो वह इतनी गीली और लचीली हो जाती है कि आदमी के पैर बहुत जगहो में धंस और फिसल जाते हैं । वर्धा से सेगांव के रास्ते में कही-कही तो पथरीली जमीन मिलती है और कंटीली झाडियां भी यहां से वहां तक लगी हुई है । ऐसे गांव की एक छोटी-सी झोपडी में, जहां पहले से श्री मीरा बहिन जाकर रहती थी, महात्माजी ने जाने का निश्चय किया । वहां एक-आध झोपडी और तैयार हो गई । कुछ दिनो तक तो महात्माजी ने इस तरह का नियम रखा कि

वहाँ दूसरे लोग न रहे। यहाँ तक कि श्री महादेव भाई देसाई भी वहाँ नही रहते थे। उनको रोजाना मगनवाडी से सेगाँव जाना-आना पडता था। सुबह जाकर वह दिन-भर का काम करते और सध्या को लौटकर मगनवाड़ी आते; फिर जो कुछ करना होता, करते। दूसरे लोग भी बहुत ही कम जा-आ पाते; क्योकि जाने में काफी कठिनाई होती। आहिस्ता-आहिस्ता लोगो ने बैलगाडी में आना-जाना आरम्भ किया। कुछ दिनो के बाद तो सेठ जमनालाल बजाजजी ने मोटर-कार के पहिए लगाकर एक छोटी-सी बैलगाडी बनवा ली, जिसमें दो आदमी बैठकर जा सकते थे। आहिस्ता-आहिस्ता यहाँ से वहाँ तक एक ऐसी सडक निकली कि और अच्छे दिनो में ताँगे भी आने-जाने लगे। कई वर्षो के बाद पक्की सडक बन गई। अब तो आसानी से मोटर-कार जा-आ सकती हैं। टेलीफोन भी लग गया है। यह सब-कुछ कई वर्षों में हो सका। पर जब केवल हिन्दुस्तान के ही दूर-दूर के प्रान्तो से नही, विदेशो से भी बहुतेरे लोगो का आना-जाना होने लगा, तब इन सुविधाओ के बिना काम चल ही नही सकता था।

गाँव तो छोटा है। आबादी कुछ हरिजनो की है और कुछ दूसरे लोग भी हैं। कुछ दिनो तक महात्माजी के वहाँ जाने से लोगों पर कोई विशेष असर पडता नजर नही आया। छूत-अछूत न मानने से लोगो ने आश्रमवासी का एक प्रकार से समाज-बहिष्कार किया। पर जो लोग आश्रम में रहते थे वे एक-न-एक प्रकार से गाँव वालो की सेवा करते ही थे—जब-तब गाँव की सफाई कर देना, कोई बीमार पड जाय तो उसकी सेवा-सुश्रूषा कर देना इत्यादि। प्रार्थना से भी वे आहिस्ता-आहिस्ता प्रभावित होने लगे। फिर बच्चो को शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। वहाँ गोशाला खुल जाने के बाद बच्चो को दूध भी दिया जाने लगा। आश्रम में चरखे नियमपूर्वक चला करते थे। इसका भी कुछ-न-कुछ असर लोगो पर पडता रहा। वहाँ का जीवन ठीक गाँव वालो के जीवन की तरह बनाया गया। महात्माजी के लिए जो झोपड़ी बनी वह गाँव के लोगो के रहने की झोपडी-जैसी ही बनी। बाँस-फूस और मिट्टी की दीवारें, खपडे की छाजन, मिट्टी से लिपी-पुती दीवार और जमीन। बस, चटाई बिछाकर उस पर छोटी-सी गद्दी रख महात्माजी बैठा करते थे। एक छोटा-सा पखा छप्पर से लटकाया हुआ था। जब कोई आता था, वही खीचा करता था, या स्वय भी जरूरत पड़ने पर खींचकर थोडी-बहुत हवा कर लिया करते थे। सबसे बढकर सफाई का खयाल बहुत था। शौच इत्यादि के बाद उसका बर्तन साफ करना, मल को खेत में इस प्रकार डालना कि उसकी गदगी देखने में न आवे, उसकी बदबू न मिले,

उससे अच्छी खाद बनकर खेत को उपजाऊ बना दे—यह सब आश्रमवासी खुद किया करते थे। भोजन के सम्बन्ध में बहुत करके जो साग सब्जी वहां होती थी उसी से काम चलाया जाता था। आटा वहीं पीस लिया जाता था। 'पूर्ण चावल' भी वहीं बना लिया जाता था। आहिस्ता-आहिस्ता मकान बढ़ने लगे, काम बढ़ने लगे, आश्रमवासियों की संख्या भी बढ़ने लगी। कितनी ही संस्थाओं के केन्द्र उस गांव में स्थापित हो गये। यहां तक कि उसका नाम भी 'सेगांव' से बदलकर 'सेवाग्राम' हो गया, जो थोड़े ही दिनों में बहुत प्रसिद्ध हो गया। महात्माजी की इच्छा थी कि जिस तरह गांव के लोग रहते हैं उसी तरह वहां रहा जाय, वहां जो कुछ सुविधा मिल सकती थी उसीके आधार पर वहां रहा जाय, जितनी सफाई से दिन बिताया जा सकता है, बिताया जाय, इस तरह ग्रामीणों की रहन-सहन और उनके जीवन में सुधार किया जाय।

उदाहरण के लिए उनके कुछ कष्टों का जिक्र करना अच्छा होगा। गांव में सांप अक्सर हुआ करता है। वहां भी था। किस तरह सांपों से लोगों की रक्षा हो, यह एक प्रश्न सामने आया। आरम्भ में वहां कोई महात्माजी के पास जाता तो एक बक्स देखने को मिलता जिसके चारों ओर शीशे की दीवार होती और सिरे पर ढक्कनदार तख्ता लगा रहता। वहां जो सांप मिलते वे पकडकर नमूने के लिए इसी में रखे जाते। कौन सांप विषैला होता है और कौन नहीं, यह जानना आवश्यक हो गया। इसलिए इस विषय का अध्ययन पहले-पहल ही शुरू हुआ। स्थान-स्थान के सांपों के नमूने देख-देखकर तैयार रखे गये। किस तरह सांप पकडकर बक्स में रखे जायें, यह भी कुछ लोगों ने सीख लिया। एक बांस के ऊपरी सिरे पर सूराख करके दूसरे वैसे ही बांस से कुछ दूर पर रखकर दोनों के बीच एक लम्बी रस्सी लगा देते, जिसका एक छोर सिरे के ऊपर इस तरह बंधा हुआ होता कि वह उसमें से निकल न सके और दूसरी तरफ वह इच्छानुसार ढीली भी की जा सके। सांप पकडने में यह बहुत काम देती। सांप जिधर से आता हो उधर के रास्ते में यह रख दी जाती। सांप जब लगर और रस्सी के बीच में आ जाता तो रस्सी खींचकर वह बांध लिया जाता। इस तरह आसानी से सांप पकडा जाता था। इन सब प्रयोगों का मतलब यह था कि गांव के लोगों को बतला दिया जाय कि वे सांपों को पहचान लें और उनमें जो जहरीले हों उनसे वे बचे रहें तथा जिसको वे पकडना चाहें उसे पकडें भी। जो सांप आश्रम में मिलते थे वे मारे नहीं जाते थे। वे पकडकर रख लिये जाते थे। फिर गांव से दूर जंगल-झाड में ले जाकर छोड दिये जाते थे।

महात्माजी को इस बात का स्वयं अनुभव करना पड़ा कि गाँव के लोग मलेरिया द्वारा किस तरह सताये जाते हैं। वहाँ मलेरिया का प्रकोप बरसात के दिनों में, और कुछ बाद तक भी, रहा करता था। महात्माजी को स्वयं मलेरिया हो गया। वर्धा के डाक्टर वहाँ जाया करते थे, पर महात्माजी अभी उनसे अपनी चिकित्सा नही कराते थे, जबतक उनकी हालत कुछ अधिक खराब न हुई। तब उनको शहर के अस्पताल में लाने की बात चली। महात्माजी का विचार था कि जो सुविधा सेगाँव के लोगो को न मिलती हो उसे वह सेगाँव में ही रहकर कैसे लेवें। इसलिए वह वर्धा आकर अपना इलाज कराना नही चाहते थे, क्योंकि सेगाँव के लिए वह सुविधा अप्राप्य थी।

यद्यपि सेगाँव देहात था तो भी वहाँ दूध की कमी थी। इसलिए वहाँ पर केवल आश्रमवासियो से लिए ही नही, गाँववालो के लिए भी, गोशाला का खोलना आवश्यक हो गया। महात्माजी के सिद्धान्त के अनुसार वहाँ भी एक गोशाला चलने लगी जिससे वहाँ के बच्चो को भी दूध दिया जाता था।

सेगाँव में रहते-रहते नई तालीम का एक कार्यक्रम महात्माजी ने देश के सामने रखा। नई-तालीमी-सघ का केन्द्रीय दफ्तर भी सेगाँव में ही कायम किया गया, जहाँ नई-तालीमी-सघ की रीति से चलनेवाली एक पाठशाला भी कायम होकर चलने लगी। चरखा-सघ की ओर से एक खादीशाला भी कायम हो गई, जिसमें चरखा इत्यादि से सम्बन्ध रखनेवाली सभी क्रियाओं की शिक्षा, भिन्न-भिन्न प्रान्तो से आये हुए विद्यार्थियों को, दी जाती है। चरखा-सघ का दफ्तर भी उठाकर वही लाया गया। इस प्रकार, यदि आज कोई जाकर देखे तो, सेवाग्राम में बहुतेरे मकान बन गये हैं। काफी जमीन वहाँ के आश्रम के कब्जे में है, जिसमें खेती होती और ईख बोई जाती है। लोगों को इस बात की भी शिक्षा मिलती है कि खेत की उन्नति किस तरह की जा सकती है। जैसा ऊपर कहा गया है, जो चीज वर्धा में नहीं हो पाती उसकी भी खेती की जाती है। इस तरह वहाँ अच्छा मोटा गन्ना, बडे-बडे पपीते, ज्वार और काफी साग-सब्जी पैदा की जाती है। जितनी संस्थाएँ वहाँ चलती हैं सबका अपना-अपना इन्तजाम है। १९४२ का सग्राम छिडने के पहले वहाँ एक खासी बस्ती बस गई, जिसमें बाहर के लोग भी, जिनमें विदेशी भी अक्सर हुआ करते थे, आकर ठहरते। वे लोग महात्माजी के जीवन को देखते और जो प्रवृत्तियाँ वहाँ चल रही थी उनका अध्ययन करते। एक अच्छा सुव्यवस्थित अस्पताल भी बिडला-कुटुम्ब ने वहाँ बनवा दिया है। पर यह सब कुछ होते हुए भी सेवाग्राम को शहर नहीं कह सकते। वहाँ की रहन-सहन और सब बातें गाँव-जैसी ही हैं।

जिस समय सडक इत्यादि नही बनी थी और जाना-आना पैदल ही हुआ करता था, मेरे स्वर्गीय मित्र श्री मथुरा प्रसादजी एक वार वहाँ पहुँचे। मैं भी था। सध्या हो आई। थोडी-बहुत घटा भी दीखने लगी। मैं वर्धा चला आया। पर उनकी इच्छा हुई कि वह सन्ध्या की प्रार्थना के बाद वर्धा लौटेंगे। प्रार्थना के वाद वह चले। तबतक वर्षा शुरू हो गई। हमलोग वर्धा में समझते थे कि वह अब यहाँ नही लौटेंगे। पर वह कब माननेवाले थे? सडक साफ दिखाई नही पडती थी। जहाँ-तहाँ उनका पैर प्राय घुटने तक मिट्टी में घुस गया। नतीजा यह हुआ कि पैर किसी तरह से निकला भी तो एक पाँव का जूता उसी में रह गया। दूसरे पाँव के जूते की कैफियत भी वही रही। रात में दस-ग्यारह बजे के करीब वह लौटे—सारे कपडे भीगे हुए, कीचड से लदफद, पैर में काटे भिदे हुए, अजीब सूरत। उस समय सेवाग्राम से लौटने में यही सब हानि और कठिनाई पडती थी। इन कारणो से जिला-बोर्ड ने सेगाँव तक पक्की सडक बनवा देना मुनासिब समझा। कुछ दिनो के बाद वह सडक बन गई।

सेगाँव में श्री परचुरे शास्त्री रहते थे। महात्माजी जेल में उनसे परिचित हो चुके थे। वह सस्कृत के अच्छे विद्वान थे। पर कुष्ठ-रोग से पीडित थे। कही दूसरा आश्रम न पाकर यहाँ आये थे। यह एक समस्या हो गई कि वह कहाँ रखे जायँ और उनके साथ क्या व्यवहार किया जाय। महात्माजी ने उनको अपने साथ रहने दिया। उनके लिए एक झोपडी बनवा दी। उसीमें वह रहने लगे। महात्माजी खुद उनकी देख-रेख करते। जब टहलने निकलते तो उनकी झोपडी की ओर जरूर चले जाते। रोज उनकी देख-भाल करते। स्वय ही उनकी सेवा भी करते थे। कुछ दिनो तक वहाँ रहकर शास्त्रीजी गुजर गये।

मुझे भी सेवाग्राम-आश्रम में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यो तो मैं वर्धा में सेठ जमनालाल बजाज के अतिथि-भवन में ठहरा करता और सेवाग्राम जाया-आया करता था। कितनी बार दिन का या सन्ध्या का भोजन वही कर लिया करता था। काफी समय वही बिताता था। रात को वर्धा में आकर सोया करता था।

महात्माजी प्रतिवर्ष, जाडे के दिनो में, कुछ समय के लिए बारडोली जाकर वहाँ के आश्रम में ठहरा करते थे। एक-दो बार मुझे भी बारडोली जाकर उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला। मुझे महात्माजी के चरणो में बैठने का, जो कुछ वह बातें करते उसे सुनने का तथा उनके जीवन को निकट से देखने का बहुत सुअवसर मिला। बहुतेरे लोग ऐसा मानते हैं कि

मेरे पास उनके बहुत पत्र होंगे या उनके सम्बन्ध में लेखादि होंगे। बहुत लोग डायरी लिखा करते है, पर मैं ऐसा सुस्त आदमी हूँ कि डायरी वगैरह के रूप में कुछ नही लिख रखा। मैंने महात्माजी को पत्र भी बहुत कम लिखा। जब कोई बात होती, पूछ लिया करता था, उतने से ही सतोष कर लिया करता। बहुतेरी बातें पूछने की जरूरत ही नही पड़ती, क्योंकि अक्सर जब मुझे जरूरत पडती, मेरे दिल में प्रसगवश कोई प्रश्न उठता, मुझे पूछने की जरूरत मालूम होती, तो मैं सोचता ही रहता कि पूछूँ, तबतक दूसरे ही प्रश्नकर्त्ता उनसे पूछ लेते, बस उनके उत्तर से मेरा भी समाधान हो जाता, अथवा कम-से-कम यह मालूम हो जाता कि इस प्रश्न का यह उत्तर महात्माजी देते, अधिक पूछताछ करने की कोई जरूरत नहीं है और न उससे कोई लाभ ही है। इस तरह, इतने वर्षो के घनिष्ठ सम्बन्ध के बाद भी, उनसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई सामान या साहित्य मेरे पास नही है। जिस समय एक बार हम बारडोली जा रहे थे, मैंने उनसे कहा कि रचनात्मक कार्यक्रम की बहुत चर्चा होती है, पर उससे सम्बन्ध रखनेवाला, एकत्र ही थोडे में सब बातें बता देनेवाला, साहित्य नहीं है—प्रयोग-विशेष पर 'हरिजन' से खोज खोज कर लेखो को पढ़ना कठिन और दुर्लभ हो जाता है, इसलिए यदि एक पुस्तिका हो जाती, जिसमें इस कार्यक्रम के सभी अगों पर प्रकाश डाला जाता और सभी बातें इकट्ठी मिल जाती, तो बहुत अच्छा होता। उन्होने इस बात को पसन्द किया। बारडोली के रास्ते में ही, रेल पर ही, वह पुस्तिका लिख दी, जो अभीतक प्रचलित और प्रसिद्ध है। मुझसे भी उन्होंने कहा कि तुम भी अपने विचारो को लिख डालो। मैं रेल पर तो नही, पर बारडोली पहुँचकर लिख सका। वह रचनात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध की पुस्तिका है, जो नवजीवन-प्रकाशन-मदिर (अहमदाबाद) द्वारा प्रकाशित हुई है।

———

उनतीसवाँ अध्याय

खाद्य-पदार्थों के सम्बन्ध में महात्माजी के किये गये प्रयोगों का थोड़ा जिक्र पहले आया है। जब वह इंगलैंड में पढते थे तभी यह प्रयोग शुरू किया था। वहाँ उनको निरामिष भोजन करना था। उसके मिलने में दिक्कत होने की वजह से उन्होंने स्वयं अपना भोजन बनाना शुरू किया। साथ-ही-साथ यह खयाल हुआ कि सादा-से सादा भोजन कैसे बन सकता है और काफी हो सकता है। उन्होंने निरामिष-भोजियों का एक संगठन कायम किया, जिसके वह बहुत दिनों तक मंत्री बने रहे। ऐसे प्रयोग का सम्बन्ध स्वास्थ्य के साथ था। सारे जीवन में उन्होंने स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रयोगों को जारी रखा। दक्षिण अफ्रिका से हिन्दुस्तान तक में ऐसे मौके आये जब उनको बडी कठिनाइयों का सामना करना पडा। उन्होंने खाद्य तथा प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में कई लेख लिख डाले है, जो प्रसिद्ध हो चुके हैं। उनके ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी लेखों का संग्रह पुस्तक-रूप में अलग छपा है। यदि उन सबको मिलाकर देखा जाय तो उन सभी का मौलिक सिद्धांत सत्य और अहिंसा पर ही आश्रित है। मनुष्य के जीवन में स्वास्थ्य एक अमूल्य वस्तु है। उसे मनुष्य अपने अप्राकृतिक भोजन तथा रहन-सहन से बिगाडता है। यदि भोजन जैसा चाहिए वैसा ही हो और उतनी ही मात्रा में खाया जाय जितना जीवन और स्वास्थ्य के लिए जरूरी है तथा वह भी स्वाद के लिए नहीं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए ही खाया जाय, तो केवल स्वास्थ्य ही अच्छा न रहे, उसका असर चरित्र पर भी पडकर रहे। बीमार शरीर ही अप्राकृतिक अवस्था है। शरीर के बीमार हो जाने पर उसे प्राकृतिक अवस्था में लाने के लिए प्रकृति स्वयं प्रयत्न करती रहती है। वही चिकित्सा सबसे अच्छी है जो प्रकृति के इस काम में सहयोग दे। इसलिए ओषधि-उपचार बहुत करके सहायक होने के बदले हानिकर होता है। इसीलिए महात्माजी प्राकृतिक चिकित्सा पर जोर देते थे। उस पर उनका दृढ विश्वास था।

उनके विश्वास की कठिन परीक्षा भी हुई थी। उन्होने अपने लड़के की कड़ी बीमारी में, ईश्वर का नाम लेकर, दूसरी चिकित्सा न करके, प्राकृतिक चिकित्सा का ही सहारा लिया था। ईश्वर की दया से वह अच्छे भी हो गये। उनके ध्यान में इस सम्बन्ध की एक बात और भी रहा करती थी। आजकल की खर्चीली पद्धति, जो विशेषकर ऐलोपैथिक चिकित्सा के नाम से प्रचलित है, गरीबो को सुलभ नही है। हिन्दुस्तान के लाखो गाँव ऐसे है जिनमें गरीब लोगो को इस तरह की खर्चीली चिकित्सा मिलना असम्भव है। प्राकृतिक चिकित्सा, जिसका अर्थ है प्राकृतिक जीवन द्वारा अपने को बीमार होने ही न देना, अगर प्रचलित हो जाय तो अमीर और गरीब सबके लिए वह एक सुलभ और अत्यन्त लाभप्रद चीज साबित हो।

हमारे शास्त्रो ने कुछ ऐसा सिखाया है और हमारी सस्कृति कुछ ऐसी बनी है कि उनसे आनन्दमय सत्य निकलता है। आजकल अक्सर लोग कह दिया करते है कि धर्म के साथ राजनीति का कोई सम्बन्ध नहीं, सार्वजनिक जीवन का व्यक्तिगत जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नही है—इत्यादि, अर्थात् जीवन के हर एक पहलू को हम और-और पहलुओ से अलग मानते है, यह नहीं देखते कि एक का असर दूसरे पर कैसा पडता है। हमारी सस्कृति इसके विपरीत बताती है। मनुष्य का शरीर उसके मन से अलग नही किया जा सकता है—अर्थात् स्वस्थ मन के साथ ही स्वस्थ शरीर हो सकता है और स्वस्थ शरीर के साथ ही स्वस्थ मन भी। शुद्ध भोजन के बिना न तो स्वस्थ शरीर ही रह सकता है और न स्वस्थ मन ही। यदि व्यक्ति स्वस्थ नही है तो व्यक्ति का समूह भी स्वस्थ नही हो सकता। स्वस्थता चित्त की, शरीर की और क्रिया की भी होनी चाहिए। इस दृष्टि से जीवन के सभी पहलू, विचार और गुण तीन श्रेणी में विभक्त किये गये है—सत्त्व, रज और तम। इनमें से जिसका बाहुल्य अथवा प्राधान्य जिस मनुष्य में होता है, जिसका विश्वास जिस तरह के समाज और काम में होता है वह तदनुसार सात्त्विक, राजस अथवा तामस कहा जाता है। इस तरह खाद्य, शरीर, स्वास्थ्य, मानसिक सत्ता और विचार की पवित्रता का एक दूसरे से इस तरह का सम्बन्ध है कि एक दूसरे पर एक दूसरे का प्रभाव पडे बिना रह नही सकता। तामस भोजन करके सात्विक प्रवृत्ति लाना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। उसी तरह राजसी शरीर के साथ तामसी प्रमाद अथवा सात्त्विक कर्म भी कठिन होता है। इसलिए हमारे शास्त्रो के अनुसार जीवन में आहार-विहार का समन्वय किया गया है, जिससे मनुष्य अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

महात्माजी के बताये हुए ग्यारह व्रत इसी सिद्धान्त के अनुसार बने हैं। वे व्रत सब-के-सब नये नही हैं। वे हमारे शास्त्रो में बहुत करके पाये जाते हैं। उनका पालन बचपन से ही सिखाया जाता है, या यो कहे कि जन्म के पूर्व से ही सिखाया जाता था तो यह अतिशयोक्ति नही होगी, क्योकि सन्तान उत्पन्न करने के कृत्य में भी सयम और नियम बताये गये हैं। स्त्री-पुरुष का ससर्ग केवल क्षणिक शारीरिक सुख के लिए ही नही, पर ससार चलाने के लिए भी आवश्यक मानकर वह नियमो द्वारा नियन्त्रित किया गया था। इसलिए जो सन्तान उत्पन्न होती थी वह सयम-नियमो के साथ सस्कारी तथा सुसस्कृत होती थी। उस सन्तान का सस्कार एक प्रकार से जन्म के पहले ही, माता पिता के ससर्ग के समय ही, आरम्भ हो जाता था। जन्म के समय से मरने तक, और मरने के बाद भी, कितने ही सस्कार हुआ करते थे जिनका विधान जीवन को सपूर्ण बनाने के उद्देश्य से हुआ करता था। इस तरह, मनुष्य चाहे ब्रह्मचर्य-अवस्था में शिक्षा प्राप्त करता हो, चाहे गृहस्थ-आश्रम में गृहस्थी का जीवन बिताता हो चाहे वानप्रस्थी होकर लोकसेवा करता हो, चाहे अन्तिम अवस्था में ईश्वर-आराधन और ईश्वर-चिन्तन में लगा हो, वह अपने सारे जीवन को और समाज के जीवन को सम्पूर्ण बनाने में लगा रहता था। आज हम इन सयमो और नियमो को सच्चे अर्थ में भूल गये हैं, बहुत करके इन्हे समझते भी नही हैं। इसका यह फल होता है कि या तो ये नियम हमको जीवन का सुख प्राप्त करने में बाधक मालूम होते हैं, या इनकी हम आवश्यकता ही महसूस नही करते हैं, या इन्हे एक व्यर्थ पुरानी लकीर मानकर छोड देना ही प्रगतिशीलता का चिह्न समझते हैं। महात्माजी न तो यहाँ तक अन्धविश्वासो से काम लेना चाहते थे और न उन्हे पसन्द करते थे। पर इनमें जो तथ्य है उसे मानते थे। उन्होने उस तथ्य या तत्त्व का, आज की आधुनिक परिस्थिति के अनुरूप, अपने ग्यारह व्रतो में समावेश कर दिया है। इसलिए उनके खाद्य-पदार्थ-सम्बन्धी प्रयोग, स्वास्थ्य-चिकित्सादि-सम्बन्धी प्रयोग, ब्रह्मचर्य, तथा जीवन के मौलिक सिद्धान्त 'सत्य और अहिंसा' का परस्पर घनिष्ठ और अनन्य सम्बन्ध है। कोई एक को दूसरे से अलग करके उनको समझ नही सकता है, जीवन में उनके उतारने की तो बात ही क्या हो सकती है। इन्ही तत्त्वो पर समाज-गठन की रचना भी उनका ध्येय था। इसलिए उनकी राजनीति जिसे हम धर्म कहते हैं उससे अलग नही थी। इस तरह, वैयक्तिक जीवन सार्वजनिक जीवन से अलग नही किया जा सकता है।

इस विषय को कुछ उदाहरणों द्वारा समझ लेना अच्छा होगा। ऐसा अक्सर लोग कह बैठते हैं कि अगर किसी मनुष्य का व्यक्तिगत चरित्र शुद्ध नही है, पर उसका सार्वजनिक जीवन अगर शुद्ध है, तो वह सार्वजनिक काम अच्छा ही करेगा। महात्माजी इस बात को नहीं मानते थे कि जो आदमी रुपये-पैसे के बारे में, अपने निजी कारबार में, पहले साफ नहीं है वह सार्वजनिक जीवन में साफ रह सकता है। जो अपने लिए इधर-उधर करके कुछ कमा लेना बुरा नहीं मानता, जो अपने निजी कारबार में अप्रामाणिक है, वह क्या कभी सार्वजनिक जीवन में जितना चाहिए उतना स्वच्छ हो सकता है? यदि धनी होने का सीधा और सहज रास्ता कुछ छोटी-मोटी बातो में सत्य और असत्य का खयाल न रखना ही हो, तो वह ऐसा धनी मनुष्य कभी सच्ची सेवा नही कर सकता। इस प्रकार से उपार्जित धन यदि सेवाकार्य में लगाया भी जाय तो वह उतना फलदायी नही हो सकता, क्योंकि जरूरत से अधिक धन-उपार्जन केवल गैर-जरूरी ही नही, बल्कि अनिष्टकर भी हो सकता है। इसलिए, जरूरत से अधिक अपने लिए उपार्जन न करने को भी महात्माजी ने एक व्रत मान लिया। अपने ग्यारह व्रतो का विस्तृत वर्णन और समीचीन मीमासा उन्होने अपने लेखों में की है, जिनका सग्रह 'मगल-प्रभात' के नाम से छपा है। उसका अध्ययन और अनुशीलन अनिवार्य होना चाहिए। इसलिए यहाँ पर चन्द शब्दो में ही प्राकृतिक चिकित्सा, भोजन इत्यादि का मौलिक तत्त्व बताया गया है।

तीसरा अध्याय

ऊपर कहा जा चुका है कि भारत-जैसे देश में, भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियो के बीच विश्वास और सद्भावना उत्पन्न करने को, महात्माजी ने अपने सार्वजनिक जीवन के प्राय आरम्भ मे ही, एक मुख्य उद्देश्य और अनिवार्य आवश्यकता बना रखा था। उनका दक्षिण अफ्रिका जाना एक मुसलमान व्यापारी के मुकदमे की पैरवी के लिए हुआ था। वहाँ सब हिन्दुस्तानियो के साथ, चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, जो दुर्व्यवहार हुआ करता था वही उनके वहाँ रह जाने का कारण हुआ। वहाँ के अन्यायो और अत्याचारो को दूर करने के प्रयत्न में ही सत्याग्रह का आविष्कार हुआ—केवल 'सत्याग्रह' शब्द का ही नही, सत्याग्रह के सारे कार्यक्रम का भी। वहाँ सत्याग्रह में हिन्दू और मुसलमान दोनो ने ही उत्साहपूर्वक भाग लिया। वहाँ हिन्दू और मुसलमान में किसी प्रकार का भेद-भाव होने का कारण पैदा नही हुआ। विदेश में जहाँ अपने देश के थोडे ही लोग है और जहाँ सबके साथ एक ही प्रकार का दुर्व्यवहार होता है तथा जहाँ की जनता अथवा गवर्नमेंट सभी भारतीयो को एक ही डण्डे से हाँकती हो, इस प्रकार की एकता आश्चर्यजनक नही—एक प्रकार से स्वाभाविक है। महात्माजी ने वहाँ यह देख समझ लिया था कि भारत में, जहाँ कितने ही धर्मों के माननेवाले और कितनी भाषाओ के बोलनेवाले तथा कितने ही प्रकार की नीति-रीति पर चलनेवाले लोग बसते है, ऐसी एकता के बिना न तो विदेशी सरकार से ही लडा जा सकता है और न एक दिन के लिए भी लोग चैन से जीवन बिता सकते हैं। इसलिए उन्होंने हिन्दू-मुसलमानो की एकता को—जिसका अर्थ था हिन्दुस्तान में बसनेवाले सभी लोगो की एकता, चाहे उनका धर्म कुछ भी हो—यहाँ के सार्वजनिक जीवन का एक अनिवार्य और अत्यावश्यक अग शायद मान लिया।

ऊपर कहा जा चुका है कि इसी रीति के अनुसार उन्होने हिन्दुस्तान में बराबर काम किया। खिलाफत के मामले में मुसलमानों का दुगुने उत्साह के साथ उन्होने साथ दिया और मुसलमानो ने भी उस समय की राजनीति में पूरा भाग लिया, पर दुर्भाग्यवश ऐसा बलवा-फसाद आरम्भ हो गया कि जो एकता देखने में आने लगी थी वह आहिस्ता-आहिस्ता घटती हुई दिखाई दी। उसको बचाने के लिए उन्होने १९२४ में इक्कीस दिनो का उपवास किया और वातावरण कुछ सुधरा हुआ मालूम होने लगा, मगर वह स्थायी नहीं रहा, शीघ्र ही दूषित हो गया। राजनीतिक कारणो से जैसे-जैसे देश मे जागृति बढती गई, मुसलमानो में भी जागृति फैलती गई, उनकी मांगें भी इसके साथ-ही-साथ बढती गई। ब्रिटिश गवर्नमेंट का भी प्रोत्साहन उनको मिलता गया। गोलमेज-सभा असफल हो गई। महात्माजी लदन से बम्बई पहुँचते ही गिरफ्तार कर लिये गये। यह लडाई उन्होने मोल नही ली थी। ब्रिटिश गवर्नमेंट की नीति ने उनको मजबूर करके देश को इसमें शरीक कराया था। मुसलमान तो शरीक बहुत कम हुए थे, पर जो हुए थे वे बहुत खुल करके। सीमाप्रान्त सारा-का-सारा सम्मिलित था। इधर भी जमायत-उलेमा जैसी सर्वमान्य सस्था राजनीतिक मामलो में बराबर काग्रेस का साथ देती रही—यद्यपि उसके धार्मिक विचार हमेशा कट्टर रहे हैं।

सन् १९३७ तक, जब नये विधान के अनुसार पहला चुनाव हुआ था, मुस्लिम लीग का उतना जोर देश में नहीं था। १९२६ के बाद वह मुसलमानो की नई सस्था बन गई थी, जिसमें सभी पुरानी मुसलिम सस्थाएँ सम्मिलित हो गई थी, या ढीली पड गई थीं। इनमें खिलाफत-कमिटी और मुसलिम लीग, दोनो का स्थान एक प्रकार से गौण हो गया था—यद्यपि दोनों ने अपने-अपने समय में मुसलमानों का नेतृत्व किया। इसलिए जब १९३७ का चुनाव हुआ तब मुसलिम लीग बहुत कम जगहो पर जीत सकी। अधिकाश जगहो पर तो उसने उमीदवार ही नही खडे किये। चुनाव के बाद नये विधान के अनुसार जब मन्त्रिमडल बने थे तब उनमें मुसलिम लीग को कोई विशेष स्थान नही मिला। पजाब और बगाल में, जहां की आबादी में मुसलमानो की सख्या अधिक है और जहाँ की व्यवस्थापिका सभाओ में भी उनके लिए अधिक स्थान मिले थे, मुसलिम लीग अपना मन्त्रिमडल नही बना सकी, क्योकि उसकी तरफ से बहुत कम लोग चुने गये थे। मुसलमान भी, चाहे व्यक्तिगत रूप से अथवा दूसरी सस्थाओ की ओर से, अधिक करके असेम्बली में आये थे। पंजाब में यूनियनिस्ट-पार्टी बनी थी, जिसमें हिन्दू और मुसलमान जमीदार एक-साथ होकर काग्रेस और दूसरे दलो से लडे थे।

देने से इनकार कर दिया। वे अपने को मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि मानते थे और कहते थे कि उसी तरह कांग्रेस भी अपने को हिन्दुओं का प्रतिनिधि मानकर हमसे बातचीत करे तो हम बातचीत करने को तैयार हैं। कांग्रेस के सारे इतिहास और सारे ध्येय ने इस प्रकार की साम्प्रदायिकता से अपने को अलग रखा था, क्योंकि कांग्रेस में मुसलमान तथा दूसरे धर्म वाले सभी जातियों के लोग आरम्भ से बराबर शरीक थे। यद्यपि कांग्रेस के साथ मुसलमानों का सहयोग बराबर एक तरह नहीं रहा तथापि कांग्रेस भी मुसलमानों से एकबारगी खाली कभी न रही। खिलाफत-आन्दोलन के जमाने में तो कांग्रेस ही प्राय सभी मुसलमानों का नेतृत्व कर रही थी। पर मिस्टर जिन्ना कांग्रेस को भी लीग की तरह साम्प्रदायिक संस्था बनाने पर तुले हुए थे। महात्मा गांधी ने उनसे बराबर बातचीत करने की कोशिश की जिसमें किसी तरह से आपस में समझौता हो जाय। पर मिस्टर जिन्ना ने उनको बराबर ठुकराया।

मिस्टर जिन्ना का कहना था कि हिन्दू और मुसलमान तो दो अलग-अलग नेशन हैं, दोनों कभी एक साथ रह नहीं सकते, इसलिए हिन्दू हिन्दूस्तान में राज करें और मुसलमानों को पाकिस्तान दे दें। महात्मा गांधी और कांग्रेस, दोनों ही 'दो नेशन' की नीति को कभी स्वीकार नहीं करते थे, क्योंकि प्रय एक हजार बरसों का इतिहास यह बताता था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों का प्रयत्न यह रहा है कि वे एक दूसरे की संस्कृति, रहनसहन, बोलचाल, वेशभूषा इत्यादि का आदान-प्रदान करते रहे हैं, और दोनों ने मिलकर हिन्दुस्तान में एक हिन्दुस्तानी नेशन पैदा किया है, जो न तो सोलह आने हिन्दू है और न सोलह आने मुसलमान—यद्यपि अपने धार्मिक विश्वासों और आचारों में दोनों अपने सिद्धान्तों के अनुसार चलते रहे, और उनमें भी बहुत बातों में मेल-जोल हुआ है। इसलिए अब इसी आधार पर कि दोनों दो नेशन हैं, देश का बटवारा अनुचित होगा और किसी तरह से मानने योग्य भी नहीं। महात्माजी बटवारा—अर्थात् हिन्दुस्तान का ऐसा विभाजन जिसमें इसके दो अंश एक दूसरे से [illegible] स्वतंत्र हों—कभी मानने को तैयार नहीं थे। पर वह सूबों को [illegible] से सूबाई [illegible]
स्वतन्त्र बनाने के लिए तैयार थे। इसके लिए [illegible] करना [illegible]
कर देते थे। पर इसका अर्थ यह होता कि [illegible] एक देश
और उसका एक शासन होता। मि[illegible] नहीं
ब्रिटिश गवर्नमेंट भी शायद बटवारा [illegible]
को उससे प्रोत्साहन मिलता ही गया [illegible]

पर और जोरों से डटे रहे। महात्माजी अपने विचार में बहुत दृढ थे, इसलिए लीग ने उनको ही अपना सबसे बडा विरोधी मान लिया। लीगियो की ओर से कहा जाने लगा कि उनके रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट गांधीजी है।

लडाई शुरू होने के कुछ ही बाद ब्रिटिश गवर्नमेंट ने—जो उस वक्त तक इस प्रयत्न में थी कि १९३५ के विधान के अनुसार भारत में एक सघ-शासन कायम हो जाय जिसमें ब्रिटिश सूबे और रजवाडे सभी शरीक हो जायें और जो रियासतों के साथ उस समय तक ऐसी शर्तों के सम्बन्ध में बातचीत चला रही थी जिन शर्तों पर रजवाडे भारत-सघ में शरीक होने के लिए तैयार होते—अपना रुख बदल दिया। लीग अथवा मिस्टर जिन्ना की बात मानकर उसने घोषणा कर दी कि १९३५ के विधान का वह भाग, जिसके अनुसार सघ स्थापित होता था, अब काम में नही लाया जायगा—वह स्थगित कर दिया गया। मिस्टर जिन्ना का विरोध, १९३५ के विधान के प्रति, इसी भाग के कारण था। इस तरह उनकी ख्वाहिश पूरी कर दी गई। कांग्रेस, बिना सच्चे अर्थों में अधिकार पाये, लड़ाई में मदद करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेना नही चाहती थी। इसलिए ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ उसका कोई समझौता नही हो सका। समझौते का अन्तिम प्रयत्न १९४२ के आरम्भ में, क्रिप्स-मिशन द्वारा, किया गया था। पर वह असफल रहा। उसकी असफलता का विशेष कारण मिस्टर जिन्ना की जिद्द था। उसके बाद कांग्रेस के लिए और कोई चारा नही रह गया था। उसको ब्रिटिश गवर्नमेंट से कहना ही पडा कि 'भारत छोडो'।

यह स्थिति इतनी जल्दी और इतनी आसानी से नही पहुँची, जैसा चन्द वाक्यों द्वारा ऊपर बता दिया गया है। कांग्रेस के अन्दर भी काफी मतभेद था। कुछ लोग चाहते थे कि कांग्रेस को ब्रिटिश गवर्नमेंट की मदद करनी चाहिए और अपनी माँग को एक तरह से लडाई के जमाने में तह में डाल रखना चाहिए। कुछ ऐसे थे, जो इतनी दूर तक जाने के लिए तैयार नही थे, पर तो भी ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ झगडना पसन्द नहीं करते थे, किसी-न-किसी तरह से कुछ समझौता करना ही चाहते थे। महात्माजी को ब्रिटिश गवर्नमेंट की कार्रवाइयाँ देखकर यह विश्वास नही होता था कि वह भारत की माँग किसी तरह सच्चे अर्थ में मानने को तैयार है या होगी। इसका बहुत बडा प्रमाण इसी से मिलता था कि उसके द्वारा लीग को प्रोत्साहन मिलता जाता था अथवा लीग को वह अपना हथकण्डा बनाकर अपना काम निकाल रही थी।

इसके अलावा और कांग्रेस-सिद्धान्त की भी बात थी। महात्माजी ने लडाई आरम्भ होते ही लार्ड लिनलिथगो से कह दिया था कि भारत की सहानुभूति ब्रिटेन के साथ है और उसे बिना शर्त ब्रिटेन की मदद करनी चाहिए। इस बात से जनता में और कांग्रेस में भी कुछ असन्तोष था, क्योंकि महात्माजी का विचार था कि इंगलैण्ड की सबसे बडी मदद हिन्दुस्तान की सहानुभूति ही होगी—यदि ससार को यह मालूम हो जाय कि इंगलैण्ड के साम्राज्य के नीचे रहकर भी भारत की सच्ची सहानुभूति इंगलैण्ड को प्राप्त है, तो इसका नैतिक असर सारे ससार पर पडेगा, खासकर बडे युद्ध में इस प्रकार का नैतिक प्रभाव कुछ कम कीमती नही होता है। पर इस वाक्य को एक तरफ तो हिन्दुस्तान के लोगो ने ठीक नही समझा और बहुतेरे कहने लगे कि बिना शर्त मदद हम नही कर सकते—हमको तो जब ब्रिटिश सरकार स्वतन्त्रता देगी तभी हम उसके साथ सौदा कर सकेंगे। उधर जब गाधीजी ने अपने शब्दो का अर्थ नैतिक सहानुभूति लगाया तब अंग्रेजो ने उनपर यह इलजाम लगाया कि वह अपनी बात से हट गये। बात यह थी कि महात्माजी के जीवन में इस प्रकार के और भी मौके आये थे जब उनको इस प्रकार की गलतफहमी का शिकार बनना पडा था। कांग्रेस ने अहिंसा को अपने ध्येय में स्थान दे रखा था। महात्माजी के जीवन का तो सत्य और अहिंसा लक्ष्य रहा ही है। क्या वह इस युद्ध में, जहाँ सब प्रकार के नये-से-नये घातक अस्त्र-शस्त्र व्यवहार में लाये जा रहे थे, अपने जीवन के सिद्धान्तो को छोड़कर, अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करके मदद करने की बात सोच सकते थे? साथ ही, उन्होने पिछली लडाई में रंगरूटो की भर्ती करवाने में मदद दी थी, जिसकी बडी कडी समालोचना अन्य देशो के कट्टर शान्तिवादी (पैसिफिस्ट) लोगों ने की थी।

जो हो, जब यह मामला वर्किङ्ग-कमिटी के सामने आया तो बहुत सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया कि ब्रिटिश सल्तनत को अगर हिन्दुस्तान की सच्ची सहानुभूति चाहिए और वह उसकी मदद लेना पसन्द करती है, तो उसे दो बातें करनी चाहिए—एक तो भारत की स्वतन्त्रता के ध्येय को साफ-साफ मान लेना और स्पष्ट शब्दो में उसकी स्थापना का अपना निश्चय बता देना, तथा दूसरे, तात्कालिक काम के लिए भारतवासियो को गवर्नमेंट में अविलम्ब अधिकार देना जिसमें वे सचमुच मदद कर सकें और भविष्य के सम्बन्ध में उनका विश्वास जम जाय। ब्रिटिश गवर्नमेंट कहती थी कि उसको इस युद्ध में प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए शरीक होना पडा है इसलिए उसको इस बात का अधिकार है कि वह सभी प्रजातन्त्रवादी लोगो से

सहानुभूति और मदद पावे। वर्किङ्ग-कमिटी ने जो निश्चय किया उसमें इसी बात पर जोर देकर कहा गया कि ब्रिटिश सरकार अगर सचमुच प्रजातन्त्र की हामी है तो उसको चाहिए कि भारत की इन दो मांगो को पूरा करके इस बात का सबूत दे। जब उसने इस बात को नामजूर कर दिया तब कांग्रेस को मजबूर होकर मन्त्रिमडल से, जहाँ-तहाँ जो कांग्रेस का बहुमत था, हट जाना पडा। ब्रिटिश सरकार को उन सूबो का शासन-भार गवर्नरो के हाथ में देना पडा। उस समय जो वादविवाद चला था उसका विवरण यहाँ देना अनावश्यक है। मै यहाँ, महात्माजी के साथ मेरा निजी एकमत किस प्रकार रहा, सिर्फ यही बता देना काफी समझता हूँ।

लडाई के आरम्भ में भी कांग्रेस-वर्किङ्ग-कमिटी का जो प्रस्ताव हुआ था, जिसमें उपरोक्त दो मांगें पेश की गई थी, उसमें यह स्पष्ट नही किया गया था कि ब्रिटिश गवर्नमेंट यदि उन मांगो को मान ले तो कांग्रेस उसकी मदद हथियारो द्वारा करेगी। पर इसमें सन्देह नही कि इसकी तह में यह बात आ जाती थी कि ब्रिटिश गवर्नमेंट अगर बात मान लेगी तो वह जिस तरह से और जिस प्रकार की मदद चाहेगी, कांग्रेस को देनी पडेगी, जिसमें फौज के लिए आदमियों की भर्ती तथा पैसे की मदद भी शामिल होगी। पर उस समय यह बात साफ खली नही; क्योंकि लार्ड लिनलिथगो ने मांग पूरी ही नही की, बस मदद देने का प्रश्न उठा ही नही। जैसे-जैसे लड़ाई बढी और जर्मन एक देश के बाद दूसरे देश पर हमला करके उसे जीतता गया तथा यह स्पष्ट होता गया कि वह किसी भी कमजोर देश को—जो उसकी बात नही मानता—स्वतन्त्र नही रहने देगा, वैसे-वैसे अंग्रेजों के साथ हिन्दुस्तान के लोगों की सहानुभूति और भी बढती गई। हममें से बहुतेरे उस वक्त कांग्रेस के अहिंसा-तत्त्व को भूल ही गये। पर महात्माजी उसको कैसे भूल सकते थे? कांग्रेस-वर्किङ्ग कमिटी के अन्दर जब फिर इस पर विचार होने लगा तब मतभेद स्पष्ट हो गया। महात्माजी का खयाल था कि हम अपनी नीति छोडकर लडाई में हिंसात्मक साधनों द्वारा मदद नही कर सकते। वह यह मानते थे कि हमारा अहिंसात्मक साधन केवल दो ही विषयो को आधार मानकर स्वीकृत हुआ है—एक तो यह कि हमे अगर अंग्रेजो के विरुद्ध स्वराज्य-प्राप्ति के लिए लडना पडे तो उसमें हम अहिंसात्मक रहेंगे, दूसरा यह कि भारतवासियों के आपस के झगडो में हम कभी हिंसात्मक साधनो से काम नही लेंगे। महात्माजी अपनी अहिंसा में इस प्रकार का कोई बन्धन या मर्यादा नहीं मानते थे। बात यह है कि अगर इस तरह की मर्यादा मान ली जाय तो वह कायम नहीं रह सकती और एक प्रकार से

हमारी अहिंसा और दूसरे देशो की हिंसा में कोई मौलिक भेद भी नहीं रह जाता।

कोई भी देश ऐसा नही है जो हिंसा को ध्येय मानता हो अथवा उसे श्रेयस्कर समझता हो। जो घोर-से-घोर हिंसात्मक काम करते है वे भी यह कभी नही कहते कि हिंसा ठीक है, बल्कि वे यही कहते है कि अहिंसा श्रेयस्कर है, पर उसकी मर्यादा है, सभी जगहो पर उससे काम नही चलता, इसलिए उनको वाध्य होकर अहिंसा छोडना पडता है। अगर कांग्रेस भी इसी प्रकार की मर्यादित और अवसरवादी अहिंसा को ही मानती, तो उसमें और दूसरे देशो में कोई मौलिक भेद नही रह जाता। अगर भेद है तो इतना ही कि किन विशेष स्थितियों में हिंसा से काम लेना चाहिए और किनमें नही। इस विषय पर दो मत होने की गुजाइश रह जाती है—अर्थात् किसी विशेष स्थिति में काग्रेसवादी कह सकते है—जैसा वे कह रहे थे—कि वहाँ अहिंसा से ही काम लेना चाहिए, और दूसरे कह सकते थे कि वह स्थिति ही ऐसी थी जिसमें मजबूरी हिंसा से काम लेना पड सकता है। उदाहरण के लिए, स्वराज्य-प्राप्ति की वात ही ले लीजिए। जैसा ऊपर बताया गया है कि काग्रेस के अन्दर यह बात मान ली गई थी कि स्वराज्य प्राप्ति के काम में हमको हिंसात्मक साधन काम में नही लाना चाहिए, पर दूसरे लोग मानते थे कि कोई कारण नही कि जिस देश को दूसरे देश ने इस प्रकार दवाकर मजबूर कर रखा है वह अपनी स्वतन्त्रता की प्राप्ति के प्रयत्न में इस तरह अपने को क्यो मजबूर समझे, और कोई नैतिक कारण भी नही कि वह हिंसात्मक साधन का इस्तेमाल न करे। अगर काग्रेस जर्मनी से मुकाबला करने मे शस्त्रो द्वारा ब्रिटिश गवर्नमेंट की मदद कर सकती है तो वह इसी-लिए कि ब्रिटिश गवर्नमेंट प्रजातन्त्र की मदद में लड रही है, ताकि दूसरे प्रजातन्त्रवादी देशो को दबाकर जर्मनी अपने कब्जे में न कर ले, तो फिर कोई कारण नही कि उसी प्रजातन्त्र को हिन्दुस्तान में कायम करने के लिए हिन्दुस्तान ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ शस्त्रो द्वारा न लडे। इस तरह का सैद्धान्तिक मतभेद काग्रेस-वर्किङ्ग-कमिटी में देखने में आया।

कांग्रेस-वर्किङ्ग-कमिटी ने यह निश्चय किया कि उसकी मांग अगर पूरी हो जाय तो काग्रेस खुलकर ब्रिटिश गवर्नमेंट को मदद देगी। जब यह स्पष्ट हो गया तव गाधीजी के सामने बडी विकट समस्या उपस्थित हो गई। उन्होने किसी समय कहा था कि असत्य द्वारा अगर स्वराज्य भी मिले तो वह उसे नही लेंगे। तो क्या इस अवसर पर हिंसात्मक मदद देकर ब्रिटिश गवर्नमेंट से स्वराज्य लेना उचित होगा? इस विपय पर कई दिनो तक

मन्थन होता रहा। पर यह स्पष्ट हो गया कि एक तरफ गाधीजी का सिद्धान्त था और दूसरी तरफ उनलोगो का जो स्वराज्य के बदले में शस्त्र द्वारा ब्रिटिश गवर्नमेंट की मदद करना चाहते थे। दिल्ली में, फिर वर्धा में, कई दिनो तक विचार होता रहा। मैं महात्माजी के सिद्धान्त को मानता हूँ, उस समय भी मानता था—यद्यपि मुझमें न तो वह सत्य ही है और न उतनी हिम्मत ही कि जिस तरह वह अडकर रह सकते थे उस तरह मै भी रह सकूँ, तो भी जब वर्किङ्ग-कमिटी का यह निश्चय हो गया तब मैंने इस्तीफा देना उचित समझा, क्योकि ऐसा न करता तो हो सकता था कि अपने को एक बडी मुश्किल में पाता। मान लीजिए, अगर ब्रिटिश गवर्नमेंट वर्किङ्ग-कमिटी की माँग मजूर कर लेती तो मेरा और वर्किङ्ग-कमिटी के सदस्यो का यह कर्तव्य हो जाता कि हम उसकी मदद करें—वह हिंसात्मक रूप से हो अथवा अहिंसात्मक। उस समय यह कहना न उचित होता और न सम्भव कि हम तो अहिंसावादी है, इसलिए हिंसात्मक युद्ध में—हमारी माँगो को ब्रिटिश गवर्नमेंट के मान लेने के बाद भी—हम हिंसात्मक मदद नहीं दे सकते। मैंने सोचा कि हम अगर हिंसात्मक मदद देने को तैयार नही हैं तो हमको पहले से अलग हो जाना चाहिए। इसलिए मैंने इस्तीफा दे दिया। पर जब मुझे यह बताया गया कि अभी तो मदद देने का प्रश्न ही नही उठता है—वह तो तब उठेगा जब ब्रिटिश गवर्नमेंट हमारी बात मान लेगी, जिसका अभी कोई करीना नही था, ऐसी अवस्था में काग्रेस में फूट का प्रदर्शन करके उसे कमजोर करने से कोई लाभ नही, तब मैंने इस्तिफा को स्थगित रखा। पर अब्दुल गफार खाँ, जिनका मत भी वही था, डटे रहे; उन्होंने अपना इस्तीफा वापस नही लिया।

जब वर्किङ्ग-कमिटी की बात अखिलभारतीय काग्रेस-कमिटी में मजूरी के लिए पेश होने को आई तब महात्माजी उस बैठक में नही गये। पर मैं गया। वहाँ मैंने देखा कि अखिलभारतीय कमिटी में भी बहुतेरे लोग ऐसे हैं जो महात्माजी से सहमत हैं। पर मैंने उनलोगो की तरफ से एक बयान देकर, जिसमें अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी थी, तटस्थ रहना ही मुनासिब समझा। पर काग्रेस को यह विकट समस्या हल नहीं करनी पडी, क्योकि ब्रिटिश गवर्नमेंट ने उसे अपने तरीके से बहुत जल्दी हल कर दिया। उसने काग्रेस की माँग नामजूर कर दी। तब मत देने की कोई बात नहीं रह गई। इस-लिए काग्रेस में जो फूट और मतभेद देखने में आते थे उनपर परदा पड़ गया। महात्माजी, जो तटस्थ हो गये थे, फिर काग्रेस का नेतृत्व करने लग गये—फिर अपने तरीके से उसको चलाने लग गये। हमारे लोगो को बहुत

सन्तोष हुआ, क्योकि हमको काग्रेस-जैसी सस्था से अलग होने की बात सोचने की अब जरूरत नही रह गई। हम जिस तरह से और लोगो के साथ मिलकर काम करते आये थे उसी तरह करते रहे। पर इसमें सन्देह नही कि वह एक मौका था जब हमको बडी कठिनाई का सामना करना पडा। अखिल-भारतीय काग्रेसकमिटी के उसी अधिवेशन में सर्वसम्मति से एक यह निश्चय भी हुआ था कि जहाँतक स्वराज्य-प्राप्ति और देश में आपसी झगडे निपटाने का सवाल है वह अपनी अहिसा-नीति पर अभी अडी है। सर्वसम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत तो हो गया, पर जब पानी की बाढ को रोकने के लिए जो बाँध बँधा रहता है और मुश्किल से पानी को रोके रहता है उसमें अगर एक छोटा भी सूराख हो जाता है तब हम यह कहकर उसे सुरक्षित नही रख सकते कि यह एक छोटा-सा सूराख मात्र हमने किया है। और बाँध के बाकी हिस्से को हम अब भी सुरक्षित रखना चाहते हैं। इसलिए जब अहिसा के बाँध में, जो आजतक देश को हिंसा की बाढ से सुरक्षित रखता आया था, छोटे छेद से भी हिंसा का प्रभाव होने लगा तब—जैसा आगे हम दिखलायेंगे—हमारे और दूसरे देशो के हिंसा-अहिंसा के सिद्धान्त में शायद ही कोई अन्तर रह गया है।

इसके और भी दुखद परिणाम हुए हैं जिनका थोडा-सा वर्णन किया जायगा। हम उस चक्कर में इस तरह से पड गये कि हमारे लिए अब निकलना भी कठिन हो गया। महात्माजी ने अपनी जान देकर भी बाढ को रोकना चाहा और उनकी अहिसा ने चमत्कार भी दिखलाया, पर देश अभी पूरी तरह नही सँभला था।

गवर्नमेंट के काग्रेस की माँग नामजूर कर देने के बाद काग्रेस को व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ करना पडा, जिसका नेतृत्व महात्माजी ने किया। अब काग्रेस के लोगो में कोई मतभेद इस विषय पर नही रह गया कि उन्हे ब्रिटिश गवर्नमेंट को मदद करनी चाहिए या नही। अब प्राय सभी इस विषय पर एकमत हो गये कि ब्रिटिश गवर्नमेंट की मदद इस युद्ध में काग्रेस नही कर सकती। महात्माजी-जैसे विचारवादी लोग तो इस कारण मदद करना नही चाहते थे कि यह हिंसात्मक युद्ध की मदद करना होगा और हम अपने को अहिंसावादी मानते हुए ऐसा नही कर सकते थे। जो दूसरे विचार के थे उन्होने यह सोचा कि ब्रिटिश गवर्नमेंट का जब ऐसा रुख है तब उसकी मदद कैसे की जा सकती है। इसलिए इस व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप यह हुआ कि हम इस लडाई में मदद नही कर सकते। चूँकि ब्रिटिश गवर्नमेंट इस प्रकार के प्रचार को बरदाश्त नही कर सकती, वह प्रचार करनेवालो को

रोकेगी ही। इस तरह सत्याग्रह आरम्भ हो गया। यह सत्याग्रह उस नागरिक अधिकार की रक्षा के लिए था, जो प्रत्येक नागरिक को प्राप्त होना चाहिए। वह अधिकार अपने विचारो को, चाहे वह तात्कालिक शासको के विचारों के विरुद्ध ही क्यो न हो, स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट करने का है।

सत्याग्रह आरम्भ तो किया गया, पर इस वात की पूरी कोशिश की गई कि इसके द्वारा किसी प्रकार की हलचल या कोई वलवा-फसाद न होने पावे, लोग अपनी ओर से अहिंसात्मक वने रहें। यह मुमकिन था कि इसको व्यक्तिगत रूप न देकर सामूहिक रूप दिया जा सकता, पर महात्माजी ने ऐसा नही किया, क्योंकि यह भी मुमकिन था कि उस वक्त वलवा-फसाद हो जाता। साथ ही, यह भी दिखलाना था कि सारा देश इस सत्याग्रह के साथ है, जो वात सिर्फ चन्द आदमियो के व्यक्तिगतरूप में सत्याग्रह करने से प्रमाणित नही होती। इसलिए महात्माजी ने निश्चय किया कि थोडे ही लोग इस सत्याग्रह में सक्रिय भाग ले, पर वह ऐसा होना चाहिए जो सारे देश के प्रतिनिधित्व और नेतृत्व का दावा रखता हो, इसमे ससार को मालूम हो जायगा कि यद्यपि थोडे ही लोग सत्याग्रह में शरीक हुए है तथापि यह सत्याग्रह चन्द व्यक्तियो का ही सत्याग्रह नही कहा जा सकता, वल्कि सारा देश अपने चुने प्रतिनिधियो द्वारा इसमें शरीक हुआ समझा जाना चाहिए। इस तरह एक तरफ चुने प्रतिनिधियो को सत्याग्रह मे शरीक होने का आदेश देकर यह सत्याग्रह सार्वदेशिक प्रमाणित किया गया और दूसरी तरफ अधिक होहल्ला न होने देकर तथा केवल ऐसे ही लोगो को इसमे शरीक होने की इजाजत देकर, जो गाधीजी के सिद्धान्तो पर चलनेवाले थे, यह—जहाँ तक हो सकता था—अहिंसात्मक रखा गया।

सन्तोष हुआ, क्योंकि हमको कांग्रेस-जैसी संस्था से अलग होने की बात सोचने की अब जरूरत नही रह गई। हम जिस तरह से और लोगो के साथ मिलकर काम करते आये थे उसी तरह करते रहे। पर इसमें सन्देह नहीं कि वह एक मौका था जब हमको बडी कठिनाई का सामना करना पडा। अखिल-भारतीय कांग्रेसकमिटी के उसी अधिवेशन में सर्वसम्मति से एक यह निश्चय भी हुआ था कि जहाँतक स्वराज्य-प्राप्ति और देश में आपसी झगडे निपटाने का सवाल है वह अपनी अहिंसा-नीति पर अभी अडी है। सर्वसम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत तो हो गया, पर जब पानी की बाढ को रोकने के लिए जो बाँध बँधा रहता है और मुश्किल से पानी को रोके रहता है उसमें अगर एक छोटा भी सूराख हो जाता है तब हम यह कहकर उसे सुरक्षित नही रख सकते कि यह एक छोटा-सा सूराख मात्र हमने किया है। और बाँध के बाकी हिस्से को हम अब भी सुरक्षित रखना चाहते हैं। इसलिए जब अहिंसा के बाँध में, जो आजतक देश को हिंसा की बाढ से सुरक्षित रखता आया था, छोटे छेद से भी हिंसा का प्रभाव होने लगा तब—जैसा आगे हम दिखलायेंगे—हमारे और दूसरे देशो के हिंसा-अहिंसा के सिद्धान्त में शायद ही कोई अन्तर रह गया है।

इसके और भी दुखद परिणाम हुए हैं जिनका थोडा-सा वर्णन किया जायगा। हम उस चक्कर में इस तरह से पड गये कि हमारे लिए अब निकलना भी कठिन हो गया। महात्माजी ने अपनी जान देकर भी बाढ को रोकना चाहा और उनकी अहिंसा ने चमत्कार भी दिखलाया, पर देश अभी पूरी तरह नही सँभला था।

गवर्नमेंट के कांग्रेस की माँग नामजूर कर देने के बाद कांग्रेस को व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ करना पडा, जिसका नेतृत्व महात्माजी ने किया। अब कांग्रेस के लोगो में कोई मतभेद इस विषय पर नही रह गया कि उन्हे ब्रिटिश गवर्नमेंट को मदद करनी चाहिए या नही। अब प्राय सभी इस विषय पर एकमत हो गये कि ब्रिटिश गवर्नमेंट की मदद इस युद्ध में कांग्रेस नही कर सकती। महात्माजी-जैसे विचारवादी लोग तो इस कारण मदद करना नही चाहते थे कि यह हिंसात्मक युद्ध की मदद करना होगा और हम अपने को अहिंसावादी मानते हुए ऐसा नही कर सकते थे। जो दूसरे विचार के थे उन्होंने यह सोचा कि ब्रिटिश गवर्नमेंट का जब ऐसा रुख है तब उसकी मदद कैसे की जा सकती है। इसलिए इस व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप यह हुआ कि हम इस लडाई में मदद नही कर सकते। चूंकि ब्रिटिश गवर्नमेंट इस प्रकार के प्रचार को बरदाश्त नही कर सकती, वह प्रचार करनेवालो को

रोकेगी ही। इस तरह सत्याग्रह आरम्भ हो गया। यह सत्याग्रह उस नागरिक अधिकार की रक्षा के लिए था, जो प्रत्येक नागरिक को प्राप्त होना चाहिए। वह अधिकार अपने विचारो को, चाहे वह तात्कालिक शासको के विचारों के विरुद्ध ही क्यो न हो, स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट करने का है।

सत्याग्रह आरम्भ तो किया गया, पर इस बात की पूरी कोशिश की गई कि इसके द्वारा किसी प्रकार की हलचल या कोई बलवा-फसाद न होने पावे, लोग अपनी ओर से अहिंसात्मक बने रहे। यह मुमकिन था कि इसको व्यक्तिगत रूप न देकर सामूहिक रूप दिया जा सकता, पर महात्माजी ने ऐसा नही किया, क्योकि यह भी मुमकिन था कि उस वक्त बलवा-फसाद हो जाता। साथ ही, यह भी दिखलाना था कि सारा देश इस सत्याग्रह के साथ है, जो बात सिर्फ चन्द आदमियो के व्यक्तिगतरूप में सत्याग्रह करने से प्रमाणित नही होती। इसलिए महात्माजी ने निश्चय किया कि थोड़े ही लोग इस सत्याग्रह में सक्रिय भाग ले; पर वह ऐसा होना चाहिए जो सारे देश के प्रतिनिधित्व और नेतृत्व का दावा रखता हो, इससे ससार को मालूम हो जायगा कि यद्यपि थोडे ही लोग सत्याग्रह में शरीक हुए है तथापि यह सत्याग्रह चन्द व्यक्तियो का ही सत्याग्रह नही कहा जा सकता, बल्कि सारा देश अपने चुने प्रतिनिधियो द्वारा इसमें शरीक हुआ समझा जाना चाहिए। इस तरह एक तरफ चुने प्रतिनिधियो को सत्याग्रह में शरीक होने का आदेश देकर यह सत्याग्रह सार्वदेशिक प्रमाणित किया गया और दूसरी तरफ अधिक होहल्ला न होने देकर तथा केवल ऐसे ही लोगो को इसमे शरीक होने की इजाजत देकर, जो गाधीजी के सिद्धान्तो पर चलनेवाले थे, यह—जहाँ तक हो सकता था—अहिंसात्मक रखा गया।

इकतीसवाँ अध्याय

व्यक्तिगत सत्याग्रह में मै खुद शरीक नही हुआ। मेरा स्वास्थ्य खराब था महात्माजी ने मुझे रोक रखा। उनका विचार था कि मेरे जेल जाने का अर्थ यह होगा कि अपनी चिकित्सा का भार मै गवर्नमेंट पर डालता हूँ। अगर वह मुझे यो ही पकड ले तो उसकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर नही। पर मै अगर सरकार को मजबूर करके अपने को गिरफ्तार कराऊँ तो उसका अर्थ यही होगा कि मै गवर्नमेंट को इस दुविधा में डालता हूँ कि या तो वह मुझे गिरफ्तार करके मेरी देख-भाल का भार अपने ऊपर ले या मेरे नियम-भग करते रहने पर भी मेरी बीमारी के कारण मुझे गिरफ्तार न करे—यह अच्छा नही होगा, इसलिए मुझे शरीक नही होना चाहिए। इसी तरह, औरो को भी, जो बीमारी अथवा दूसरे किसी कारण से शरीक नही हो सकते थे, उन्होंने सत्याग्रह करने से बरी कर दिया। इस बार के सत्याग्रह मे वह बहुत छान-बीन करके लोगो को जाने देते थे। उनकी इजाजत बगैर कोई जा भी नही सकता था। जिस प्रकार सत्याग्रही के चुनाव में कडाई होती थी उसी प्रकार शान्ति कायम रखने की कडी ताकीद थी। महात्माजी का विचार था कि वह ब्रिटिश गवर्नमेंट को यह दिखला दें कि उनकी माँग सारे देश के लोगो की ओर से थी और जनता के प्रतिनिधि अपने ऊपर कष्ट झेलने के लिए तैयार थे, पर साथ ही वे गवर्नमेंट को किसी प्रकार मुश्किल में नही डालना चाहते थे।

काग्रेस के सभी प्रमुख लोग जेल चले गये। काग्रस के सचालन का भार एक प्रकार से गाधीजी पर ही रह गया—यद्यपि काग्रेस के मत्री आचार्य कृपालानी वाहर ही थे। महात्माजी ने उनको और मुझे बहुत करके सेवाग्राम या वर्धा में ही रहने का आदेश दिया। अधिकतर मै प्राय एक वर्ष वही रहा।

उधर युद्ध ज्यादा जोर पकड़ता गया। जर्मनों की जीत चारों तरफ होती हुई दीखने लगी। जापान भी युद्ध में शरीक हो गया। सिंगापुर, मलाया, बर्मा, जावा इत्यादि के टापू पर वह कब्जा जमा बैठा। चीन के बहुत बड़े भूभाग पर वह बहुत पहले ही से दखल जमा चुका था। ऐसा मालूम होने लगा कि हिन्दुस्तान के दरवाजों पर ही खतरा आ पहुँचा। योरोप के प्रायः सभी देश या तो जर्मनी के कब्जे में आ गये या उसके असर में थे। इंगलैंड को, फ्रांस के हार जाने के बाद, प्रायः अकेला ही लड़ना पड़ रहा था। पर इंगलैंड के साथ दो बड़ी शक्तियाँ आ जुटी थीं---एक यूरोप में रूस और दूसरा अमेरिका। रूस ने जर्मनी को अपनी सारी शक्ति लगाने के लिए मजबूर कर दिया था। अमेरिका के पास अस्त्र-शस्त्रों का इतना बड़ा खजाना था और साथ ही उसके कारखाने इन चीजों के तैयार करने में इतने जोरों के साथ लगे हुए थे कि वह अपने साथियों की जलसेना, स्थल-सेना तथा नभ-सेना की जरूरतों को बहुत हद तक पूरा कर सकता था। अब उसने अपनी सेना को भी एक तरफ यूरोप में और दूसरी तरफ जापान से लड़ने के लिए भेजना आरम्भ किया। पर यह सब होते हुए भी, १९४१ के अन्त और १९४२ के आरम्भ में, ऐसी स्थिति आ गई थी कि मालूम होता था, जर्मन और जापान सबको हराकर ही रहेंगे।

स्थिति की गम्भीरता को देखकर, जब फ्रान्स पर जर्मनी का धावा हुआ था तब, प्रधान मंत्री चर्चिल ने यह प्रस्ताव किया था कि इंगलैण्ड और फ्रांस मिलकर एक राष्ट्र बन जायें। यह प्रस्ताव ऐसे समय हुआ जब फ्रांस हार चुका था। उसमें कोई ऐसी शक्ति नहीं रह गई थी कि इतने बड़े महत्वपूर्ण प्रश्न पर वह विचार कर सके। जब एशिया की स्थिति वैसे ही संकटाकीर्ण हो गई तब भी चर्चिल की गवर्नमेंट ने यह सोचा कि हिन्दुस्तान को किसी तरह से राजी करना जरूरी हो गया है। शायद अमेरिका ने भी इस बात पर जोर दिया। तब फिर उन्होंने सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को हिन्दुस्तान भेजा कि यहाँ के नेताओं से मिलकर वह कोई ऐसा रास्ता निकालें कि हिन्दुस्तान राजी हो जाय और दिल खोलकर युद्ध में मदद करे। हिन्दुस्तान में युद्ध की तैयारियाँ, विशेष करके अमेरिका की मदद से, बहुत तेजी के साथ हो रही थीं। पर लाख तैयारी हो, जनता यदि विरोधी रहे अथवा कम-से-कम तटस्थ भी रहे, तो केवल विदेशी सेना कहाँ तक दुश्मन का मुकाबला कर सकती है। इसलिए श्री क्रिप्स स्थिति को सँभालने के लिए भेजे गये। वह सज्जन एक बहुत ही चतुर और कामयाब बैरिस्टर थे। मजदूर-दल में अग्रगण्य स्थान रखते थे। पर अपने विचारों की उग्रता के कारण मजदूर-दल से

अलग हो चुके थे। लडाई आरम्भ होने पर निजी तौर से वह एक बार हिन्दुस्तान आये थे। जिस समय वर्धा में काग्रेस की कार्यकारिणी युद्ध-सम्बन्धी अपनी नीति निर्धारित करने मे लगी हुई थी उसी समय वह वर्धा आये और नेताओ से मिले थे। उस समय रूस और जर्मनी में अनबन नही थी, एक प्रकार का समझौता हो गया था। इगलैंड का हित इसी में था कि जर्मनी के साथ रूस लडाई में न फँसे। इगलैड ने श्री क्रिप्स को दूत बनाकर रूस भेजा था। उन्होने वहाँ बहुत अच्छा काम किया। जब रूस और जर्मनी में युद्ध ठन गया तो उनका काम वहाँ पूरा हो गया। उनको इगलैण्ड ने अब हिन्दुस्तान भेजा। हिन्दुस्तान पहुँचने से पहले यह घोषित करते रहे कि वह हिन्दुस्तान के साथ समझौता कराने का कोई-न-न-कोई रास्ता जरूर निकाल लेंगे और हिन्दुस्तान को भी खुश कर लेंगे।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, काग्रेस में इस विषय पर मतभेद था कि लडाई में वह अस्त्र-शस्त्र की मदद दे या नही। पर इस मतभेद के कारण लार्ड लिनलिथगो से जो समय-समय पर बातें हुई वे टूट गई थी। टूटने का कारण तो यह था कि ब्रिटिश गवर्नमेंट हिन्दुस्तान की माँग को पूरा करने के लिए तैयार नही थी। एक माँग तो तत्क्षण अधिकार देने की थी और दूसरी माँग भारत के भावी विधान के रूप से सम्बन्ध रखती थी। अगर पहली माँग खुले दिल से मजूर कर ली गई होती तो दूसरी के सम्बन्ध में लोग लडाई की समाप्ति तक ठहरने के लिए तैयार हो जाते। पर पहली माँग मजूर करने को लार्ड लिनलिथगो तैयार नही थे। इसलिए समझौता नही हो सका था; पर झूठा प्रचार यह किया गया था कि भारत, महात्मा गाधी की अहिंसा-नीति के कारण, युद्ध में मदद करने के लिए तैयार नही था, इसलिए कोई समझौता नही हो सकता था। सर क्रिप्स के पहुँचने पर भी यही बात सामने आई।

श्री क्रिप्स बहुत धूम-धाम से हिन्दुस्तान पहुँचे। काग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियो से मिले। और दूसरो से भी मिले। काग्रेस की माँग, जैसा ऊपर कहा गया है, दो प्रकार की थी—एक तो यह कि भारत के प्रति-निधियो को अभी से शासन में पूरा अधिकार दिया जाय कि वे खुले दिल से लडाई में मदद कर सकें और दूसरी बात के सम्बन्ध में ऊपर कहा जा चुका है कि जो स्थायी विधान बनेगा उसमें वह भारतीयो को कहाँ तक हिस्सा देने के लिए तैयार है। काग्रेस की ओर से किसी एक जाति या पक्ष या दल के लिए अधिकार नही माँगे जाते थे। उसकी सारी जिन्दगी का इतिहास बताता है कि वह किसी खास जाति या दल-विशेष की सस्था कभी नही रही

इस वक्त भी सबकी ओर से ही अधिकार मांगा गया था। इसके विपरीत मुस्लिम लीग इस बात पर राजी नही थी कि जन-सख्या में बहुसख्यक होने के कारण केन्द्र में हिन्दू हमेशा बहुमत में रहे, इसलिए मुसलमान इसपर राजी नही हो सके कि केंद्र में अधिकार दिया जाय। पर बात कई दिनो तक चलती रही अन्त में सर स्टैफोर्ड क्रिप्स ने एक मसौदा दिया, जिसमें और सब विषयो में तो अधिकार दिया गया था, पर सेना और युद्ध चलाने के विषय में बात साफ नही थी। कुछ ऐसा मालूम था कि उस सम्बन्ध में भी कुछ सीमित अधिकार दिये गये गये है। पर इस बात की भी छान-बीन की गई। अन्त में स्पष्ट हो गया कि सेना और लडाई के सम्बन्ध में प्राय नही के बराबर अधिकार दिये गये है। लडाई के दिनो में प्राय सभी दूसरे विभाग लडाई के काम में लग जाते है। इसलिए उनके सम्बन्ध में भी जो कुछ अधिकार मिल सकते थे, वे भी एक प्रकार से नही के बराबर हो जाते थे, क्योकि युद्ध-विभाग और सेना-विभाग जिस तरह से चाहे उस तरह से दूसरे विभागो का उपयोग कर सकते थे। इसलिए काग्रेस ने उनके मसौदे को मजूर नही किया। अन्त में, जब काग्रेस की ओर से यह जाहिर हो गया तब मिस्टर जिन्ना ने भी उसे नामजूर कर दिया, क्योकि वह अकेले अधिकार ले नही सकते थे, और लेते भी तो काग्रेस के बिना वह कुछ कर नही सकते थे। उधर इगलैड में वहां के प्रधान मन्त्री चर्चिल इतनी दूर बढकर दिये जाने-वाले निकम्मे अधिकार को भी नापसन्द करते थे। उन्होंने ही सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को वापस बुला लिया। बस वह चले गये।

महात्माजी ने आरम्भ में ही देख लिया था कि इसमें कुछ होनेवाला नही है। इसलिए उनकी इसमें कुछ दिलचस्पी नही थी। पर तो भी वह कई दिन दिल्ली में रहे। बातचीत में शरीक भी रहे। पर कुछ दिनो के बाद, श्री कस्तूर बा की बीमारी के कारण, उन्हे सेवाग्राम चला जाना पडा। विरोधियो ने मशहूर किया कि समझौता हो जाने पर भारत को लडाई में इगलैड को मदद करनी होती और लड़ाई में भारत का मदद देना अहिंसा-सिद्धान्त के विरुद्ध होता, इसलिए यह बातचीत निष्फल हुई। जैसा ऊपर कहा गया है, सर क्रिप्स की असफलता का कारण महात्माजी की अहिंसा नही थीं; क्योकि अधिकार देने को काग्रेस की मांग यदि पूरी होती तो काग्रेस खुलकर लडाई मे मदद देती। वास्तव में उनकी असफलता का कारण हिन्दुस्तान को अधिकार देने की इगलैड की अरुचि थी।

बत्तीसवाँ अध्याय

सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के चले जाने के बाद देश के सामने बडा विकट प्रश्न उपस्थित हुआ। जापान तेजी से वर्मा की तरफ आगे बढ़ रहा था। अमेरिका की मदद हिन्दुस्तान में अभी पूरी पहुँची नही थी—यद्यपि बडी तेजी के साथ फौज और अस्त्र-शस्त्र आ रहे थे। इगलैंड की शक्ति इतनी नही थी कि वह बर्मा को बचा सके। हिन्दुस्तान को बचाना तो और भी बडा कठिन था। अगर बचाने का कोई साधन निकल सकता था तो वह जनता का सकल्प ही हो सकता था, जो उन्हें आक्रमणकारियो से मोर्चा लेने और मुकाबला करने के लिए अनुप्राणित और प्रोत्साहित कर सकता था। ऐसा सकल्प तभी हो सकता था जब जनता को यह विश्वास हो जाय कि वह अपने देश की रक्षा के प्रयत्न में लगी है, जिसके लिए जो कुछ भी त्याग करना पडे उसे खुशी-खुशी करना चाहिए। पर ब्रिटिश गवर्नमेंट सघर्प बचाने के लिए अशक्त साबित हो चुकी थी। वह भारतवासियो के हृदय में देश के प्रति ममत्व की भावना, जो त्याग करवा सकती थी, जागने नही देना चाहती थी। महात्माजी ने सोच लिया था कि ऐसी अवस्था में स्वतन्त्र भाव से अपनी रक्षा का उपाय सोचना चाहिए। पर वह कोई अहिंसात्मक उपाय ही हो सकता था। दूसरे लोग भी, जो अहिंसा में इतनी शक्ति नही देखते थे और जो इस कारण से हिंसात्मक युद्ध में भी हिंसात्मक रीति से मदद करने की अपनी तैयारी बता चुके थे, जब गवर्नमेंट ने मदद लेने से इनकार कर दिया तब, इस बात पर मजबूर हुए कि अब फिर महात्माजी के नेतृत्व में ही कुछ-न-कुछ करना होगा!

समय नाजुक था। काग्रेस के लोग अथवा कोई भी यदि ऐसी बात कहते, जिससे युद्ध-सचालन में बाधा पडती, तो विद्रोही समझे जाते। यदि

देश की रक्षा के लिए कोई स्वतन्त्र उपाय सोचता तो वह भी विद्रोही समझा जाता, क्योंकि ब्रिटिश गवर्नमेंट यह माने बैठी थी कि भारत की रक्षा के लिए उसके पास चाहे साधन हो या न हो, रक्षा का भार उसी पर था, किसी और दूसरे के साथ वह इस भार का बँटवारा नही कर सकती।

महात्माजी उन दिनो बहुत जोरो से देश को चेतावनी भी दे रहे थे कि अपनी रक्षा का भार उसे अलग से उठाने के लिए तैयार होना चाहिए। प्रयाग में अखिल-भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक हुई। कार्यकारिणी के सामने इसी बात पर बहुत जबर्दस्त बहस चली। महात्माजी उस बैठक में नही आये थे। उन्होने कार्यकारिणी के लिए अपने विचार के अनुकूल प्रस्ताव का मसौदा भेज दिया था। वह कार्यकारिणी के कुछ लोगो को पसन्द नही आता था। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि उसकी कुछ बातो को छोडकर यदि हम उसपर एकमत हो जायें तो ठीक हो। पर ऐसा भी न हो सका। अन्त में कार्यकारिणी के सामने प्रस्ताव के दो रूप आये—एक जो मैंने महात्माजी के प्रस्ताव में काट-छाँट करके, यथासाध्य उसकी मौलिक बातो को कायम रखते हुए, तैयार किया था और एक दूसरा। कार्यकारिणी में राय लेने पर बहुमत मेरे पक्ष में हुआ, पर इसका अर्थ यह होता था कि कांग्रेस दो दलो में बँट जाती थी। महात्माजी भी वहाँ नही थे कि उनसे कुछ राय ली जा सके। अखिलभारतीय कांग्रेस-कमिटी के सदस्य प्रस्ताव का इन्तजार कर रहे थे। उसकी बैठक एक दिन के लिए स्थगित हो चुकी थी। इसलिए सब बातो पर विचार करके, बहुत डरते-डरते, मैंने अपने प्रस्ताव को वापस ले लिया। कार्यकारिणी को कह दिया कि अखिलभारतीय कांग्रेस-कमिटी में भी दूसरे प्रस्ताव का विरोध नही करूँगा, चुप रह जाऊँगा। मुझे डर इस बात का था कि न जाने महात्माजी मेरे प्रस्ताव को ही कहाँ तक पसद करेंगे, क्योंकि उनके भेजे मसौदे में बहुत काट-छाँट करके वह बनाया गया था, पर था उसी के अनुरूप। किन्तु अब तो मैंने उसे भी छोड दिया। फिर भी पीछे मुझे यह जानकर सतोप हुआ कि यद्यपि महात्माजी ने स्वीकृत प्रस्ताव को बहुत पसन्द नही किया, तो भी उन्होने उसमें से भी अपने काम चलाने लायक मसाला निकाल लेना सम्भव समझा कांग्रेस को ऐसे नाजुक समय में विभक्त न होने देने का मेरा निश्चय भी उनको नापसन्द नही हुआ।

अब जाहिर हो गया कि गवर्नमेंट के साथ मतभेद हो जायगा और युद्ध के जमाने में गवर्नमेंट किसी प्रकार के सक्रिय आन्दोलन—अर्थात् विरोधी कार्य—को बरदाश्त न कर सकेगी। पर अभी तक यह साफ नही था कि महात्माजी जो करना चाहेंगे—अर्थात् ब्रिटिश-गवर्नमेंट तथा देश पर

आक्रमण करनेवालो का विरोध एक साथ ही करने के लिए जो कार्यक्रम देश को बतायेंगे— वह कांग्रेस के लोगो को कहाँ तक पसन्द आयेगा। कार्यक्रम चाहे जो हो और दूसरे लोग चाहे जो करें, हमने तो निश्चय कर लिया कि अब समय आ गया है कि हम सबको महात्माजी के पीछे चलकर देश को अंग्रेजी राज्य और बाहरी आक्रमण से बचाने के लिए जो कुछ किया जा सकता है, करना चाहिए।

कार्यक्रम कोई निर्धारित नही था, पर मैंने जनता में जागृति लाने के लिए अपने सूबे (विहार) का दौरा आरम्भ कर दिया। बडी तेजी के साथ सूबे के बहुत हिस्सो में गया। खूब जोडो से महात्माजी के विचारो को दूर-दूर तक के लोगो के पास पहुँचाया तथा लोगो को आनेवाले संघर्ष-संकट से डटकर मुकाबला करने के लिए तैयार हो जाने को प्रोत्साहित किया। मुझे जहाँ तक स्मरण है, मैंने जितने जोरदार और जबरदस्त भाषण इस दौरे में किये, अपने जीवन में पहले कभी नही किये थे। प्रयाग की बैठक के बाद मै महात्माजी से जाकर मिला था। उनके द्वारा ही अनुप्राणित होकर मै दौरे पर निकला था। मै समझ गया था, और महात्माजी ने भी ऐसा कहा था, कि यह उनके जीवन का अन्तिम संघर्ष होगा। उस वक्त तक मैंने कभी अपने किसी भाषण में ऐसा नही कहा था कि लोगो को मरने के लिए भी तैयार होना चाहिए। मै बराबर यही कहा करता था कि देश के लिए मरने का समय अभी नहीं आया है, उसकी मांग यही है कि लोग अपने जीवन का प्रत्येक क्षण उसकी सेवा में लगाने के लिए तैयार रहे। मैं इतना ही कहना काफी समझता था—यद्यपि सत्याग्रह में बहुत लोगो ने अपनी जान देने की बात खुलकर जोरो से कही थी कि समय आ गया है जब हमको मरने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। उस वक्त मेरी यह धारणा की और ऐसा मै समझता भी था कि इस समय यदि हम चुके तो फिर न मालूम कब तक हम गिरे रह जायेंगे।

तैंतीसवाँ अध्याय

थोड़े दिनो के बाद अखिलभारतीय कमिटी की बैठक बम्बई में हुई। ८ अगस्त (१९४२) को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। यह कांग्रेस के लिए और भारतवासियो के लिए चुनौती थी। महात्माजी ने अपने भाषण को 'करो या मरो' मन्त्र के साथ समाप्त किया था। रात समाप्त होने के पहले ही महात्माजी तथा वर्किङ्ग-कमिटी के दूसरे सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। फौरन् वे अज्ञात स्थानों को भेज दिये गये। बहुत दिनो के बाद यह बात खुली कि महात्माजी पूना के पास आगाखाँ महल में ले जाकर रखे गये है, जहाँ वे प्रायः ढाई वर्ष तक रहे। वहाँ पहुँचने के चन्द दिनो के भीतर ही श्री महादेवभाई देसाई का देहान्त हुआ। महात्माजी के छूटने के कुछ दिन पहले श्री कस्तूरबा भी चल बसी। वर्किङ्ग-कमिटी के सदस्य अहमदनगर के किले में नजरबन्द रखे गये। मै अस्वस्थता के कारण बम्बई की सभा में शरीक नही हो सका था। पर मुझे भी ९ अगस्त के सवेरे, बीमारी की हालत में ही, गिरफ्तार करके पटना-जेल में रख दिया। वहाँ मै १५ जून (१९४५) तक रहा। महात्माजी के लेखो ने सारे देश में बडी जागृति की थी। विहार में मेरे दौरे ने भी कुछ असर पैदा किया था। पर यह कहना ठीक नहीं है, जैसा पीछे कहा गया, कि तोड़-फोड का कार्यक्रम पहले से निश्चित करके लोगो को बता दिया गया था और जनता ने उसी कार्यक्रम के अनुसार रेल की पटरियो को उखाडा, रेलवे स्टेशनो को बेकार कर दिया, तार और टेलीफोन के तारो को काट डाला, स्टीमर के जट्टियो को बहा दिया तथा सडको पर गाछो को काटकर इस तरह से डाल दिया कि उनपर किसी सवारी का आना-जाना असम्भव हो गया।

सन् १९३० के सत्याग्रह के दिनो में यह चर्चा चली थी कि तार काट दिये जायँ। जिसमे गवर्नमेंट की खबर जल्दी-से-जल्दी एक स्थान से दूसरे

स्थान तक न पहुँच सके । सत्याग्रहियो के लिए तो तार काम आते ही नही थे । काग्रेस के कुछ लोगो का विचार था कि लोहा-लकडी तो वेजान चीज है, उसको तोडने-काटने में तो कोई हिंसा की बात नही आती । पर सब बातो पर विचार करके यह कार्यक्रम नामजूर कर दिया गया था । महात्माजी उस समय दिल्ली में थे । यह निश्चय उनसे बिना पूछे ही कर दिया गया था । बम्बई की सभा से कुछ पहले वर्धा में कार्यकारिणी की बैठक हुई थी । वही पर बम्बई में सभा बुलाने का निश्चय किया गया था । इन्ही दिनो, जब वर्किङ्ग-कमिटी का काम खत्म करके बहुतेरे लोग जहाँ तहाँ चले गये थे, मैं कुछ दिन अभी वही ठहरा रहा । एक दिन किसी ने महात्माजी से यह प्रश्न पूछ दिया कि तार काटना हिंसा है या नही । उन्होने उत्तर दे दिया कि लकडी-लोहा काटने में हिंसा या अहिंसा का सवाल नही उठता, पर यह काम कौन करता है और किस विचार से करता है और इसका क्या नतीजा होता है, इन बातो पर उस काम का हिंसात्मक अथवा हिंसात्मक होना निर्भर करता है ।

जब मै पटना लौटा तब, और बम्बई-सभा के पहले, प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी के सभी लोगो को बुलाया । मैंने इस बात का जिक्र किया था । साथ ही, यह चेतावनी भी दे दी थी कि यह काम महात्माजी की इजाजत के बिना नहीं करना चाहिए; क्योकि इससे बडी दिक्कतें पैदा हो सकती हैं और इसका असर भी बहुत बुरा पड सकता है । जब बम्बई जाने का समय आया तो मैंने सोचा कि हो सकता है, वहाँ हम सब गिरफ्तार कर लिये जायें और लोगो को कोई हिदायत या कार्यक्रम देने का मौका ही न मिले, इसलिए मैंने प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी के मत्री से कहा कि एक कार्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए, जिसके अनसार, अगर लडाई छिड गई और हममें से कोई कार्यक्रम देनेवाला न रहा तो, काम होता रहेगा । मै बीमार था और स्वय बहुत लिख नही सकता था इसलिए मैंने बातें सिर्फ बता दी थी । कार्यक्रम लिखकर मेरे सामने रखा गया । मैंने उसमें जो सशोधन उचित समझा, कर दिया । उसमें एक बात रेल-तार इत्यादि के तोडने-काटने के सम्बन्ध में थी । पर मैंने उसे अपने हाथो काट डाला । मैंने उस परचा को छपवाकर रखने का आदेश दिया । मै आशा कर रहा था कि मै बम्बई जा सकूँगा, पर जब नही जा सका तब मैंने आदेश दे दिया कि वह परचा अभी न छापा जाय, बम्बई के फैसले का इतजार किया जाय । मै समझता था कि वह अभी नही छापा गया है, पर बात ऐसी नही थी । वह छपवाकर तैयार रखा गया था । जब ९ अगस्त को हमारी गिरफ्तारी के लिए लोग आ गये तो मैंने

सोचा, अब समय आ गया है कि परचा छपवाकर बटवाया जाय, नही तो जनता यह नही समझ पायेगी कि उसे क्या करना चाहिए। पर मुझे मालूम हुआ कि परचा छपकर तैयार है। जेल जाने के पहले ही मैंने आदेश दे दिया था कि वह तुरन्त सारे प्रान्त में बटवाया जाय। मेरे जेल चले जाने के बाद यह मालूम हुआ कि वह बाँटा गया। बहुत करके उसीके अनुसार लोगो ने काम किया भी। पर उसमें, जैसा ऊपर कहा गया है, रेल और तार तोडने-काटने की बात नहीं थी। यह काम बिहार में बहुत जोरों से हुआ। जेल में मैं सोचा करता था कि यह विचार क्यो और कैसे फैला। पर इसका कारण जल्द ही मालूम हो गया। गवर्नमेंट का यह कहना कि कांग्रेस की ओर से यह कार्यक्रम दे दिया गया था, कम-से-कम बिहार के लिए, जहाँ सबसे अधिक तोड-फोड़ हुआ, बिल्कुल बेबुनियाद है। फिर भी कहता हूँ कि मैंने सेवाग्राम में हुई बातो का जिक्र कर दिया था, पर साथ ही चेतावनी भी दे दी थी। छपे परचे में, जो मेरी गिरफ्तारी के दिन ही बिहार के कोने-कोने में पहुँच गया, इनका कोई जिक्र ही नही था। पर इस कार्यक्रम के चलाने में गवर्नमेंट का ही विशेष हाथ था! ८ अगस्त की रात को ही, महात्मा गाधी और वर्किङ्ग-कमिटी के मेम्बरो की गिरफ्तारी के पहले ही, गवर्नमेंट की ओर से एक विज्ञप्ति निकाली गई थी, जिसमें सरकार ने कांग्रेस के कार्यक्रम का जिक्र किया था और गिरफ्तारियो को इसी कार्यक्रम के कारण जरूरी और मुनासिब बताया था! गवर्नमेंट की ही विज्ञप्ति में प्रकाशित कार्यक्रम में रेल-तार इत्यादि का तोडना भी एक कार्यक्रम बतलाया गया था!

यह विज्ञप्ति, ९ अगस्त के सवेरे ही, सारे देश के पत्रों में छप गई थी। मैं उसी विज्ञप्ति को पढ रहा था जब मेरी गिरफ्तारी के लिए डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट पहुँच गये! उसी दिन, या एक दिन के बाद, भारत-सचिव मिस्टर एमरी ने इगलैंड में वक्तव्य निकाला। उसमें भी इसका जिक्र था! वह भी भारत में प्रकाशित हुआ। मेरा विश्वास है कि जनता ने गवर्नमेंट की विज्ञप्ति से ही यह जाना कि कांग्रेस के कार्यक्रम मे यह सब दाखिल है। और, जब कोई कांग्रेस के प्रमुख व्यक्ति इसे रोकने के लिए बाहर नही रह गये, तो लोगो ने अपना धर्म समझा कि जहाँ तक हो सके, यह कार्यक्रम पूरा किया ही जाय। बिहार के सम्बन्ध में मैं कह सकता हूँ कि लोगो की ऐसी ही धारणा हुई; क्योंकि मुझे दो बातें जेल में मालूम हुई, जिनसे इस बात की पुष्टि हुई।

मेरी गिरफ्तारी के थोडी ही देर बाद एक दूसरे मित्र गिरफ्तार होकर आये, जिन्होने मुझ से एक बात कही, जिसका उल्लेख यहाँ ठीक होगा। मेरे गिरफ्तार हो जाने के बाद कुछ युवक उनके पास पहुँचे। उन्होने उनसे पूछा कि मै अपनी गिरफ्तारी के पहले कुछ कार्यक्रम उनको बता गया हूँ या नही। उन्होने उत्तर दिया कि मेरे साथ कई दिनो से उनकी मुलाकात नही हुई थी, इसलिए यह नही कह सकते कि मैने कोई कार्यक्रम दिया है या नही। इस पर उन युवकों में से एक ने गवर्नमेंट की विज्ञप्ति को, जो समाचार-पत्रो में छपी थी, उन्हे दिखलाया और कहा कि काग्रेस का कार्यक्रम तो छप गया है। उन्होने उत्तर दिया कि मुझको तो मालूम नही, पर जब गवर्नमेंट खुद काग्रेस का कार्यक्रम बताती है, तो सबको उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए! इससे मेरी धारणा हो गई कि अब यह कार्यक्रम चलेगा। मेरी वह धारणा एक घटना से दूसरे ही दिन पुष्ट हो गई। पटना में लोगों ने तार और टेलीफोन जहाँ-तहाँ तोड डाले। यहाँ तक कि अब जेल से किसी गवर्नमेंट दफ्तर में या किसी अधिकारी के पास टेलीफोन द्वारा खबर नही दी जा सकती थी। सारे शहर में बहुत धूम थी। जुलूस बनाकर लोग सेक्रेटेरियट तक गये। वहाँ एक-दो युवक किसी तरह छिपकर छत पर जा पहुँचे। ऊपर ही राष्ट्रीय झडा फहरा दिया। कचहरियाँ बन्द हो गई। रास्ते पर गाडियो का चलना कठिन हो गया। सेक्रेटेरियट के सामने गोली चली। कई युवक आहत हुए। बहुतेरे गिरफ्तार करके पटना जेल में ही लाये गये। जेल में इतने आदमियो के लिए जगह नही थी। इसलिए लोग वहाँ चारो तरफ अहाते के अन्दर घूमते-फिरते रहे। वे जेल के दोमहले कोठे पर चढ़कर, जो सडक के किनारे की ओर है, सडक पर चलते हुए लोगों को प्रोत्साहित भी करते रहे। जेल के अधिकारियो ने आकर हमलोगो से कहा कि हम अगर उनको नही सँभालेंगे तो मुमकिन है कि दूसरे बडे अफसर आकर सख्ती करें और ये लोग, जिनमें प्राय सभी विद्यार्थी है, गोलियों के शिकार बनें।

इस समय तक बिहार के प्रमुख काग्रेसी लोगो में से बहुतेरे पटना-जेल में पहुँच चुके थे। उनलोगो ने भी लडको की रोक-थाम करने की कोशिश की। वे जब उनके नजदीक आ जाते थे तब उनकी बात मान लेते थे, पर आँखो से ओझल होते ही फिर अपना काम शुरू कर देते थे। जो बातें वे विशेषकर सडक पर चलती जनता को चिल्ला-चिल्ला कर सुनाते थे उनमे विशेषकर रेल-तार इत्यादि तोडने-फोडने की बात ही रहा करती थी। अन्त में, जेल के अधिकारियो ने ऐसे चालीस-पचास लडको को लारी में चढाकर

कैम्प-जेल में, जो पटना में ही उस जेल से दो-ढाई मील की दूरी पर है, भेज देने का निश्चय किया। दो लारियो पर कुछ लडके सवार कराये गये। लारियाँ चल पडी। बाकी लड़के अभी जेल के अन्दर ही थे, लारी तक नहीं पहुँचे थे। इतने में जनता की भीड, जो जेल के नजदीक पहले से ही जुटी खडी थी, टूट पडी। लारियो में से उन लडको को उतार लिया और लारियों में आग लगा दी, जो जेल के सामने ही जल गई। कुछ लडके उसी भीड में मिल गये और भीड के साथ ही बाहर चले गये। पर दो-एक जेल में भी वापस आ गये। अब और गवर्नमेंट की ओर से तैयारी होने लगी। फौज और पुलिस को बडी तायदाद में बुलाकर दूसरी लारियो में बाकी लोगो को ले जाने का प्रबन्ध किया जाने लगा। मै तो बहुत बीमार था। ज्यादा बातें भी नही कर सकता था। पर तो भी मैने उन लडको को समझाने की कोशिश की कि इस प्रकार लारी जला देना अथवा पुलिस पर हमला करके कैदियो को छुडा लेना ठीक नही है। पर यद्यपि वे मेरा बहुत लिहाज करते थे और शान्ति के साथ बातें भी करते रहे, तथापि उनको मैं समझा नहीं सका कि तोडफोड का काम गलत है और अगर इसे करना ही है तो एक तरीके से करना चाहिए। मैं मानता हूँ कि सत्याग्रह में छुपकर कोई काम करने की कोई गुजाइश नही है। सत्याग्रही जो कुछ करता है हमेशा निर्भय होकर करता है, डके की चोट करता है और अपने किये का फल भोगने को तैयार रहता है। इसलिए उसे छुपने-छुपाने की जरूरत नहीं होती। छुपने-छुपाने का अर्थ है सजा से भागना और जो कुछ किया जाय उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर न लेकर दूसरे के सिर थोपना।

इस आन्दोलन में यह देखा गया कि रेल के आसपास के लोगो पर बडी सख्ती की गई। इसका किसी ने पता नही लगाया कि किसने रेल तार तोडा है। नतीजा यह हुआ कि बहुत ऐसे लोगो को दमन का शिकार बनना पडा जो तोड-फोड में कभी शरीक नही हुए। मैंने यही बात समझाने की कोशिश की और कहा कि अगर करना है तो खुलेआम और हो सके तो सूचना देकर इस तरह का काम करना चाहिए, ऐसा न करने से तो बेकसूर लोग पिस जायेंगे। पर उस वक्त तो यह सभी मानते थे कि चाहे जिस तरह से हो गवर्नमेंट के काम को बन्द कर देना चाहिए। लोगो ने ऐसा ही किया भी। इसलिए, कम-से-कम बिहार मे जो तोडफोड का काम इतने बडे पैमाने पर और इतनी सफलता के साथ हुआ, उसका श्रेय मैं कांग्रेस को नही देता। मैं मानता हूँ कि यह जनता की अपनी सूझ थी। लोगो ने इसमें कोई हिंसा नहीं देखी, बस इसे जोरो से चला दिया। मैं यह भी मानता हूँ कि इसका

श्रेय किसी दूसरे दल के लोगो को भी नही मिल सकता है, क्योकि सभी दलो के प्रमुख लोग इस काम के फैलने के बहुत पहले ही प्राय सब-के सब गिरफ्तार कर लिये गये थे। वे कोई सगठन नही कर पाये थे। सगठन खुद जनता ने किया। जनता ने ही अपनी वुद्धि के अनुसार, इसे काग्रेस का कार्यक्रम समझकर, जहाँ तक हो सका, पूरा करने का प्रयत्न किया। कुछ दिनो के वाद, आन्दोलन कुछ धीमा पड गया। वाहर बच रहे लोग प्रयत्न करने लगे कि यह काम जारी रहे, पर उनको कोई सफलता नही मिली। इससे यह स्पष्ट है कि जनता का जोश ही इसका एकमात्र कारण था।

बिहार में यह आन्दोलन बहुत जोरो से चला। रेलो का चलना, बडी लाइन (ई० आई० आर०) तथा छोटी लाइन (ओ० टी० आर०) दोनो में हा, बहुत दिनो तक बन्द रहा। तार इत्यादि तो रुक ही गये थे। बहुतेरे पुलिस थानो पर जनता ने कब्जा कर लिया था। कई जिलो में ब्रिटिश राज्य का हुक्म केवल जिले के शहरो तक अथवा सडको के उस हिस्से तक ही सीमित रह गया था जहाँ तक पुलिस अथवा फौज की टोली गुजर रही हो। फौज ने भी वेतहाशा जहाँ लोगो को पाया वही गोलियो का शिकार बनाया! गाँवो को खूव लूटा और जलाया। लोगो ने भी रेल के मालगुदामो और माल से लदे डब्बो से जो लाइनो के टूट जाने की वजह से जहाँ-तहाँ पडे रहे, काफी माल लूटा। इस लूट में पुलिस का भी हाथ और हिस्सा रहा करता था, क्योकि यह आसानी से कहा जा सकता था कि लोग लूट ले गये! फौज ने चारो तरफ फैलकर बडी सख्ती से दमन किया। कई हफ्तो के बाद आहिस्ता-आहिस्ता रेल की पटरियाँ भी फिर से बैठाई गई। तब रेलो का चलना फिर से आरम्भ हुआ। बिहार में गगा से उत्तर के प्राय सभी जिलो में, तथा सयुक्तप्रदेश के पूर्वी जिलो में भी, ओ० टी० रेलवे (छोटी लाइन) बहुत करके तहस-नहस हो गई थी। गगा से दक्षिण ई० आइ० आर० (वडी लाइन) भी, प्राय मुगलसराय से (पटना होकर) आसनसोल तक, वहुत जगहो में तोड-फोड दी गई थी। पर ग्राड-कौड लाइन, जो मुगलसराय से आसनसोल तक सहसराम-गया होकर जाती है, बहुत अशो में सुरक्षित रह गई। इसलिए ई० आइ० आर० का काम उतना नही रुका जितना ओ० टी० रेलवे का।

सिर्फ रेल और तार ही नही, लोगो ने स्टीमर का चलना भी एक प्रकार से रोकने का प्रयत्न किया था। गगा में जहाँ-जहाँ स्टीमरो के ठहरने के लिए जो लोहे की वडी-वडी नावो के घाट वने थे, जिनको 'जेटी' कहते है, उनको भी लोगो ने नष्ट कर दिया—जेटियो को खोलकर या तो गगा में

डुबो दिया या बहा दिया। कई स्टीमरो के अन्दर घुसकर उनके पुर्जो को इस तरह तोड डाला कि वे कुछ समय के लिए बेकार हो गये। सडको पर बडे-बडे दरख्तो को काटकर गिरा दिया, जिससे उनपर किसी सवारी का आना-जाना बन्द हो जाय। मैंने सुना कि पुलो के तोडने का भी, चाहे रेल की लाइनो पर हो अथवा सडको पर, प्रयत्न किया गया। पर डानेमाइट न होने के कारण यह हो नही सका। यह सब इसलिए लोगो ने किया कि फौज या पुलिस जल्दी सब जगह पहुँच न सके और गवर्नमेंट का शासन बन्द हो जाय। इस तरह, एक प्रकार से अराजकता फैल जाने पर भी यह आश्चर्य की बात हुई कि उन दिनो जनता के घरो में एक तरह से चोरी डकैती बन्द-सी हो गई। अगर रेल या सरकारी दफ्तरो पर जनता की तरफ से लूटपाट की गई तो जनता के घरो पर लूटपाट पुलिस तथा फौज की तरफ से की गई। जहाँ-तहाँ फौज और पुलिसके कुछ आदमी मारे भी गये, पर उनकी सख्या बहुत कम थी। हाँ, जनता में आहतो की सख्या बहुत थी।

इस क्राति का फल उस समय यह नही देखने को मिला कि ब्रिटिश गवर्नमेंट एकबारगी भारतवर्ष से उठ जायगी। कुछ दिनो के लिए कुछ स्थानो पर, विशेषकर बिहार मे, अग्रेजी राज्य उठ गया था। पर यह बात न तो सर्वव्यापक थी न स्थायी। पीछे चलकर फौज और पुलिस ने स्थिति पर काबू कर लिया। पर यह दो बातें स्पष्ट हो गई—पहली यह कि जनता अगर एक साथ सभी जगहो पर बिगड जाय और अग्रेजी राज्य के शासन को मानने मे इनकार कर दे तो अग्रेजी राज्य नही चल सकता है और दूसरी यह कि जनता अगर बिगड जाय तो गवर्नमेंट की सारी फौज भी उसे दबा नही सकती। इस बार अगर लडाई के लिए इतनी बडी तादाद में फौज बिहार में न होती और उसके पास जापान से लडने के लिए इतना समान मौजूद न होता, तो कम से-कम बिहार को फिर से फतह करना आसान नही होता और होता भी तो उसमें समय बहुत लगता। पर लडाई के कारण अग्रेजी और अमेरिकी फौज बडी तादाद मे बिहार में ही मौजूद थी। उसके पास आमद-रफ्त और लडाई के लिए काफी सामान मौजूद था, जिसका उसने जनता के इस विद्रोह को दबाने में खूब प्रयोग किया। जनता ने अपनी ओर से चाहे तोड-फोड कितना भी किया, पर उसने मनुष्य के जीवन पर भरसक हमला नही किया। चन्द जगहो में जो कुछ खून हुए वे लोगो के आतुर हो जाने के कारण ही हुए, क्योकि पुलिस और फौज की तरफ से जुल्म-सख्ती बहुत हो रही थी। बरसात के दिन थे। नदियो में बाढ आई हुई थी। फसल खडी थी। बरसात में यो ही आना-जाना कठिन हो जाता है, इस वक्त तो उसके

साधन भी प्राय नष्ट कर दिये गये थे। जनता में आत्म विश्वास जग गया था। हमने यह भी सुना कि फौजवाले भी खेतो के—खास करके ऊख और मकई के खेतो के—पास होकर गुजरने में डरते थे, क्योकि एक-दो जगहो में ऐसे खेतो में छिपे लोगो ने उनपर हमला कर दिया था। इन सब बातो से यह स्पष्ट हो गया कि इस बार यद्यपि ब्रिटिश गवर्नमेंट ने आन्दोलन को दबाने का भरपूर प्रयत्न किया, तो भी वह इस बात को समझ गई कि अब वह भारत को अपने कब्जे में नही रख सकेगी, उसे भारत के साथ कुछ-न-कुछ समझौता करना ही होगा। लडाई के कारण उसको धन और जन दोनो बहुत खर्च करना पडा था। इसलिए ससार की शक्तियो में एक बडी शक्ति होते हुए भी वह कमजोर पडती जा रही थी, जिससे यह सँभाल और भी कठिन हो गया था और यह कठिनाई दिन-दिन बढती ही जा रही थी। फलस्वरूप वह भारत को दबाये न रख सकी। ऐसा ही हुआ भी। लडाई समाप्त होने के पहले ही मिस्टर चर्चिल ने भी, जिन्होने लडाई जीतने में अपना साहस दिखलाया था और जो भारतवर्ष को स्वराज्य देने का बराबर कट्टर विरोध करते आये थे, लार्ड वेवल को वायसराय बनाकर यहाँ भेजा और उनको आज्ञा दी कि काग्रेसियो के साथ कोई समझौता वह कर लें।

चौंतीसवाँ अध्याय

कुछ दिनो तक स्थिति का अध्ययन करने के बाद लार्ड वेवल ने, १९४५ के जून में, कांग्रेस-वर्किङ्गकमिटी के सभा-सदस्यो को छोड दिया। गांधीजी कुछ पहले ही छोड दिये जा चुके थे। एक कान्फरेंस शिमला में १९४५ में बुलाई गई। उसमें सभी प्रान्तो के प्रधान मत्री, जो उस समय तक काम कर चुके थे और जो उस समय काम कर रहे थे अथवा जिन्होने लडाई आरम्भ होने पर कांग्रेस की आज्ञा से पदत्याग किया था, बुलाये गये। महात्माजी तथा मिस्टर जिन्ना भी निमन्त्रित थे। इनके अलावा केन्द्रीय धारा-सभा के भिन्न-भिन्न दलो के नेता लोग भी बुलाये गये थे। कान्फरेन्स १४ जुलाई (१९४५) को हुई। लार्ड वेवल ने विज्ञप्ति निकाल दी थी कि वे ब्रिटिश सरकार की अनुमति से यह सम्मेलन कर रहे है और कांग्रेस-वर्किङ्ग-कमिटी के सदस्यो तथा प्रान्तो के दूसरे नेताओं को छोडने का हुक्म दे रहे है। ब्रिटिश सरकार का यह प्रस्ताव था कि वायसराय की कौंसिल में, जिसमे अबतक अधिक अंग्रेज ही हुआ करते थे और मुख्य विभाग—जैसे अर्थ-विभाग और गृह-विभाग तथा सेना-विभाग—अंग्रेज मेम्बरो के ही हाथो में रहा करते थे, अब दो को छोडकर, अर्थात् स्वय वायसराय और प्रधान सेनापति के अलावा, और सभी मेम्बर हिन्दुस्तानी ही होगे, कौंसिल के सदस्यो के अधिकारो में कोई फर्क नही पडेगा, वे अधिकार वही रहेगे जो १९३५ के विधान के अनुसार उनको दिये गये थे। लार्ड वेवल ने अपने वक्तव्यो मे इसको और साफ कर दिया दिया कि इस योजना के अनुसार पहले-पहल अर्थ-विभाग, गृह-विभाग और विदेशो से सम्बन्ध रखनेवाला विभाग हिन्दुस्तानियों के हाथ में आवेंगे। उन्होने यह भी बता दिया था कि उनके विचार से इस कौंसिल में हरिजन छोडकर दूसरे हिन्दू तथा मुसलमान

बराबर सख्या में होगे। उन्होने आशा प्रकट की थी कि इसपर यदि यह कान्फरेन्स सफल हो गई और कौंसिल भी बन गई, तो भविष्य का विधान कैसे बनेगा—इस पर भी विचार किया जा सकेगा। मुस्लिम लीग के कारण कान्फरेन्स किसी एक मत पर नही पहुँच सकी। तब लार्ड वेवल ने सभी दलो से अनुरोध किया कि वे ऐसे लोगो के नाम दे दें जिनका वे कौंसिल में आना मुनासिब समझते है और उन नामो में से वे स्वय ही सदस्यो के नाम चुन लेंगे। पर मुस्लिम-लीग ने ऐसी नामावली देने से भी इनकार कर दिया। बस कान्फरेंस बिना कुछ किये ही समाप्त हो गई। पर लार्ड वेवल ने कान्फरेंस की समाप्ति पर भी आशा नही छोडी। उन्होने कहा कि फिर समय पाकर यह प्रयत्न किया जायगा, तबतक जैसे काम चलता था वैसे चलता रहेगा।

यद्यपि १९४२ में, और उसके बाद भी, गवर्नमेंट की तरफ से दमन-नीति का प्रयोग काग्रेस के विरुद्ध बराबर होता रहा तथापि जब लार्ड वेवल ने यह कान्फरेन्स बुलाई और वर्किङ्गकमिटी के मेम्बरो को जेल से मुक्त कर दिया, तब से महात्माजी के दिल में ऐसी भावना बन गई कि ब्रिटिश गवर्नमेंट सचमुच भारत के साथ कुछ-न-कुछ समझौता करना चाहती है। यही भावना काग्रेस के बहुतेरे दूसरे लोगो के दिल में भी थी। यद्यपि ऐसे लोग भी थे जो काग्रेस का इस कान्फरेन्स में शरीक होना अथवा इसके बाद जितनी कार्रवाई होती गई उसको नापसन्द ही करते गये, तथापि महात्माजी और काग्रेस-कार्यकारिणी का यह प्रयत्न सदा बना रहा कि यदि हो सके तो समझौता होना चाहिए। इस भावना का एक कारण यह भी था कि लडाई प्राय समाप्ति पर आ चुकी थी। जर्मनी और इटली परास्त हो चुके थे। जापान भी लड रहा था, पर वह भी हारता ही जा रहा था, जिस भूभाग को उसने कब्जे में कर लिया था उससे आहिस्ता-आहिस्ता हटाया जा रहा था। १९४२ का आन्दोलन ऐसे समय में आरम्भ हुआ था जब जर्मनी और जापान जीतते जा रहे थे। उस समय तक अग्रेज हार रहे थे। अब, जब वे प्राय विजयी हो चुके थे, समझौता करने का उन्होने प्रस्ताव किया, तो सचमुच वे समझौता चाहते होगे, यह भावना सच निकली, क्योकि अत में भारत स्वतन्त्र होकर रहा।

उक्त कान्फरेंस समाप्त होने के थोडे दिन बाद इङ्गलैंड में नया चुनाव हुआ। मि० चर्चिल का दल हार गया। मजदूर-दल का मन्त्रिमडल बन गया। मजदूर-दल ने पहले से ही वचन दिया था कि वह भारत को स्वतन्त्र बनायेगा। इसे वह भूला नही था। थोडे ही दिनो बाद उसने मन्त्रिमडल के

तीन सदस्यों को भारत से बातचीत और कुछ समझौता करने लिए भेजा। यहाँ उन सब लोगों के सम्बन्ध में विस्तार-पूर्वक लिखने की जरूरत नहीं है। उनलोगों ने यहाँ कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के साथ बातचीत की। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि भारत का विधान बनाने के लिए विधान-परिषद् बनाई जाय, जो भारत का विधान तैयार करे। साथ ही, तबतक यहाँ का शासन चलाने के लिए मन्त्रिमंडल बनाया जाय, जिसमें कांग्रेस और लीग के प्रतिनिधि रहें। बहुत वाद-विवाद के बाद ऐसा मन्त्रि-मंडल बन सका। पहले इसमें लीग के लोग शरीक नहीं हुए, पर पीछे वे भी आ गये। मुस्लिम-लीग इस पर तुली हुई थी कि पाकिस्तान की स्थापना हो जाय और वह भारत-जैसा ही स्वतन्त्र देश हो। इसके लिए मुसलमानों में बहुत जबरदस्त और जहरीला प्रचार होता रहा, जिसका नतीजा यह हुआ कि कांग्रेस के मन्त्रि-पद-ग्रहण करने के चन्द दिन पहले ही कलकत्ता में मुसलमानों ने बड़ा भारी बलवा कर दिया, जिसमें बहुत हिन्दू मारे गये, उनके घर और धन लूटे गये, उनकी बड़ी बरबादी हुई। बंगाल में उस समय लीगी गवर्नमेंट थी, इसलिए उसकी तरफ से हिन्दुओं को कोई सहायता नहीं पहुँची। अन्त में हिन्दुओं ने भी अपना स्वतन्त्र संगठन बना लिया। अपने बचाव के लिए वे तत्पर और तैयार हो गये। फलतः बहुत मुसलमान भी मारे गये। कई दिनों तक यह खूनखराबी चलती रही। चन्द दिनों के बाद पूर्व-बंगाल में, जहाँ मुसलमानों की बहुत बड़ी आबादी है, नोआखाली और आसपास के स्थानों में, बड़े जोरों से और बहुत बड़े पैमाने पर बलवा शुरू हो गया। उसमें बहुत हिन्दुओं के घर लूटे और जलाये गये। बहुतेरे हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये! महात्माजी ने जब इन सब घटनाओं की खबर पाई तो उन्होंने बंगाल जाने का निश्चय किया ताकि वह हिन्दुओं को सान्त्वना दे सकें और मुसलमानों को समझा सकें। वह नोआखाली गये। वहाँ जाना उनके लिए खतरे से खाली नहीं था, पर उन्होंने अपने प्राणों की परवा न करते हुए वहाँ जाना ही उचित समझा। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुओं में हिम्मत आ गई। मुसलमान भी उनका यहाँ जाना पहले शुबहा की निगाह से देखते थे। पर आहिस्ता आहिस्ता वे लोग उनकी ओर झुकने लगे। यह अहिंसा के उन चमत्कारों में था जो आगे चलकर कुछ और ही देखने में आये।

बंगाल में बिहार के बहुत लोग जाया करते हैं। वहाँ मेहनत करके कुछ पैसे कमाया करते हैं। उनमें पढ़े-लिखे बहुत थोड़े ही हुआ करते हैं। वे छोटी-मोटी नौकरियों से सतुष्ट हो जाया करते हैं। उनकी संख्या कल-

कत्ता में बहुत बडी है । सारे बगाल में, जिसमे अब पूर्वी बगाल भी शामिल है, बिहार के आदमी गाँव-गाँव में फैले हुए मिलते है । कलकत्ता के हत्याकाड में बहुतेरे बिहारी भी आहत हुए । बहुतेरे भागकर अपनी जान बचाने के लिए अपने प्रान्त के गाँव में वापस चले आये । उनके साथ जो जुल्म और ज्यादतियाँ हुई थी, कलकत्ता में मुसलमानो की ओर से हिन्दुओ के साथ जो बर्ताव किया गया था, सबकी खबर उन्होने बिहार के गाँवो में फैला दी । नतीजा यह हुआ कि बिहार में मुसलमानो के प्रति बडा रोप पैदा हुआ । एक मौका पाकर वहाँ भी बडे जोरो से बलवा-फसाद शुरू हो गया । बगाल की परिस्थिति बिहार की परिस्थिति से बिल्कुल प्रतिकूल है । बिहार में हिन्दुओ की जनसख्या बहुत है । यद्यपि मुसलमान भी सगठित और धनी है तथापि हिन्दुओ की बडी सख्या के सामने, अगर वे सगठित हो तो भी, उनका ठहरना असम्भव नही तो बहुत मुश्किल जरूर हो जाता है । उनकी बस्तियाँ भी बहुत करके अलग हो गई है । पर तो भी सभी जगहो में हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के पडोस में बसे हुए है ।

कलकत्ता और नोआखाली की खबरो ने बारूद में चिनगारी का काम किया, क्योंकि मुस्लिम लीग के ऊधम और बे लगाम प्रचार से लोग पहले से ही ऊबे हुए थे । पटना, मुगेर और, गया जिलो के कुछ हिस्सो में हिन्दुओ ने मुसलमानो से पूरा बदला चुकाने का ठान लिया । बहुतेरे मुसलमान मारे गये । उनके घर और धन लूटे गये । बगाल और बिहार के बलवे में एक बडा अन्तर यह था कि बगाल में सरकारी कर्मचारी और पुलिस के लोग प्राय तटस्थ होकर बैठे रहे—हिन्दुओ को खूब लुटने पिटने दिया, पर बिहार में गवर्नमेंट और पुलिस ने बडी तनदेही के साथ बलवाइयो को रोकने का प्रयत्न किया और फौज को भी इस काम में लगा दिया । हमलोग भारत-सरकार में काम कर रहे थे । पडित जवाहरलालजी, सरदार वल्लभभाई, काग्रेस के प्रधान कृपालानीजी, मुस्लिम लीग के केन्द्रीय मत्री तथा मै—सब-के-सब दौड़कर बिहार पहुँचकर फसाद रोकने में बडी तत्परता से लग गये । उधर महात्माजी ने बिहार के बलवे की खबर पाते ही बिहारियो के नाम अपील निकाली और यह धमकी दे दी कि बलवा अगर न रुका तो उनको अनशन करना पडेगा । उन्होने अनशन की तैयारी अपना भोजन कम करके बता दी । उनके अनशन की बात सुनते ही बिहार घबरा उठा । बलवा-फसाद रुक गया । बिहार के साथ महात्माजी का जो पुराना सम्बन्ध था और बिहार पर उनका जो विश्वास तथा भरोसा रहा करता था उसीके बल पर उन्होने अनशन की धमकी दी थी । बिहार की जनता ने उनकी

बात सुनी। बलवा ठंडा पड़ गया। बंगाल में भी जो कुछ अन्देशा बलवा फैलने का रह गया था वह उस वक्त तक के लिए समाप्त हो गया।

पर इतने से ही सब झगड़े तय नहीं हुए। मुस्लिम लीग पाकिस्तान लेने पर तुली हुई थी। इसके लिए सभी जगहों पर बलवा-फसाद होने की सम्भावना हमेशा सामने खड़ी रहती थी। कुछ दिनों के बाद पश्चिम पंजाब और सीमाप्रान्त में भी बहुत बड़े पैमाने पर बलवे शुरू हो गये। सिक्ख और हिन्दू मारे-पीटे-लूटे जाने लगे। उनकी एक बहुत बड़ी संख्या, १९४७ के मार्च-अप्रैल में, जान बचाने के लिए, अपनी सब धन-दौलत वहीं छोड़कर हिन्दुस्तान भाग आई। इस तरह झगड़े कहीं-न-कहीं अक्सर होते ही रहे।

पैंतीसवाँ अध्याय

केन्द्रीय भारत-सरकार मे भी काग्रेस और लीग के मन्त्रिमडल का मिलजुलकर काम करना असम्भव था। वहाँ भी बराबर खटपट हुआ ही करती थी। ब्रिटिश गवर्नमेंट भी इस स्थिति से सतुष्ट नही थी। उसने लार्ड वेवल को वापस बुला लिया, उनके स्थान पर लार्ड माउण्टबेटन को वायसराय बनाकर भेज दिया। लार्ड माउण्टबेटन भारत आते ही स्थिति का अध्ययन करने लग गये। थोडे ही दिनो में फिर सलाह देने के वास्ते वह लदन लौटे। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने उनकी नियुक्ति के समय ही यह घोषणा कर दी थी कि १९४८ के जून तक वह सारा अधिकार भारत को सौंप देगी। वायसराय के भारत लौटने पर उसने एक और घोषणा निकाली, जिसमें उसने अपना यह निश्चय प्रगट किया कि १९४८ तक न ठहर कर १९४७ में ही भारत का शासन भारतीयो के हाथो में सुपुर्द करके वह अलग हो जायगी। इसके साथ उसने यह भी घोषणा की कि भारत के दो भाग कर दिये जायँगे—एक वह जिसमें सिन्ध, बलुचिस्तान, सीमाप्रान्त और पजाब के वे हिस्से रहेगे जिनमें मुसलमानो की आबादी अधिक है तथा दूसरा वह जिसमें वगाल का पूर्वी हिस्सा और आसाम के सिलहट-जिले का वह हिस्सा जहाँ मुसलमानो की कसरत है, इस तरह पाकिस्तान बनेगा और बाकी सब हिन्दुस्तान रह जायगा, दोनों ही स्वतन्त्र उपनिवेश बन जायँगे, दोनो की अलग अलग विधान-परिषदें होगी, जिनमें उन विभागो के रहनेवाले सदस्य होगे, इन विधान-परिषदो को अधिकार होगा कि जैसा चाहे वैसा अपने लिए विधान बना लें। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून भी इडियन-इण्डिपेंडेस-ऐक्ट के नाम से पास किया, जिसके अनुसार भारत के ये दोनो खण्ड अलग और स्वतन्त्र उपनिवेश मान लिये गये। दोनो की परिषदों को स्वेच्छानुसार विधान-निर्माण का पूर्ण अधिकार दे दिया गया। यह भी अधिकार दिया

गया कि उस वक्त तक जो कानून जारी है, चाहे वे पार्लियामेंट के बनाये हों अथवा भारतीय धारासभाओं के, और चाहे जैसे भी हों, उनमें संशोधन कर लें। विधान-परिषदों को यह भी अधिकार दिया कि वे चाहें तो ब्रिटिश साम्राज्य से अपने-अपने मुल्क को, पूर्ण स्वतन्त्र होकर भी, अलग कर ले सकते हैं। जिस समय लार्ड माउण्टबेटन लंदन वापस गये, इस बटवारे के लिए कांग्रेस और लीग की सहमति लेते गये थे। उसी के अनुसार ब्रिटिश गवर्नमेंट ने बटवारा मंजूर कर लिया।

यहां पर यह कह देना जरूरी है कि इस बटवारे की जिम्मेदारी कांग्रेस की वर्किङ्ग-कमिटी ने, और विशेषकर उन लोगों ने जो उस समय भारत-सरकार के मंत्रि-पद पर नियुक्त थे, अपने ऊपर ली। महात्माजी ने न तो इस बटवारे को ठीक समझा और न कभी उस सिद्धान्त को माना जिसके बल पर मुस्लिम लीग बटवारा चाहती थी। मुस्लिम लीग का यह दावा था कि हिन्दू और मुसलमान बिल्कुल दो राष्ट्र हैं, इसलिए वे कभी एक सरकार के मातहत नहीं रह सकते हैं, मुसलमानों को पूर्ण स्वतन्त्र रूप से उन इलाकों में शासन का अधिकार होना चाहिए जहां वे बहुसंख्यक हैं और हिन्दुओं को उन इलाकों में जहां उनकी आबादी ज्यादा है। महात्माजी इस 'दो राष्ट्र' की नीति को घातक समझते थे, इसलिए इनको नहीं मानते थे। पर जिन लोगों ने बटवारा मंजूर किया वे उस समय की परिस्थिति से ऊब गये थे। वे देखते थे कि बलवा-फसाद होते ही जाते हैं और होते ही रहेंगे—सरकार, जिसमें कांग्रेसी लोग भी थे, कुछ कर नहीं पाती; क्योंकि मुस्लिम लीग के मंत्री सभी जगहों में अड़ंगे लगाते रहते थे और जो विभाग उनके सुपुर्द थे उनमें वे अपनी मनमानी करके उन्हें अपने हाथों में करते जा रहे थे, चाहे इससे सारे देश का नुकसान भी हो, तो भी उसकी परवा न करके अपने दल को मजबूत करते और जहां मौका होता वहां हिन्दुओं को दबाते। इन सब बातों के कारण एक प्रकार से शासन चलाना असम्भव-सा होता जा रहा था। हमने सोचा कि बटवारा हो जाने से कम-से-कम जिन हिस्सों में हमारा अधिकार रहेगा उनमें हम जैसा चाहेंगे वैसा शासन चला सकेंगे और इस तरह भारत के बहुत बड़े हिस्से को सुरक्षित तथा सुसंगठित कर सकेंगे जिससे भारत-राष्ट्र की पूर्ण-रूपेण सेवा हो सकेगी। यह साफ था कि उस बटवारे से हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल नहीं हो रही थी, क्योंकि दोनों भागों में अल्पसंख्यक जातियां रह ही जाती थीं और जो कुछ उनके लिए किया जा सकता था वही सारे भारत के लिए भी किया जा सकता था। पर वह बात चल नहीं सकी, मजबूर होकर बटवारा मानना ही पड़ा।

महात्माजी को डर था कि इस बटवारे का नतीजा अच्छा नही होगा, जो हिन्दू और सिक्ख करोडो की सख्या में पाकिस्तान में रह जायेंगे और जो मुसलमान करोडो की सख्या में भारत में रह जायेंगे—उनके साथ न मालूम कैसा व्यवहार होगा, इसलिए वह अन्त तक बटवारा को नापसन्द करते रहे, पर जब उन्होने यह देख लिया कि जिन लोगो को शासन चलाने का भार सौपा गया है वे ही जब यह महसूस करते है कि या तो अब खुलकर लीग के साथ युद्ध हो या बटवारा हो, तब उन्होने चुप रहना ही मुनासिब समझा, और बटवारे में किसी प्रकार की बाधा नही डाली। जिन दिनो दिल्ली में बटवारा हो रहा था—यानी गवर्नमेंट की सभी चीजो का बटवारा भारत-सरकार के काग्रेसी और लीगी सदस्य आपस में मिलकर रहे थे—उन दिनो महात्माजी दिल्ली में ही थे। एक बटवारा-कमिटी मुकर्रर कर दी थी, जिसमें सरदार वल्लभ भाई पटेल और मै काग्रेस की ओर से थे। एक-एक विषय लेकर—जैसे भारत सरकार के लिये या दिये हुए कर्जे, रोकड मे कोई रुपये, सामान, फौज, फौजी सामान, इमारतें, इमारतो के सामान, रेल इत्यादि, यहाँ तक कि टेबिल, कुर्सी, टाइपराइटर तथा कर्मचारियो का बटवारा भी इसी कमिटी ने किया।

मै जब इस कमिटी में काम कर रहा था, प्रतिदिन महात्माजी से सवेरे टहलने के समय मिला करता था। उन्होने ही कहा था कि रोज आ जाया करो। इसलिए मुझे मौका मिलता था कि कमिटी में जो बातें होती उनको मै प्रतिदिन सवेरे उन्हे बता दिया करता। मै देखता था कि इन सब बातो से वह असन्तुष्ट थे, पर साथ ही कोई बाधा नही डालना चाहते थे, कहा करते थे कि देखो, जहाँ तक हो सके, अनिष्ट को तो बचा लो। कर्मचारियो को आज्ञा दी गई थी कि वे अपनी सेवा चाहे भारत सरकार को या पाकिस्तान को, जिस सरकार को चाहे, दे सकते है। यही बात फौज के साथ थी। इसका नतीजा यह हुआ कि प्राय सभी मुसलमान कर्मचारियो ने पाकिस्तान की सेवा पसद की और दूसरो ने भारत की। इसी सिद्धान्त पर बहुत करके फौज का भी बंटवारा हो गया। पर यह बटवारा भारत-सरकार ने अपने कर्मचारियो के सम्बन्ध में किया। प्रान्तीय सरकारो ने भी, जिन-जिन प्रान्तो का बटवारा हुआ उन प्रान्तो ने—जैसे पजाब, बगाल और आसाम ने—अपने माल, सामान तथा कर्मचारियो का इसी तरीके से बटवारा किया। पर जो सूबे बटवारे से अछूते रह गये उनमें न तो माल या सामान में किसी प्रकार का बटवारा हुआ और न कर्मचारियो में। बटवारे का काम बडी तेजी के साथ पूरा किया गया। १५ अगस्त (१९४७) के पहले यह काम समाप्त

हो गया—यद्यपि अभी फौज का बटवारा पूरा नहीं हो सका था। इसका नतीजा एक यह भी हुआ कि फौज के सिवा और सभी जगहों से हटकर अंग्रेज कर्मचारी बहुत करके भारत से चले गये, उनमें से बहुत थोड़े ही रह गये। किन्तु पाकिस्तान में, भारत के अनुपात में, उनकी सख्या अधिक रह गई। इसीसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेज कर्मचारियो में अधिकांश ऐसे थे जिनकी सहानुभूति मुसलिम-लीग तथा पाकिस्तान के साथ थी। फौज का बटवारा होने पर भी अंग्रेज अफसर, पाकिस्तान के मुकाबले, भारत में बहुत कम रह गये थे। इस प्रकार कर्मचारियो के बटवारे का एक भयकर फल यह हुआ कि पाकिस्तान में हिन्दू उच्च पदाधिकारी कर्मचारी नहीं के बराबर रह गये। वहां हिन्दुओ और सिक्खो के साथ अत्याचार होने लगा। वहां उनकी बात पूछनेवाला भी कोई नही रह गया।

दिल्ली में बैठे-बैठे बटवारे का काम शान्ति के साथ समाप्त हुआ। उसी तरह लाहौर और कलकत्ता में भी। १५ अगस्त के पहले ही पश्चिम बगाल और पूरबी पजाब का शासन कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने अपने हाथ में लिया। पाकिस्तान के सूबो में लीगी और हिन्दुस्तान के सूबो में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल, जो जहां पहले से काम कर रहे थे, शासन चलाते रहे। पूर्व और पश्चिम पजाब की तथा पश्चिम और पूर्व बगाल की तथा आसाम की सरहदें मिली हुई थी। कहां पर ठीक भारत और पाकिस्तान की सीमा पड़ती है, यह बहुत कुछ साफ होने पर भी कुछ अनिश्चित-सा था। इसलिए पांच आदमियो की पचायत बनी, जिसमें दो कांग्रेस की ओर से और दो लीग की ओर से पच मुकर्रर किये गये। इन चारो पर एक अंग्रेज सरपच सर श्रीरेड-क्लीफ। किन्तु १५ अगस्त के पहले ये पच अपना फैसला नहीं दे सके। इसका फैसला जब चन्द दिनो के बाद मालूम हुआ तब यह पाया गया कि कुछ हिस्से इधर से उधर कर दिये गये है, जिनके कारण हिन्दुओ में—और विशेषकर उन जगहो के लोगों में, जो समझते थे कि उनको भारत के साथ ही रहना चाहिए, पर पच के फैसले के अनुसार वे पाकिस्तान में ठेल दिये गये थे—बड़ा शोर मचा।

१५ अगस्त के पहले से ही भारत और पाकिस्तान के बीच की सरहदों पर अंग्रेज अफसरो की मातहती में फौज रखी गई थी। आशा की जाती थी कि सरहद पर अगर कुछ गड़बड़ी हुई तो वह फौज जनता की रक्षा करेगी, पर ऐसा हुआ नहीं। जब पश्चिमी पजाब और पाकिस्तान के दूसरे हिस्सो में हिन्दुओ और सिक्खो पर बहुत अत्याचार हुए तथा बहुतेरे मारे गये, प्राय सब धन-सम्पत्ति लूटी गई, तब इस फौज से कोई सहायता हिन्दुओं को नहीं

मिली । इधर दिल्ली में हमलोग १५ अगस्त को स्वतन्त्रता पाने के उपलक्ष में खुशियाँ मना रहे थे और इधर पश्चिमी पाकिस्तान में सिक्खो और हिन्दुओ को मार-काट कर पाकिस्तान को हिन्दुओ से बिल्कुल पाक-साफ बनाने का प्रयत्न हो रहा था । इसकी खबर दिल्ली तक तो कुछ देर से पहुँची, पर पजाब के लोगो को जल्द पता चल गया। उन्होने पूरबी पजाब में और आसपास के रजवाडो में बसे हुए मुसलमानो के साथ बदला लेना शुरू कर दिया। दिल्ली भी अछूती न रह गई। चन्द दिनो के बाद वहाँ भी बडे पैमाने पर बलवा-फसाद आरम्भ हो गया। इस सारे बलवे का नतीजा यह हुआ कि पश्चिमी पाकिस्तान से हिन्दू और सिक्ख, बेपनाह होकर, अपनी सारी धन-सम्पत्ति छोडकर, अलग-अलग बिखरी टोलियो में, पूर्वी पजाब की ओर या उससे भी और पूरब निकलकर, अपनी जानें बचाने के लिए, भारत की दिशा में निकल पडे। उसी तरह, इस तरफ से मुसलमान भी पाकिस्तान की ओर चल पडे ।

१५ अगस्त के पहले ही महात्माजी दिल्ली से चले गये थे। वह नोआखाली के रास्ते में कलकत्ता में ठहरे थे। वहाँ भी भयकर बलवे का सामान हो गया था। मुसलमानो से बदला लेने के लिए हिन्दू तैयार हो गये। महात्माजी ने ऐसी स्थिति देखकर वहा ठहर जाना उचित समझा, जहाँ मुसलमानो की ही आबादी जादा थी। बहुत ही सख्ती के साथ अपनी जानो पर जोखिम लेकर उन्होने बलवा न होने दिया, ऐसा वातावरण पैदा किया कि बलवा एक प्रकार से असम्भव सा हो गया। इस घटना को सभी लोगो ने मुक्त कठ से उनके व्यक्तित्व के एक चमत्कार तथा उनकी अहिंसा के जादू के नाम से मशहूर किया। उनकी अहिंसा और उनके दृढ सकल्प नें मुसलमानो की रक्षा कर दी। पर पश्चिम में अमानुषिक अत्याचार हो ही गये। किसी भी जाति के लोग यह नही कह सकते कि उनकी जाति अपने को इन दुष्कर्मों से अलग रख सकी।

दिल्ली में स्थिति बिगडने की खबर पाते ही महात्माजी दिल्ली चले आये। आते ही यहाँ भी फसाद रोकने में पूरी शक्ति के साथ डट खडे हुए। दिल्ली में यह खबर हो गई थी कि पाकिस्तान में सब कुछ जान बूझकर कराया गया है। और पाकिस्तान की इच्छा है कि वह दिल्ली में भी काग्रेस-मन्त्रिमडल की हत्या कराके यहाँ के सेक्रेटेरियट पर दखल जमा बैठे तथा इसी प्रकार सारे भारतवर्ष में अपना राज्य कायम करे, कम-से-कम गडबडी तो मचा ही दे। हिन्दू इस पर तैयार हो गये कि अब मुसलमानो को यहाँ से निकाल देना चाहिए। किन्तु महात्माजी ने दिल्ली पहुँचते ही स्थिति को

समझ लिया। जो फसाद दिल्ली में चल रहा था उसे ही सबसे पहले रोकने में वह लग गये। उनके बीच में पडने का फल यह हुआ कि हिन्दुओ ने मुसलमानो का भारतवर्ष से निकालने का इरादा या प्रयत्न छोड दिया। पर इसके पहले ही बहुतेरे मुसलमान कर्मचारी या तो पाकिस्तान चले गये या किसी-न किसी तरीके से हिन्दुस्तान में रह गये। यह सब कुछ होने पर भी हिन्दू और सिक्ख पश्चिमी पजाब से निर्वासित हो गये—उसी तरह पूर्वी पजाब और कुछ रियासतो से मुसलमान भी।

यह महात्माजी की ही अलौकिक शक्ति थी, जिसने हिन्दुस्तान में मुसलमानो को मारे जाने से अथवा निर्वासित किये जाने से बचा लिया। आपस का वैमनस्य इस दर्जे तक बढता गया था कि कही भी किसी कारण से अथवा बिना कारण के भी बलवा-फसाद हो सकता था। मुसलमानो को फिर भी इधर वही दशा होती जो हिन्दुओ और सिक्खो की उधर हुई।

दिल्ली शहर के कोने-कोने में फसाद फैलता जा रहा था। पुलिस और फौज मुस्तैदी से शान्तिरक्षा में लगा दी गई थी; किन्तु बलवाइयो पर अभी तक वह काबू नही कर पाई थी। पडित जवाहरलालजी अपनी जान को जोखिम में डालकर, जहाँ-कही से खबर मिलती वहाँ, चाहे दिन हो या रात, दौड जाते। उन्होने तो गवर्नमेंट की तरफ से पुलिस और फौज को हुक्म दे ही दिया था कि बलवे को जल्द-से-जल्द सख्ती से रोको, महात्माजी ने भी आते ही अपनी सारी शक्ति इसमें लगा दी थी। अत चन्द दिनो में ही स्थिति शान्त हो चली।

महात्माजी हिन्दू और मुसलमान को, उनकी धार्मिक विभिन्नता होते हुए भी, एक ही राष्ट्र मानते थे। वह मानते और कहते थे कि गवर्नमेंट का फर्ज है कि वह सभी लोगो को, चाहे किसी भी जाति के क्यो न हो, बचाने का अथक प्रयत्न करे, और सबका जान-माल सुरक्षित रखा जाय। उनकी इच्छा थी कि मौका अगर मिले और पाकिस्तानी सरकार मजूर करे तो वह पश्चिमी पाकिस्तान का भी दौरा करेंगे। पर इसका मौका ही नही आया। गवर्नमेंट ने जब देख लिया कि हिन्दू और सिक्ख पाकिस्तान में ठहर नहीं सकेंगे तब उसने पाकिस्तानी सरकार के साथ मिलकर इस बात का प्रबन्ध किया कि दोनो तरफ से सभी लोगो को चले जाने का मौका और सुविधा दी जाय और रास्ते में भी उनकी रक्षा की जाय। इस प्रकार पचास और साठ लाख के बीच में हिन्दू और सिक्ख पश्चिमी पाकिस्तान से भारत चले आये और उतने ही मुसलमान भारत से पाकिस्तान चले गये। सब अपनी-अपनी सम्पत्ति छोडकर ही आये-गये। रास्ते में भी बहुतेरो पर हमले हुए, लोग

मारे-लूटे गये। बहुतेरे तो लम्बी सफर की कठिनाइयो को बर्दाश्त न कर सकने के कारण रास्ते में ही चल बसे। बहुतेरे लोग गवर्नमेंट के प्रबन्ध मे रेलो द्वारा लाये और पहुँचाये गये। पर अधिकाश पैदल ही, अपनी बैलगाडी या ऊँट या घोडे इत्यादि पर, ला सकने योग्य बचा-खुचा सामान लिये-दिये, चले आये।

हिन्दुओ ने कई करोड रुपये लगाकर लहौर में बहुत बडी-बडी सस्थाएँ कायम की थी। उनकी इमारतें तथा इनके सामान जहाँ-के-तहाँ रह गये। सख्या में तो प्राय जितने हिन्दू और सिक्ख पश्चिम से पूरब आये, करीब उतने ही मुसलमान पूरब से पश्चिम गये। पर हिन्दू तथा सिक्ख बहुत धनी थे। उनके पास बडी-बडी इमारतें, जमीन के बडे-बडे चकले, बाग-बगीचे इत्यादि थे। मुसलमान उतने खुशहाल नही थे, इसलिए उनकी न तो उतनी बडी-बडी इमारतें थी और न उतनी जमीन ही। इसके अलावा, पश्चिमी पजाब मे बहुत-सी नहरो के जरिये पानी पटाने का बडा अच्छा प्रबध था, इस कारण से वहाँ की जमीन भी बहुत उपजाऊ थी। ऐसी बात पूरबी पजाब में नही थी, इसलिए धन वैभव तो हिन्दुओ ने ही बहुत खोया, जो बहुत ही खुशहाल थे वे दरिद्र बनकर किसी तरह जान बचा भारत में आ गये।

इन सब घटनाओ से महात्माजी बहुत दुखी थे। वह पहले बराबर कहा करते थे कि वह इस प्रयत्न में है कि १२५ वर्ष तक जीवित रहे। पर जो दुर्घटनाएँ उन्होंने देखी-सुनी उनका इतना गहरा असर उनके दिल पर पडा और उनसे इतनी चोट उनको लगी कि अब वह कहने लगे, ऐसी परिस्थिति को देखने के लिए मै जीवित रहना नही चाहता। उनको इस बात का बडा दुख था कि इस अमानुषिक खून-खराबी में हिन्दू-मुसलमान-सिक्ख सब-के-सब शरीक हो गये, कोई भी अपने को इस पाप से साफ नही रख सका! इतना होने पर भी वह बिल्कुल निराश नही थे। वह समझते थे कि यह तो पागलपन का एक झोका है, जो कुछ समय पाकर निकल जायगा और तब सब लोग फिर एक बार उसी तरह आपस में मिलजुल कर रहने लग जायँगे, जिस तरह पहले रहा करते थे। इस प्रकार के वातावरण को फिर से पैदा करना वह अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। इसलिए वह किसी ऐसी कार्य-वाही को पसद नही करते थे जिससे इस वातावरण के फैलने में कोई बाधा पडे। उनकी आशा थी कि अहिंसा से अगर काम लिया गया और बदला न लेने की भावना को प्रोत्साहन दिया गया, तो एक समय ऐसा आयेगा जब हिन्दू और सिक्ख तथा मुसलमान फिर अपने-अपने घरों में जाकर बसेंगे, अपनी बचीखुची जमीन और सम्पत्ति फिर से पा सकेंगे। उसी नीति के अनु-

सार वह भारत सरकार को काम करने की बराबर सम्मति देते रहे और सद्भावना को फिर से स्थापित करने में प्रयत्नशील रहे।

दिल्ली में बलवा-फसाद तो जल्दी ही रुक गया, पर वायुमण्डल अभी सुधरा नहीं था—वह सद्भावना, जो महात्माजी चाहते थे, अभी लौटी नहीं थी। जो मुसलमान यहां से चले गये थे उनके मकान खाली पड़े हुए थे। गवर्नमेंट उनको अभी खाली रख रही थी कि उनके मालिक वापस आकर फिर यहां बसेंगे। पर इनमें कठिनाई बहुत थी, क्योंकि लाखों-लाख हिन्दू और सिक्ख अपना घर-बार छोड़कर भारतवर्ष चले आये थे। वे बिना घर और बिना रोजगार के, सड़कों पर और गलियों में, ठोकरें खाते फिरते थे। वे मकान खाली रखना बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। बहुतेरी मस्जिदें ऐसी थीं जिन पर हिन्दुओं ने कब्जा कर लिया था। वातावरण फिर इतना दूषित होता जा रहा था कि पग-पग पर आशंका होती, शायद फिर कहीं फसाद न खड़ा हो जाय। महात्माजी ने इस क्षुब्ध वातावरण को दुरुस्त करने के लिए अनशन आरम्भ कर दिया। वह अनशन तब तक जारी रखा जबतक हिन्दुओं और सिक्खों ने मुसलमानों को यह आश्वासन देकर सन्तुष्ट नहीं कर दिया कि वे निश्चिन्त अपने घरों में आकर रहें तथा अपनी रक्षा का भार हम हिन्दू-सिक्खों पर छोड़ दें। मस्जिदों का खाली होना भी शुरू हो गया। आहिस्ता-आहिस्ता बहुतेरी मस्जिदें मुसलमानों को वापस कर दी गईं।

महात्माजी के अनशन का यह नतीजा हुआ कि वातावरण बिल्कुल बदल गया। जो दुर्भावना फैल रही थी वह बहुत हद तक दूर हो गई। मुसलमानों को इतमीनान हो गया। मैं दिल्ली में ही था, पर अस्वस्थ था। तो भी, अनशन के दिनों में जो एक शान्ति-कमिटी बनी उसका प्रधान मुझे लोगों ने बना दिया। उसी कमिटी की तरफ से महात्माजी को जब पूरा आश्वासन दिया गया तब उन्होंने अनशन तोड़ा। अब मुसलमान समझ गये कि महात्माजी से बढ़कर उनका दूसरा कोई रक्षक और हितचिन्तक नहीं है। उनमें से जो लोग पहले उनको अपना वैरी मानते थे वे अब उन्हें अपना मित्र समझने लगे। सब जगहों में उनकी अहिंसात्मक वृत्ति अप्रत्यक्ष रीति से—पर बहुत जोरों के साथ—काम कर रही थी। यदि वह जीवित रह जाते तो इसमें सन्देह नहीं कि उनको तथा राष्ट्र को ऐसा दिन भी देखने को मिलता जब सभी हिन्दू और सिक्ख अपने घरों पर वापस चले जाते तथा पाकिस्तान गये हुए सभी मुसलमान भारत वापस आते। पर ईश्वर को यह मंजूर नहीं था! सन् १९४८ ई० की ३० जनवरी को एक हिन्दू ने उनकी हत्या कर डाली!!!

छत्तीसवाँ अध्याय

ऊपर कहा जा चुका है कि हम लोग लार्ड वेवल के मन्त्रिमडल में शरीक हुए। यह १९४६ के २ सितम्बर को हुआ। मेरे जिम्मे खाद्य और कृषि के विभाग आये। उस समय देश में अन्न की बहुत कमी थी। इस बात का बहुत डर था कि किसी-न-किसी भाग में भारी दुष्काल आ जायगा। जिस तरह बगाल में लाखो-लाख आदमी अन्न-बिना भूखो मर चुके थे, उसी तरह फिर एक बार यहाँ की भी दुर्गति-दुर्व्यवस्था हो सकती है। सारे देश में जहाँ-जहाँ अन्न था, गवर्नमेंट की तरफ से लोगो से लिया जा रहा था। भारतवर्ष के प्राय सभी शहरो में, बहुतेरे गाँवो में, विशेष करके दक्षिण में, प्रत्येक आदमी के लिए नाप-तौल कर पाँच-छ छटाँक या इससे भी कम अन्न दिया जाता था। इसी प्रथा को 'राशनिंग' कहते है। मै इस चिन्ता में था कि कही राशन के लिए अन्न घट न जाय और लोगो को अन्न मिले ही नही। इसलिए बहुत जोरो से, चाहे देश का हो चाहे विदेश का, सभी जगहो में अन्न जुटाने का काम किया जा रहा था। पर जो अन्न इस तरह जुटाया जा सकता था वह प्रत्येक मनुष्य के लिए प्रति दिन पाँच छ. छटाँक से ज्यादा नहीं हो सकता था। जहाँ के लोग जो अन्न बराबर से खाते आ रहे थे, उनको वही अन्न नही दिया जा सकता था। पहले चावल की इतनी कमी थी कि दक्षिण के लोगों को भी, जो चावल ही बहुत अधिक खाया करते हैं, विदेश से आये हुए मकई और गेहूँ दिये जाने लगे। उन लोगों के घरो में इन अन्नो को खाने योग्य बनाने के चक्की, तावा इत्यादि-जैसे न तो साधन थे और न उनके पकाने का ढग ही उन्हे आता था। कुछ दिनो के बाद दिल्ली और पश्चिमी सयुक्तप्रान्त में भी लोगो को गेहूँ के बदले चावल अधिक दिये जाने लगे और वही उनको खाना पडा। उनकी यही स्थिति प्राय. १९४६ से ४७ के अन्त तक, जबतक मै मन्त्रिमडल में रहा बनी रही। कभी-कभी ऐसा समय भी आया कि किसी स्थान पर दो-चार दिनों से अधिक के लिए अन्न नही रह जाता था। इस तरह की खबरें देश के कोने-कोने से बराबर आया करती और आवश्यकता के अनुसार अन्न पहुँचाने का प्रयत्न भी बराबर होता ही रहता।

नवम्बर १९४६ में कांग्रेस का अधिवेशन मेरठ में हुआ, जिसके प्रधान आचार्य कृपालानी चुने गये। अब केन्द्र और प्रान्तों में जहां जहां कांग्रेस का बहुमत था, कांग्रेसी मन्त्रिमंडल बन गये थे। कांग्रेस के घोषणापत्र के अनुसार वे काम चला रहे थे। जैसा ऊपर कहा गया है, केन्द्र में मुस्लिम लीग के झगड़े के कारण कुछ विशेष हम कर नहीं पाते थे। बटवारे के बाद, जब हम कुछ करने योग्य हुए तब, बलवा-फसाद के कारण कुछ कर न सके। फिर उसके बाद तो लाखों-लाख निर्वासितों के प्रबन्ध का एक इतना बड़ा काम भारत-सरकार के हाथों में आया जिसे वह आज तक पूरा नहीं कर सकी है। पहला काम तो यह था कि लोगों की इतनी बड़ी संख्या, सुरक्षित और सुव्यवस्थित रीति से, किसी तरह पश्चिम से पूरब लाई जाय और फिर पूरब से पश्चिम भी भेजी जाय। इस काम को फौज ने बड़ी तनदेही और सुव्यवस्था के साथ पूरा किया। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सभी लोग सुरक्षित ही पहुँचे। बीच बीच में काफलों पर हमले हो जाते और बहुतेरे मारे जाते तथा जो कुछ थोड़ा-बहुत उनके पास होता वह लूट लिया जाता। रेल के मुसाफिरों को भी इसी प्रकार लूट-मार का शिकार बनना पड़ता। पहले जो लोग आये उनको छावनियों में रखने और टिकाने का प्रबन्ध किया गया। अब आहिस्ता-आहिस्ता उनको जहां-तहां बसाने का काम किया जा रहा है, जो अभी तक पूरा नहीं हुआ है। गवर्नमेंट इस काम में करोड़ों रुपये खर्च कर रही है। नये गांव और शहर बसाये जा रहे हैं। हजारों-हजार की तादाद में उनके लिए जहां-तहां नये मकान बनाये जा रहे हैं। जहां जो जमीन खाली पड़ी है वह उनमें बांटी जा रही है। पर उनकी संख्या इतना अधिक है और जमीन इतनी कम है कि गैर-आबाद जमीन या पाकिस्तान चले गये हुए मुसलमानों की छोड़ी हुई जमीन मिलाकर भी उस जमीन के मुकाबले बहुत ही कम पड़ती है जो हिन्दू और सिक्ख पाकिस्तान में छोड़ आये हैं। इसलिए प्रत्येक किसान-परिवार को उस जमीन के मुकाबले में जो उसके पास पहले थी, बहुत कम ही जमीन दी जा सकती है, वह भी नहरों और आबपाशी के दूसरे साधनों के अभाव में बहुत कमजोर जमीन।

किसानों के अलावा एक बहुत बड़ी संख्या आज के भारत में ऐसे लोगों की भी है जो दूसरे रोजगार किया करते थे—जैसे व्यापार, सरकारी तथा गैर-सरकारी नौकरी, कारखानों की मजूरी इत्यादि। वाणिज्य-व्यापार बहुत करके हिन्दुओं और सिक्खों के हाथ में हिन्दुस्तान के उस हिस्से में था जो पाकिस्तान में पड़ा है। हिन्दुओं और सिक्खों की दूकानें केवल हिन्दू और सिक्ख के लिए ही सामान नहीं बेचा करती थीं, बल्कि मुसलमान के लिए

भी। अब वे दूकानदार इधर चले आये। यहाँ पहले से ही काफी दूकानदार मौजूद है, क्योकि इधर भी बहुत करके वाणिज्य-व्यापार हिन्दुओ के ही हाथो में था। और, जो मुसलमान पाकिस्तान गये वे दूकानदार नही थे, खरीदार ही थे। इस तरह तिजारत-पेशा लोगो की एक बहुत बडी सख्या इधर आ गई है, जो पहले बहुत खुश-हाल थे, पर जिनको इधर कोई रोजगार नहीं मिलता। इस तरफ के बहुत ऐसे काम करनेवाले, जो बहुत करके देहाती जीवन के मुसलमान थे, उधर चले गये। नतीजा यह हुआ कि एक बहुत बडी सख्या ऐसे लोगो की आज भारत में आ गई है जिनको कोई धन्धा या रोजगार देना कठिन है। उसी तरह ऐसे लोगो की बडी सख्या उधर चली गई है जो यहाँ मजूरी के काम करते थे। इसके उलटा, पाकिस्तान को इस हलचल से लाभ-ही-लाभ रहा है। एक तो उसके हाथ बहुत अच्छी उपजाऊ जमीन आ गई। इधर से गये हुए मुसलमानो का ही नही, बल्कि वहाँ के रहनेवाले मुसलमानो को भी वह सारी जमीन बाँट दी गई। इस तरह निर्वासित लोगो को, और बहुतेरे दूसरो को भी, पहले के मुकाबले अधिक और काफी जमीन मिल गई। हिन्दुओ के बडे-बडे आलीशान महल उनके कब्जे में आ गये। दूकानदारी और तिजारत का नया रोजगार वहाँ के बाशिन्दो को, चाहे वे निर्वासित हो या दूसरे मिल गया। इसलिए पाकिस्तान की गवर्नमेंट के वास्ते निर्वासितो की समस्या बहुत हलकी और सीधी रही है। शायद उन्होने शरणार्थियो को बसाने का काम पूरा भी कर लिया है।

बटवारे के चन्द दिनो के अन्दर ही कश्मीर का बडा मसला भारत के सामने आ गया। अग्रेज-सरकार ने अपने जाने के वक्त सभी रजवाडो को सुलह की उन सभी शर्तो से मुक्त कर दिया जो दोनो के बीच में हुई थी। इसका नतीजा यह हुआ कि प्रत्येक रजवाडे को इस बात की स्वतत्रता मिल गई कि वह चाहे पाकिस्तान के साथ मिल जाय अथवा भारत के साथ। '१५ अगस्त' ४७ तक ही, कुछ को छोड, प्राय सभी रजवाडे जो भारत के दायरे में थे, भारत से मिल गये। जबतक सब बातें विधान-परिषद् द्वारा और आपसी बातचीत से तय न हो जायँ, तबतक के लिए उन्होने भारत-सरकार के साथ वही सम्बन्ध जारी रखने का अस्थायी सुलहनामा कर लिया जो उनका अग्रेजो के साथ था। केवल कश्मीर और हैदराबाद ने अस्थायी सुलहनामा नही किया, भारत में सम्मिलित नही हुए। कश्मीर में हिन्दू महाराजा, पर प्रजा का अधिकाश मुसलमान! हैदराबाद में मुसलमान निजाम और प्रजा अधिकाश हिन्दू! रजवाडो में यही दोनो राज्य सबसे बडे भी थे। कश्मीर—भारत और पाकिस्तान दोनो की सीमा से लगा हुआ प्रदेश

और हैदराबाद भारत के मध्य में। कश्मीर के मुसलमानो में बहुत ऐसे थे जो हिन्दू राजा को तो नही, पर भारत के साथ रहना चाहते थे। हैदराबाद के बहुतेरे मुसलमान उसको एक स्वतत्र राज्य बनाकर पाकिस्तान के साथ मेल-मुआफकत रखना चाहते थे। पाकिस्तान की आंखें भी उस तरफ लालच की निगाहें डाल रही थीं। पाकिस्तान शायद आशा करता था कि सारे भारत में इस्लामी सल्तनत कायम करने में हैदराबाद से उसे पूरी मदद मिलेगी। किन्तु वहां की हिन्दू प्रजा, जो सौ में अट्ठासी थी, भारत के साथ रहना चाहती थी। कुछ दूसरी छोटी-मोटी मुसलमानी रियासतें भी रहीं जिनमें कई ऐसी थीं जो मौका मिलने पर शायद पाकिस्तान के साथ रहना ही पसद करतीं। पर एकाध ऐसी भी थीं जिन्होंने खुले दिल से भारत के साथ मिलना पसद किया।

कश्मीर के महाराज और मुसलमान प्रजा की एक बडी सख्या इस दुविधा मे पडकर समय काट रही थी कि हिन्दुस्तान के साथ मिलकर न तो पाकिस्तान को नाखुश करें और न पाकिस्तान के साथ मिलकर भारत को। यह बात पाकिस्तान को बर्दाश्त नही थी। उसने सरहद के कबीला लोगो को कश्मीर पर चढाई कर देने के लिए प्रोत्साहित किया। केवल अपने देश से होकर उनको रास्ता ही नही दिया, बल्कि हथियार और योग्य फौजी मदद भी दी, पर गुप्त रीति से ही, ताकि वे कश्मीर पर धावा बोलकर कब्जा भी कर लें। स्थिति बहुत नाजुक हो गई। हमला करनेवालो ने बहुत ज्यादतियां भी की, जिनके कारण वहां की जनता बहुत दुखी हुई। अन्त में, जब कश्मीर की राजधानी श्रीनगर से थोडी ही दूर पर आक्रमणकारी रह गये थे तब महाराज और प्रजा के प्रतिनिधि शेख अब्दुल्ला—दोनो—ने एक साथ ही मिलकर हिन्दुस्तान के साथ कश्मीर को मिला देने का प्रस्ताव किया और मदद भी मांगी। भारत-सरकार ने कश्मीर के उस प्रस्ताव को मजूर कर मदद भेजी। इस तरह लडाई शुरू हो गई, जो अभी तक समाप्त नही हुई है। लडाई में भारतीय सेना ने आक्रमणकारियो को और पाकिस्तानी फौज को कश्मीर के बहुत बडे भूभाग से निकाल दिया है। अब वहां भारत की तरह प्रजातन्त्र का काम चल रहा है। पर कश्मीर के कुछ उस हिस्से पर जो बिल्कुल पच्छिमी पजाब से मिला हुआ है और उस हिस्से पर भी जो पच्छिम-उत्तर में पहाडी इलाका है, पाकिस्तानियो का कब्जा भी है। मामला अन्तर्राष्ट्रीय सघ के सामने पेश है। अभी तक कोई फैसला नही हुआ है। दोनो तरफ की फौजें अपनी-अपनी जगहो पर सब तरह से लैस बैठी हुई है।

हैदराबाद में मुसलमानो का एक दल था, जो अपने को 'रजाकार' कहा करते थे और जो यह मनसूबा रखते थे कि दिल्ली के लाल-किले पर निजाम

का आसफजाही झडा फहरायेंगे। रजाकारो ने वहाँ के हिन्दुओ के साथ बडी ज्यादतियाँ की। जो मुसलमान उनका विरोध करते थे और हिन्दुस्तान के साथ रहने में ही वहाँ की प्रजा का भला समझते थे उनके साथ भी बहुत बुरा बर्त्ताव किया गया। जब यह जुल्म बर्दाश्त के बाहर हो गया और इसका बुरा असर भारत के दूसरे हिस्सो पर भी पडने लगा, तब भारत-सरकार ने हैदराबाद में जाकर अपना कब्जा जमा लिया। रजाकार भाग खडे हुए। निजाम ने भारत-सरकार का स्वागत किया। अब और रजवाडो की तरह हैदराबाद भी भारत के साथ मिल गया है।

इन सब उलझनो और अन्न की कमी की कठिनाइयो तथा निर्वासितो के बसाने की समस्या में ही अबतक भारत-सरकार की शक्ति बहुत करके लगी रही। और-और दूसरे मामले तो उसके सामने थे ही। यह ईश्वर की दया है कि इन आफतो में रहकर भी भारत अपने को अभी तक बचाये रख सका है।

ऊपर कहा जा चुका है कि विधान-परिषद् बन चुकी थी। उसका पहला अधिवेशन १९४६ में ९ दिसम्बर को हुआ था। उसमें मै ही उसका सभापति चुना गया। खाद्य-विभाग के काम के साथ साथ मै यह काम भी करने लगा। जब बटवारा-कौंसिल बनी तो वह काम भी मेरे जिम्मे आया। मै किसी तरह इन सबको निबाहता गया। बापू का आशीर्वाद मुझे हमेशा मिलता गया। जहाँ तक अपने जिम्मे के काम का सम्बन्ध था, उससे मुझे सतोष रहा।

महात्माजी का विचार था कि अन्न पर नियत्रण गैर-जरूरी ह, उसे उठा ही देना चाहिए। उन्होने अपना यह मत कई बार प्रकट भी किया, पर प्राय एक बरस तक मै कुछ कर नही सका, क्योकि स्थिति इतनी नाजुक थी कि उस वक्त कोई परिवर्त्तन करना खतरे से खाली नही था। मुझे सब बातो के समझने और देखकर अपना मत स्थिर करने में भी समय लगा। इसलिए जब १९४७ के प्रारम्भ में महात्माजी ने नियत्रण उठाने के सम्बन्ध में जोर लगाया तब मैने भी निश्चय किया कि अब इसे हटा देना ही चाहिए। पर इसमें कठिनाई बहुत थी। एक कठिनाई तो यह थी कि मत्रिमडल के हमारे साथियो में बहुतेरे सहमत नही थे, दूसरी यह कि खाद्य-विभाग के बडे और छोटे कर्मचारी प्राय सब-के-सब इसके विरोधी थे। यहाँ तक कि अधिकाश प्रान्तीय सरकारें भी इसका विरोध कर रही थी, और जो विरोध नही करती थी वे भी केवल मौन रखती, खुलकर समर्थन नही करती। मैने पहले खाद्य तेलो पर से नियत्रण उठाया, क्योकि बहुत जगहो में तेल मिलता ही नही था और जो मिलता था वह भी बहुत महँगा। नियत्रण उठाने का फल यह रहा कि तेल मिलने लगा। अब भी वह यद्यपि

सरकारी नियत भाव से महँगा पड़ता तथापि जिस भाव में वह चोर-बाजार में बिका करता उससे बहुत सस्ता और सभी जगहों पर मिल जाता। इससे मेरा उत्साह बढ़ा। मैंने एक कमिटी मुकर्रर कर दी थी जो खाद्य समस्या पर विचार करके गवर्नमेंट को राय दे कि उसे क्या करना चाहिए। उस कमिटी के सामने दोनों ही बातें थीं—खाद्य-पदार्थों के वितरण की और उत्पत्ति की भी। इनमें वितरण का सम्बन्ध नियंत्रण के साथ था। उस कमिटी ने सिफारिश की कि नियंत्रण आहिस्ता-आहिस्ता करके हटाया जाय और गवर्नमेंट अपने पास अन्न रखने का प्रबन्ध करे, ताकि जहाँ भी अन्न की कमी हो वहाँ वह आसानी से जल्द-से-जल्द पहुँचाया जा सके। इस सिफारिश से मुझे बल मिला। अन्त में मंत्रिमंडल ने भी मेरी सिफारिश मंजूर कर ली। नियंत्रण हल्के-हल्के उठाने का निश्चय किया गया।

इसमें मुझे महात्माजी से मदद लेनी पड़ी। उन्होंने मेरे कहने से मंत्रिमंडल के लोगों के साथ बातें कीं, उनको अपना दृष्टिकोण बतलाने और समझाने का प्रयत्न किया। उसी तरह उन्होंने प्रान्तीय मंत्रियों के सम्मेलनों में आये हुए लोगों से भी बातें कीं और नियंत्रण उठाने पर जोर दिया। मैंने नियंत्रण उठाने का निश्चय खाद्य-मंत्री की हैसियत से किया। अब मुझे इस निश्चय को कार्यान्वित करना था। इतने में मुझे अचानक और अनायास मंत्रिमंडल से हट जाना पड़ा।

आचार्य कृपालानीजी राष्ट्रपति थे, पर वह गवर्नमेंट के कामों से नाखुश थे। चूँकि वह समझते थे कि कांग्रेस की ओर से मंत्रिमंडल पर वह उतना असर नहीं डाल सकते जितना पड़ना चाहिए, इसलिए उन्होंने अपने पद-त्याग की इच्छा कई बार प्रकट की। महात्माजी ने और लोगों ने भी उनको समझा-बुझाकर ऐसा करने से कुछ दिनों तक रोक रखा। पर जब वह ऐसी अवस्था में पहुँच गया कि वह किसी तरह रहना नहीं चाहते थे। अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की एक बैठक दिल्ली में हुई। यथारीति वर्किंग-कमिटी की बैठक भी हुई। वहाँ पर यह मामला पेश हुआ। एक प्रकार से निश्चय हुआ कि उनका इस्तीफा मंजूर कर लेने के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। तब यह प्रश्न उठा कि कांग्रेस का सभापति कौन होवे। महात्माजी का विचार था कि समाजवादी दल के नेता श्री जयप्रकाश नारायण या आचार्य नरेन्द्रदेवजी को यह पद दिया जाय। उन्होंने जब यह देखा कि वर्किंग-कमिटी में इस बात पर एकमत नहीं है और कुछ लोग इसके कट्टर विरोधी भी हैं, तो वह चुप हो गये। कोई बात तय नहीं हो सकी। वर्किंग-कमिटी उठ गई; क्योंकि असेम्बली की बैठक का समय हो आया था और

वहाँ मुझे प्रधान का स्थान ग्रहण करना था। वहाँ भी एक विचित्र प्रश्न उपस्थित था। वह यह था कि विधान-परिषद् के नियम के अनुसार उसका सभापति ही वहाँ प्रधान बनकर अधिवेशन में बैठ सकता था। बटवारे के बाद विधान-परिषद् के जिम्मे दो बडे काम आ गये—एक तो विधान बनाने का, जो पहले से हो ही रहा था और दूसरा यह कि अब वही व्यवस्थापिका-सभा के काम के लिए भी जिम्मेदार बना दी गई। व्यवस्थापिका सभा में कोई भी मत्रिमडल का आदमी 'स्पीकर' का स्थान नही ले सकता था, क्योकि उसे मत्रिमडल और दूसरे सदस्यो के वाद-विवाद में निष्पक्ष होकर काम करना पडता है। इसलिए आवश्यक हो गया कि मै या तो मत्रि-मडल से हट जाऊँ या विधान-परिषद् के सभापतित्व से। लोग चाहते थे कि मैं विधान-परिषद् का सभापति बना रहूँ और मत्रि मडल में भी रहूँ। इसलिए नियम बदलना आवश्यक हो गया। मैने अपने अधिकार से नियमो को बदल दिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि मै यद्यपि विधान परिषद् का सभापति बना रहूँ, तो भी वह व्यवस्थापिका-सभा की हैसियत से जब कभी बैठे तब मै उस जगह पर प्रधान का आसन ग्रहण न करूँ—उसके लिए 'स्पीकर' चुन लिये जायँ।

उस दिन स्पीकर के चुनने का काम विधान-परिषद् के सामने था। श्री मावलकर स्पीकर चुने गये। उनको मैने अपने स्थान पर बिठा दिया। दो-तीन घटो के बाद ही अखिलभारतीय काग्रेस-कमिटी की बैठक सिपहर में दिल्ली में ही होने जा रही थी, जहाँ आचार्य कृपालानी का इस्तीफा मजूर करके उनकी जगह पर राष्ट्रपति चुन लेना था। वर्किङ्ग-कमिटी में यह बात तय नही हो पाई थी कि कौन चुना जाये—यद्यपि वहाँ पर किसी ने एक बार मेरा नाम भी लिया था, किन्तु उस पर न तो मैने ध्यान दिया था और न दूसरो ने ही। मै विधान-परिषद् में बैठा हुआ था कि मुझे सूचना मिली कि पडित जवाहरलालजी तथा सरदार वल्लभ भाई मुझे बुला रहे है। मै वहाँ गया। बातचीत हुई। उनलोगो की राय हुई कि मुझे ही काग्रेस का सभापतित्व लेना चाहिए। मै बडे असमजस मे पड गया। एक तो खाद्य और कृषि विभागो का काम था ही, जिसमें नियत्रण हटाने की नीति को कार्यान्वित करना था, दूसरा काम अन्न की उपज बढाने और गोवश की वृद्धि तथा उन्नति करने का भी था, जिसमें दूध और अच्छे बैलो की कमी के कारण मेरी विशेष दिलचस्पी थी। यह सब मेरे ही जिम्मे था। मै दिन रात इन समस्याओ के सुलझाने में लगा हुआ था। इधर विधान बनाने का काम भी कम महत्त्व नही रखता था। यद्यपि अब व्यवस्थापिका सभा के सभापतित्व से

और बटवारा कमिटी के काम के समाप्त हो जाने की वजह से मुझे फुर्सत मिल गई थी, फिर भी विधान का काम काफी जटिल तथा बड़ा था, जिसमें काफी समय और परिश्रम लगाना था। मेरा स्वास्थ्य भी कमजोर था। मैं पहले-जितना परिश्रम भी बर्दाश्त नहीं कर सकता था। इतने पर भी कांग्रेस का बोझ भी जब मुझे ही सँभालना पड़े तो यह सब असम्भव-सा मालूम होने लगा। मैंने कहा कि मैं यदि कांग्रेस का काम उठाऊँ तो मुझे खाद्य-कृषि-विभाग से तो अवश्य मुक्ति मिलनी चाहिए और हो सकता है कि शायद मुझे विधान परिषद् का भी सभापतित्व छोड़ना पड़े, क्योंकि कांग्रेस का काम भी काफी मुश्किल था और मतभेदों के कारण अधिक जटिल भी होता जा रहा था। ऐसा विचार हुआ कि मुझे कृपालानीजी का स्थान तो लेना ही पड़ेगा। मैं इनकार भी नहीं कर सकता था, क्योंकि इसका अर्थ यह निकलता था कि मैं मंत्रिपद को छोड़ना नहीं चाहता। मुझे बहुत सोचने का समय भी नहीं था।

वहाँ से महात्माजी के पास गया। सब बातें मैंने वहाँ सुनाईं। वह उनका मौन-दिवस था। इसलिए वह जो कुछ कहना चाहते थे, कागज के पुर्जों पर लिखकर ही कहते थे। उन्होंने लिखकर बताया कि उनको यह प्रस्ताव पसन्द नहीं है। जब मैंने यह कहा कि कांग्रेस का सभापतित्व नामंजूर करके मैं मंत्री बना रहना कैसे पसंद कर सकता था और यदि पसंद भी करता तो इसे कहता किस तरह, तब उन्होंने मेरे इस असमंजस को समझ लिया और अपनी राय नहीं बदली। चूँकि अखिलभारतीय कमिटी के अधिवेशन का समय हो गया था, इसलिए महात्माजी को औरों से कुछ कहने का समय भी न मिल सका। मैं सभापति चुन लिया गया। पर उसे मंजूर करते हुए मैंने वहीं पर अखिलभारतीय कांग्रेस-कमिटी के सामने यह घोषणा भी कर दी कि मैं मंत्रि-पद से अलग हो जाऊँगा और वहाँ से मुक्ति पाने पर ही कांग्रेस का काम सँभालूँगा। इस तरह, जबतक गवर्नमेंट कोई दूसरा प्रबंध न कर ले, मुझे प्रायः डेढ़ महीने तक मंत्री बना रहना पड़ा। मुझे १९४८ में १४ जनवरी को वहाँ से मुक्ति मिली। तब से मैं बाकायदा कांग्रेस का काम सँभालने लगा। इसके दो-तीन ही दिनों के अन्दर महात्माजी का अनशन आरम्भ हुआ और पन्द्रहवें-सोलहवें दिन उनकी हत्या हुई।

इस बीच में, मेरी अस्वस्थता के कारण, महात्माजी के साथ मेरा जितना सम्पर्क रहना चाहिए था, नहीं रहा। पर तो भी प्रायः प्रतिदिन मैं उनके पास जाता था, क्योंकि तीन विशेष और गुरुतर काम वे लिये चल रहे थे। एक काम तो हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना बढ़ाने का था, जिसका जिक्र पहले आ चुका है और जिसके लिए उन्होंने अनशन किया था। दूसरा काम

था काग्रेस की नियमावली के सशोधन का, जिसकी बात चल रही थी और जिसके लिए एक कमिटी भी बनी थी। कमिटी के मेम्बर विचार-विमर्श के लिए महात्माजी के पास जाया करते थे। मैं भी उसमें शामिल हुआ करता था। इसी विचार-विमर्श का नतीजा था कि उन्होने अपनी हत्या के कुछ ही घटे पहले अपने विचारो को लेखबद्ध कर दिया था। उनका ख्याल था कि काग्रेस अब राजनीति के काम से, जिसमें वह प्रत्यक्ष भाग लेती रही थी और अपने मन्त्रिमडल द्वारा काम करा रही थी, अलग होकर लोक-सेवा का काम करे। लोक-सेवा द्वारा ही वह गवर्नमेंट पर जो कुछ असर डाल सकता है, डाले। पर यह काग्रेस के प्रमुख लोगो को पसद नही था। इसलिए, नियमावली में जो सशोधन हुआ उसका रूप ऐसा नही हुआ कि काग्रेस एक लोक-सेवक-सघ वन जाय। पर उनकी मृत्यु के कारण इस विषय पर और ज्यादा जोर देनेवाला भी अब कोई नही रह गया। तीसरा काम वह था जिसमें उनकी बहुत दिलचस्पी थी। वह थ` हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के अलावा रचनात्मक कार्य-क्रम को प्रोत्साहन देना। इस बात की चर्चा बहुत दिनो से चल रही थी। निश्चय हुआ था कि रचनात्मक कार्य करनेवालो का एक सम्मेलन सेवाग्राम में किया जाय। उसके लिए फरवरी १९४८ के पहले सप्ताह में तिथि भी निश्चित की गई थी। महात्माजी का विचार था कि उसमें वह शरीक होवें इसलिए वह वर्धा जाना भी चाहते थे। मैं भी सम्मेलन में शरीक होना चाहता था। साथ ही, दिल्ली की कडी सर्दी से बचने के लिए भी मैं वर्धा जाना ही चाहता था, जिसमें 'एक पथ दो काज' का अवसर मिले, यानी स्वास्थ्य भी सुधरे और रचनात्मक कार्यक्रम के कार्यकर्त्ताओं के सम्मेलन में शरीक भी हो आऊँ।

जब हिन्दू-मुस्लिम-समस्या कुछ उलझती हुई नजर आई तब उन्होने उपवास भी किया था। उपवास तोडने के बाद भी वह चाहते थे कि उन शर्तो को पूरा करा दें, जिनको उपवास तुडवाने के समय सब लोगो से मजूर कराया था। उधर रचनात्मक-सम्मेलन के प्रबन्धकर्त्ताओ का बहुत जोर था कि महात्माजी सेवाग्राम जरूर आवें। महात्माजी ने अपनी सहमति के साथ यह अनुमति मुझे दे दी कि मैं वर्धा जाऊँ, पर अपने सम्बन्ध में उन्होंने यह भी कहा कि वह तभी दिल्ली छोड सकेंगे जब मुसलमान नेता उन्हे जाने की इजाजत दे देंगे। मेरी बात उन नेताओ से हुई। उन्होंने इजाजत दे दी। मैं ३० जनवरी (१९४८) को बहुत सवेरे, हवाई जहाज से नागपुर होते हुए वर्धा के लिए रवाना होने के पहले ही, महात्माजी से मिला। मुसलमान नेताओ के इजाजत दे देने की बात उनसे कह दी।

उन्होने मुझसे वादा करते हुए कहा कि वह दो-तीन दिनो में रचनात्मक-कार्यकर्त्ताओ के सम्मेलन में भाग लेने पहुँच जायँगे, तवतक में आगे चलकर अपना स्वास्थ्य दुरुस्त कर लूं और वहाँ का प्रबन्ध भी देखूं। मैं इन आशा के साथ दिल्ली से रवाना हुआ कि वहाँ दो-तीन दिनो के वाद पूज्य वापू के दर्शन होगे ही—रचनात्मक कार्यक्रम को भी, जो काग्रेस का मूल कार्यक्रम तथा आधार है, स्फूर्ति मिलेगी। और मैं उनकी सहायता से इस काम को आगे वढा सकूंगा।

मैं उसी दिन ढाई वजे के करीव वर्धा पहुँचा। रास्ते की सर्दी और थकावट से वहाँ पहुँचते ही कुछ हलका-सा ज्वर हो आया। पाँच बजे के लगभग डाक्टर महोदय देखने आये। वह मेरा हालचाल सुन ही रहे थे कि एक लडका दौडा हुआ आया और वोला कि महात्माजी की मृत्यु हो गई! पहले तो हमको उसकी वात पर विश्वास ही नही हुआ; क्योंकि महात्माजी को मैं नौ-दस ही घण्टे पहले स्वस्थ देख आया था। पर उनको रक्त के दवाव की बीमारी पहले वहुत थी। यद्यपि उन्होने सयम करके उसे दवा दिया था, तो भी मुझे यह डर हुआ कि शायद उपस्थित चिन्ताओ के कारण अचानक उसकी वृद्धि हो गई होगी। मैंने उस लडके से पूछा कि यह खवर उसे कैसे मिली। तव उसने कहा, यह रेडियो में आई है। पर वह समय रेडियो में खबर आने का नही था। इससे और भी सदेह हुआ। फिर हमने कहा, रेडियो ले आओ, जिसमें छः वजे खवर सुन सकूं। दौडकर लोग रेडियो ले आये। पर छ वजे तक इन्तजार नही करना पडा। पहले ही मालूम हो गया कि मृत्यु स्वाभाविक नहीं हुई है, किसी ने गोली मार दी है! फिर रात को पडित जवाहरलाल और सरदार वल्लभ भाई के रेडियो द्वारा भाषणो से सव वातें स्पष्ट मालूम हो गई। अव मैं क्या करूँ? वहाँ रहूँ या दिल्ली जाऊँ? दिल्ली से टेलीफोन द्वारा सम्पर्क मुश्किल था, पर नागपुर के साथ हो सकता था। वहाँ से पता लगा कि उसी रात श्रीरामदास गाधी को ले जाने के लिए कोई खास हवाई जहाज वम्वई से नागपुर आयेगा, मैं भी अगर चाहूँ तो उससे दिल्ली जा सकता हूँ। यह भी सूचना मिली कि मेरा दिल्ली पहुँच जाना अच्छा होगा। मैं रात-भर सो नही सका! पर सवेरे चार वजे वर्धा से रवाना होकर छ वजे नागपुर पहुँच गया। वहाँ से श्रीरामदास गाधी तथा दूसरे मित्रो के साथ दस वजे दिल्ली पहुँचा। वापू के शरीर का अन्तिम दर्शन, जुलूस निकलने के पहले, कर सका! राजघाट के अन्तिम सस्कार में भी शरीक हो सका।

रचनात्मक कार्यकर्त्ता-सम्मेलन कुछ दिनो के लिए स्थगित कर देना

पर महात्माजी के मुंह में अन्तिम शब्द 'राम' का ही आया। इससे बढकर उनकी तपस्या का और क्या सुन्दर फल हो सकता था? गोली भी मारी गई एक ऐसे कारण से, जो उनके जीवन का एक बडा ध्येय और व्रत था। उन्होंने सारी जिन्दगी हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए प्रयत्न किया था। जब समय आया तो मुसलमानो की रक्षा के लिए उन्होंने अपनी जान की परवा न करके अपनी सारी शक्ति उस अहिंसा की प्रतिष्ठा में लगा दी, जो उनके जीवन का लक्ष्य था, बस वह आनन्दपूर्वक गोली के शिकार बन गये!

उनकी मृत्यु का समाचार पाकर सारा देश स्तब्ध और विह्वल हो गया। जो मुसलमान उनको अपना वैरी मानते थे, वे भी अब समझ गये कि उनसे बढ़कर उनका दूसरा कोई हितू नही था। शरीर से वह चले गये, पर अमर आत्मा अपना काम कर रही है। अब समय आ गया था जब सारा ससार उनकी वाणी को समझता और उसके सत्य-अहिंसा के सिद्धान्त को ग्रहण करने के लिए उसे आमन्त्रित किया जा सकता। पर शायद भगवान् ने समझा कि यह निमत्रण आत्मा ही आत्मा को दे। ऐसा ही हो भी रहा है। आज यद्यपि ससार के सभी देश—यहाँ तक कि महात्मा गांधी का भारत भी, उनके अनुयायियो के शासन में भी—हथियारो का सहारा ले रहे है, युद्ध की तैयारी में व्यस्त है, तो भी हृदयो का गहरा मथन सभी जगह हो रहा है। सब लोगो का ध्यान हथियारो की नि सारता और अहिंसा की सार्थकता की ओर आ रहा है। आत्मा आत्मा को पुकार रही है। महात्मा गाधी मरकर भी सारे ससार को जिलाने के शुभ कार्य में सलग्न है।

भारतवासियो का एक बडा कर्तव्य है। वह यह है कि महात्माजी के अधूरे काम को वे पूरा करें। सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए समाज का गठन ही ऐसा होना चाहिए जिसमें हिंसक प्रवृत्तियो को कम-से-कम पनपने का स्थान और अहिंसक वृत्तियों को प्रोत्साहन मिले। ऐसा समाज तभी बन सकता है जब उसका प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को उन सिद्धान्तों पर ढालना अपना ध्येय मान ले और इस प्रयत्न में लग जाय। इसीलिए महात्माजी ने ग्यारह व्रतो का प्रतिपादन किया था, जिन्हे प्रार्थना के समय वह बराबर दोहराया करते थे। वे व्रत है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असग्रह, शरीर-श्रम, अस्वाद, आत्म-निर्भरता, सर्वधर्म-समानता, स्वदेशी-स्पर्श-भावना। ये बहुत करके वे ही धर्म और नियम है जो हमारे शास्त्रो में बताये गये हैं। इनमें काल और स्थिति पर ध्यान रखकर कुछ बातें जोड दी गई है। इन व्रतो की व्याख्या महात्माजी ने स्वय 'मगल प्रभात' नामक पुस्तिका में की है। इनकी व्याख्या शाब्दिक और तार्किक नही, अनुभूति जन्य है,

उनके सारे जीवन के सग्राम का निचोड है, मानवमात्र के लिए मार्ग-दर्शन है। यदि व्यक्ति इन व्रतो के माननेवाले हों तो उनका समूह भी, जिसे समाज कहते है, इन्ही सिद्धान्तो पर अवलम्बित रहेगा।

मनुष्य को विना इन सिद्धान्तों के कभी सच्चा सुख नही मिल सकता। जिस हद तक हम अपने को और समाज को इनके अनुकूल बना सकते है, उसी हद तक हम सुखी हो सकते हैं, समाज सुखी हो सकता है। पर आज वैज्ञानिक साधनों के चमत्कारो ने हमें चकाचौंध में डाल दिया है। हम ऐसा मानने लगे है कि मनुष्य जैसे सर्वशक्तिमान है—उसे प्रकृति से केवल मुकावला ही नही करना है, वल्कि प्रकृति पर विजय भी पाना है और वह पा सकता है। हम भूल जाते है कि जिसे हम प्रकृति पर विजय समझते है वह प्रकृति के नियमों को जान-मान कर उनके अनुसार चलना मात्र है, अथवा प्रकृति के अनुसार अपने को वनाना मात्र—उस पर विजय नही।

हमें दुख इस वात का है कि जिन सिद्धातो के आधार पर गाधीजी ने अपना सारा जीवन ढाला और भारतवर्ष को भी ढालने का प्रयत्न किया तथा सारे ससार को ढालने की अभिलाषा और कामना करते रहे, उन सिद्धातो को या तो हम समझ नहीं पाये हैं या समझकर उनको अपनाने की शक्ति ही नहीं रखते है या जानवूझकर उन्हे छोड़ रहे है। आज के हम भारतवासी गाधीजी के सिद्धातो पर, जो हमारे देश के ही अत्यत प्राचीन सिद्धात हैं और सार्वभौम सिद्धात है, नही चल रहे हैं। हम भी औरो की नकल करने में लग गये हैं। सयम और नियत्रण को, जो इन सिद्धातो के मूल में हैं, हम छोडते जा रहे है और मृगतृष्णा में पकड़कर नि सार वस्तुओ की ओर भागते जा रहे हैं! पर मेरा विश्वास है कि परिस्थिति मजबूर करके हमको फिर उस रास्ते पर लायेगी।

भारत स्वतत्र हो गया। वह अपने को जैसा चाहे बना सकता है, विगाड भी सकता है। हमारी आँखो के सामने दूसरे देश है—विशेष करके योरप और अमेरिका। हम मानते है कि वहाँ के लोग वहुत सुखी हैं; क्योकि उनका आमदनी हमारे देश के लोगो की आमदनी से वहुत अधिक है। उनके पास सुखमय जीवन के वाह्य साधन वहुत है ऐसे साधनो के जुटाने की शक्ति वे प्रतिदिन वढाते जा रहे हैं। हम उन चीजो को देखकर इस मोह में पड जाते हैं कि हम भी अपने देश को किस तरह इस योग्य बना दें कि यह भी उसके मुकावले में आ जाय। यही हमारी कोशिश है। यह सच है कि 'भूखे भगति न होय भुआलू'। महात्माजी कहा करते थे कि जिसके पास खाने को रोटी भी नही है उसे वडे-बड़े सिद्धात नही वताये जा सकते है; भूखे के लिए

ईश्वर रोटी के रूप में ही आ सकता है। अत शारीरिक जीवन के लिए कुछ साधन आवश्यक है। पर उसकी एक मर्यादा है। जब हम उस मर्यादा को छोड देते है और आवश्यकता से अधिक साधनो की खोज में लग जाते है, तभी हम उद्देश्य को छोड साधन के गुलाम बन जाते है। इसलिए हमारे समाज का गठन ऐसा होना चाहिए जिसमे भोग तो रहे, पर हम उस भोग के गुलाम न बनें। भोग करते हुए भी हम भोग का त्याग ही करते रहे—जैसा ईशोपनिषद् के पहले ही मन्त्र में कहा गया है कि त्याग में ही भोग समझें अथवा त्याग की भावना को लेकर ही भोग करें।

आज ससार का समाज-गठन इस भावना से दूर हटकर भोग को ही श्रेय मानकर बना है। हम भी उसी ओर खिचते जा रहे है। गाधीजी ने अपने व्रतो द्वारा इस सच्ची भावना को जाग्रत करने का प्रयत्न किया था। पर हम अब इस चिन्ता में दिन-रात लगे है कि और देशो के लोगो जैसा हमें भी सुखी जीवन के बाह्य साधनो पर अधिकार मिलना चाहिए। चाहे हम मजदूरी करते हुए अपनी व्यक्तिगत मजदूरी बढाने का प्रयत्न करते हो चाहे भारत को अन्य देशो की बराबरी में लाने के प्रयत्न में हो, दोनो में सिद्धातत एक ही भावना काम कर रही है, और वह है बाह्य साधनो पर भरोसा—उनके द्वारा ही सुख-प्राप्ति की आशा और उनके अभाव से ही दुख का अनुभव यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने सुख-साधन के सग्रह में लगा हुआ है। ऐसा करने में वह इस बात की परवा नही रखता कि उसके प्रयत्न का फल दूसरो पर क्या होता है। एक व्यक्ति अथवा कोई समाज, कोई देश अथवा कोई राष्ट्र, अपने सुख के लिए दूसरो के सुख-दुख की परवा न करके, चाहे जिस तरह से हो, अपना साधन जुटाता ही है—वह चाहे घूसखोरी से हो, चोरबाजारी से हो, या दूसरो को सताकर या दूसरो का शोषण करके हो, चाहे सीधे लट और चोरी से हो। कही जबरदस्त आदमी कमजोर को दबा रहा है, तो कही जबरदस्त देश कमजोर देश पर अधिकार जमाने की ताक में है। हमें अपना रुख बदलना होगा और सुख के लिए बाह्य साधनो पर निर्भर न रहकर सुख को अपने अन्दर से ही ढूंढ निकालना होगा। इसका अर्थ—बाह्य पदार्थों का तिरस्कार नही, उन पर अधिकार, और वह अधिकार एक बाह्य पदार्थ पर दूसरे बाह्य पदार्थ के द्वारा नही, प्रत्युत अपने सयम और नियम द्वारा।

हम धार्मिक ग्रंथो में और प्राचीन पुस्तको में ऋषि, मुनि, फरिश्ता, देवता और अवतारो के गुणगान करते है। उनसे अपने जीवन के लिए बहुत-कुछ पाते और सीखते है। जो कोई उनके बताये सयमों और क्रियाओ को

जितना अधिक अपने जीवन में उतार सकता है, उसका जीवन उतना ही उन्नत और उज्ज्वल होता है। उस तरह की विभूतियाँ ससार में विरल देखी जाती हैं। इसलिए उनको उन लिखी हुई और सुनी हुई बातो पर ही भरोसा करके अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करना पडता है। पर यदि किसी ऐसी विभूति से हमारा सम्पर्क हो जाय तो इससे बढकर दूसरा सौभाग्य मनुष्य के लिए नही हो सकता है। महात्मा गाधी ऐसी ही विभूतियो में से थे, जिनके दर्शन और सदेह सम्पर्क का सौभाग्य भारतवर्ष के करोडो आदमियों को प्राप्त हुआ था। पिछले तीस-बत्तीस वर्षों में उन्होने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और कोहाट से लेकर कामक्षा तक कई बार भ्रमण किया; असख्य लोगो को अपने दर्शनो का लाभ पहुँचाया। उनकी यात्राएँ उद्देश्य-पूर्ति के लिए ही हुआ करती थी, केवल मन-बहलाव या देश देखने के लिए नही। वह उद्देश्य था इस पराजित पराधीन देश को जगाने का, यहाँ के मृतक शरीरो में प्राण फूंकने का, हताश हृदयो में नया उत्साह और नये हौसले जगाने का, लोगो के चरित्र को पुष्ट और दृढ बनाने का। उन्होने देखा, यह काम तभी हो सकता है जब देशवासियों की आँखें खुल जायेंगी, वे जाग्रत होकर निर्भीक हो जायेंगे, अपने को पहचान लेंगे। अत उन्होने उनको जगाया, निर्भीक बनाया, अपनी शक्ति को पहचानना सिखाया।

वह दक्षिण अफ्रिका से लौटकर हिन्दुस्तान आये। वहाँ उन्होने प्रवासी भारतवासियो के दुखो और अपमानो को दूर करने के लिए सत्याग्रह के अपने अमोघ शस्त्र का आविष्कार किया था। इस देश की दुर्दशा, पराधीनता और अकर्मण्यता को दूर करने के लिए उन्होने उसी शस्त्र का प्रयोग बहुत बडे पैमाने पर लोगो को सिखाया। वह सत्याग्रह क्या है ? सत्याग्रह का अर्थ है—सत्य के प्रति आग्रह रखना—अर्थात् सत्य का मन से, वचन से और कर्म से पालन करना। यदि कोई मनुष्य स्वय उसका पालन करने के प्रयत्न में दूसरे को दबाकर, डराकर या बलपूर्वक उसके सत्य पालने में बाधक होता है, तो क्या वह सत्य का पालन कहा जा सकता है ? कदापि नही। सत्य के पालन का अर्थ सत्य-आचरण तभी हो सकता है जब एक मनुष्य केवल अपने ही जीवन में सत्य को न पालकर दूसरे को भी उसके पालन में सहायता दे—अर्थात् उसके सत्य-पालन में बाधक न हो। यह तभी हो सकता है जब मनुष्य सत्य-आचरण का स्वय पालन करे और दूसरे भी इसका पालन करें। इसलिए सत्य के पालन में दूसरे पर किसी प्रकार का दबाव नही डाला जा सकता है। यदि हमको किसी बात से कष्ट होता है तो हमको मानना ही पड़ेगा कि दूसरो के साथ भी यदि वही बर्ताव किया जाय तो वे भी उसी

कष्ट का अनुभव करेंगे। इसलिए कोई ऐसा काम, जिससे हमको मानसिक या शारीरिक कष्ट पहुँचता है, हम दूसरों के लिए भी न करें। यह मानना ही पड़ेगा। अहिंसा का मूलतत्त्व यही है। हम कोई ऐसा काम न करें जिससे दूसरो को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचे। सत्य का पालन इस तरह बिना अहिंसा के असम्भव है। इसलिए महात्माजी ने सत्य और अहिंसा दोनो को अपने जीवन का सिद्धान्त बनाया था—केवल मुंह से ही नही, अपनी सारी जिन्दगी के हरएक काम से इसका पाठ भारतवासियो को और मनुष्य-मात्र को सिखाया। यदि सत्य-आचरण अहिंसा के बिना असम्भव है तो दोनो का सम्बन्ध अटूट हो जाता है। इसलिए गाधीजी ने तो दोनो को एक बताया और अहिंसा को सत्य में निहित पाया। ईश्वर सत्य है, इसको तो सभी मानते और कहते आये है। पर गाधीजी ने ईश्वर को जानने और पहचानने का केवल एक ही रास्ता बताया—सत्य का रास्ता। वह हमेशा कहा करते थे कि साधन और साध्य में अन्तर नही होता है। इसलिए उन्होंने केवल ईश्वर को सत्य ही नही बताया, बल्कि सत्य को ही ईश्वर कह दिया।

महापुरुष बड़े-बड़े सिद्धान्तो को बहुत सहज बनाकर जन-साधारण के लिए सुलभ बना देते है। महात्माजी ने इस एक चीज को लेकर हमारे सारे जीवन के स्रोत को बदल देने का प्रयत्न किया। सत्य और अहिंसा के पालन के लिए मनुष्य को सब प्रकार की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। यदि वह किसा प्रकार के दबाव और बन्धन में है तो वह इनका पालन नही कर सकता। वे बन्धन कई प्रकार के हो सकते है। कुछ तो ऐसे है जिनको मनुष्य खुद पैदा करता है। और, यदि वह चाहे तो अपने प्रयत्न द्वारा उनसे छुटकारा पा सकता है। कुछ लोग ऐसे होते है जो स्वय इनका पालन न करके दूसरो को भी इनकी अवज्ञा के लिए बाध्य करते है। अथवा, परिस्थिति ही कही-कही ऐसी हो जाती है—चाहे वह मनुष्य के करने से हो अथवा किसी दूसरे प्रकार से—कि मनुष्य को स्वतन्त्र नही रहने देती। इन सब बन्धनो से छुटकारा पाना मनुष्य के लिए आवश्यक है। जहाँ तक वह इनसे छुटकारा पाता है वहाँ तक वह सत्य-धर्म का पालन कर सकता है। जो मनुष्य अपनी जरूरतो को बेहद बढाता जाता है वह अपने ऊपर बन्धनो की कड़ियाँ और मजबूत कसता जाता है। इसलिए, सच्ची स्वतन्त्रता के लिए अपनी जरूरतो को कम करना चाहिए।

जितना झगड़ा ससार मे व्यक्तियो मे अथवा जनसमूह के बीच आज तक हुआ है और होता है वह इसीलिए होता है कि एक मनुष्य की जरूरतें दूसरे

नही की जा सकती । इसलिए एक को दूसरे के साथ बलप्रयोग करना पडता है जिससे वह उस चीज को पा सके, चाहे दूसरा उससे महरूम क्यो न हो जाय । इस प्रकार सत्य के पालन के लिए अपरिग्रह आवश्यक हो जाता है । यदि मनुष्य समझ ले कि हमारी जरूरतें हमारे लिए उतनी ही आवश्यक है जितनी दूसरो की दूसरो के लिए, तो वह अपने को भी स्वतन्त्र बना सकता है और दूसरो को भी स्वतन्त्र छोड सकता है । इस तरह जितने हमारे मौलिक धर्म समझे जाते है, सबका समावेश—विचार करके देखा जाय तो—इस सत्य के पालन में ही हो जाता है । क्या एक मनुष्य दूसरे की स्वतन्त्रता का अपहरण करके स्वय स्वतन्त्र रह सकता है ? क्या वह जिसको स्वय धर्म समझता है उसको दूसरो पर जबरदस्ती लादकर स्वय धार्मिक रह सकता है ? क्या वह असत्य का जीवन बिताते हुए दूसरों में सत्याचरण ला सकता है ? अथवा, यदि सचमुच वह स्वय सत्याचरण करता है तो क्या वह दूसरो को असत्य के आचरण पर कभी मजबूर कर सकता है ? नही । क्या वह बिना निर्भीकता के सत्याचरण का पालन कर सकता है ? नही । गाधीजी ने हमें इन्ही बातों को, जिन्हे सभी धर्मों ने हमको सिखाया है, फिर से क्रियात्मक रूप में बताया है ।

उन्होने हमें व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता दिलाने का प्रयत्न किया । हमको सिखाया कि व्यक्तिगत जीवन मे और सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में कोई अन्तर नही है । इसलिए जो कुछ व्यक्ति के लिए अहितकर है अथवा निषिद्ध है, वह समाज और राष्ट्र के लिए भी। यदि हम व्यक्तिगत जीवन में और व्यक्तिगत लाभ के लिए असत्य का व्यवहार बुरा मानते है, तो समाज और राष्ट्र का भी असत्य द्वारा भला नही हो सकता । इसलिए, जैसे हमारे व्यक्तिगत जीवन में 'एक कहना, दूसरा करना' बुरा माना जाता है वैसे ही वह राष्ट्र के लिए भी बुरा है । कूटनीति राष्ट्रीय जीवन में उतना ही हानिकारक साबित होगी जितना व्यक्तिगत जीवन में होती है । इसीलिए उन्होंने कहा—सत्य और अहिंसा को छोडकर यदि हमको स्वराज्य मिले भी तो वह हमारे लिए बेकार होगा ।

इसलिए, स्वराज्य प्राप्ति में भी सत्य और अहिंसा को ही आधार मानकर प्रयत्न करना लाभदायक है । यदि हमारा साधन ठीक नही है तो हमारा साध्य भी ठीक नही उतरेगा । यह हम अक्सर सुन लेते है कि हमारा उद्देश्य अच्छा है तो उसकी सिद्धि के लिए हम चाहे जो कुछ भी कर सकते है और यदि उसमें कुछ अनुचित भी करना पडे तो ध्येय के विचार से वह भले वाछनीय नहीं है, मार्जनीय जरूर है । गाधीजी ने अनुचित व्यवहार को

हमेशा गलत बतलाया था, क्योंकि उससे एक तो कभी सच्ची कार्य-सिद्धि हो नही सकती और दूसरे यदि कार्य-सिद्धि जैसी कोई चीज दीखे भी तो वह उस ध्येय की सिद्धि नही हो सकती; क्योकि साधन के कारण वह ध्येय ही बदल जाता है। इसलिए उन्होने सत्य और अहिंसा का पालन हर हालत में हर मौके के लिए आवश्यक और अनिवार्य बतलाया।

हम अपने को स्वतन्त्र नहीं बना सकते जबतक हम दूसरो को भी स्वतन्त्र रहने के लिए छोड न दें इसलिए ऐसे देश में—जहाँ भिन्न-भिन्न धर्मवाले, भिन्न-भिन्न भाषा वाले, भिन्न-भिन्न जातिवाले बसते हैं—प्रत्येक का कर्तव्य हो जाता है कि दूसरो को भी वह अपना ही धर्म और विचार तथा अपनी ही जाति और भाषा स्वीकार करने पर बाध्य न करे, अर्थात् सभी एक दूसरे के साथ ऐसा बर्ताव करें जिसमें सभी अपनी इच्छा और मर्जी के मुताबिक अपने धर्म, अपनी भाषा इत्यादि का पालन कर सकें। साम्प्रदायिक झगडे, व्यक्तिगत झगडे के समान ही, दबाव डालने के कारण हुआ करते है। उन्होने सब धर्मवालो से एक दूसरे के साथ समान बर्ताव का, यहाँ तक कि मनुष्य मात्र के साथ समान बर्ताव का, प्रबल आग्रह किया। अन्त में उनको इसीके लिए शरीर भी त्यागना पडा।

उनकी पुण्यतिथि पर हम सब उनके बताये हुए इस सिद्धान्त का पालन करने के लिए अपने हृदय को टटोलें—अपने दिल से पूछें—हम दूसरे के प्रति प्रेमभाव रखते है अथवा द्वेष? क्या हम जो कुछ कर रहे है वह सकुचित विचार से केवल अपने लिए कर रहे है अथवा कम-से-कम उसमे दूसरो को भी नुकसान पहुँचा रहे है या नही? क्या हमारा काम ऐसा है जिसको हम खुलेआम कर सकते है? अथवा, उसमें कोई ऐसी बात भी है जिसको लोक-लज्जा के कारण अथवा भय के कारण हमारे लिए छिपाव करना जरूरी है? क्या हमारे सामने देशहित है अथवा केवल व्यक्तिगत स्वार्थ। क्या हम अपने जीवन को सुधार रहे है अथवा बिगाड रहे है? गाधीजी की तराजू पर हम अपने को तौलवाने के लिए तैयार है या नही? क्या दूसरे धर्मवालो को हम उनके धर्म पर चलने देने के लिए तैयार है? अथवा परोक्ष या खुल्लमखुल्ला उनके साथ जोर-जबरदस्ती करके उनको अपनी इच्छा के अनुसार चलाना चाहते है? क्या हम सचमुच सत्य और अहिंसा का पालन कर रहे है?

आज हम अपने जीवन को तभी सार्थक बना सकते है जब हम अपने हृदय के हर कोने को टटोलकर देख लें कि उसमें कही गाधीजी की शिक्षा के विरुद्ध कोई छिपी हुई कुवृत्ति तो नही काम कर रही है।